महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अन्तर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya
(A Central University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)
नैक द्वारा 'A' ग्रेड प्राप्त / Accredited with 'A' Grade by NAAC

हिन्दी उपन्यास एवं कहानी

निर्धारित पाठ्यपुस्तक

एम.ए. हिन्दी पाठ्यक्रम
प्रथम सेमेस्टर
द्वितीय पाठ्यचर्या (अनिवार्य)
पाठ्यचर्या कोड : MAHD – 02

दूर शिक्षा निदेशालय
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
पोस्ट – हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा – 442001 (महाराष्ट्र)

हिन्दी उपन्यास एवं कहानी (निर्धारित पाठ्यपुस्तक)

प्रधान सम्पादक

प्रो॰ गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सम्पादक

प्रो॰ कृष्ण कुमार सिंह
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय एवं विभागाध्यक्ष हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

पुरन्दरदास
अनुसंधान अधिकारी एवं पाठ्यक्रम संयोजक– एम. ए. हिन्दी पाठ्यक्रम
दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सम्पादक मण्डल

प्रो॰ आनन्द वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रो॰ कृष्ण कुमार सिंह
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय एवं विभागाध्यक्ष हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रो॰ अरुण कुमार त्रिपाठी
प्रोफेसर एडजंक्ट, जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

पुरन्दरदास

प्रकाशक

कुलसचिव, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
पोस्ट : हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा, महाराष्ट्र, पिन कोड : 442001

© महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रथम संस्करण : जून 2018

पाठ्यक्रम परिकल्पना, संरचना, संयोजन एवं पाठ्चयन
आवरण, रेखांकन, पेज डिज़ाइनिंग, कम्पोज़िंग ले-आउट एवं टंकण

पुरन्दरदास

कार्यालयीय सहयोग

श्री विनोद रमेशचंद्र वैद्य
सहायक कुलसचिव, दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

टंकण कार्य सहयोग (बाणभट्ट की आत्मकथा – चयनित अंश)

सुश्री राधा सुरेश ठाकरे
दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

आवरण पृष्ठ पर संयुत विश्वविद्यालय के वर्धा परिसर स्थित गांधी हिल स्थल का छायाचित्र श्री बी. एस. मिरगे जनसंपर्क अधिकारी एवं श्री राजेश आगरकर प्रकाशन विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा से साभार प्राप्त

हम उन समस्त साहित्यकारों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं जिनकी कृतियों का उपयोग प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक में किया गया है । हम उन समस्त रचनाकारों, अनुवादकों, सम्पादकों, संकलनकर्त्ताओं, सर्वाधिकारधारकों, प्रकाशकों, मुद्रकों एवं इंटरनेट स्रोतों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं जिनकी सहायता से प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक में संकलित रचनाओं के पाठ उपलब्ध हुए हैं ।

http://hindivishwa.org/distance/contentdtl.aspx?category=3&cgid=77&csgid=65

- यह पाठ्यपुस्तक दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय द्वारा संचालित एम.ए. हिन्दी पाठ्यक्रम में प्रवेशित विद्यार्थियों के अध्ययनार्थ उपलब्ध करायी जाती है।
- इस कृति का कोई भी अंश लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
- इस पाठ्यपुस्तक को यथासम्भव त्रुटिहीन रूप से प्रकाशित करने के सभी प्रयास किए गए हैं तथापि संयोगवश यदि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा संताप के लिए सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा।
- किसी भी परिवाद के लिए न्यायिक क्षेत्र वर्धा, महाराष्ट्र ही होगा।

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विधा	निर्धारित पाठ्य कृतियाँ	कृतिकार	पृष्ठ क्रमांक
01.	उपन्यास	गोदान (चयनित अंश)	प्रेमचंद	05 – 42
02.	उपन्यास	बाणभट्ट की आत्मकथा (चयनित अंश)	हजारीप्रसाद द्विवेदी	43 – 91
03.	कहानी	उसने कहा था	चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'	92 – 102
04.	कहानी	कफ़न	प्रेमचंद	103 – 110
05.	कहानी	पुरस्कार	जयशंकर प्रसाद	111 – 120
06.	कहानी	पत्नी	जैनेन्द्रकुमार	121 – 126
07.	कहानी	हीली-बोन् की 'बत्तखें'	अज्ञेय	127 – 134
08.	कहानी	रसप्रिया	फणीश्वरनाथ 'रेणु'	135 – 147
09.	कहानी	परिन्दे	निर्मल वर्मा	148 – 178
10.	कहानी	दोपहर का भोजन	अमरकान्त	179 – 184
11.	कहानी	टूटना	राजेन्द्र यादव	185 – 211
12.	कहानी	यही सच है	मन्नू भण्डारी	212 – 231
13.	कहानी	वापसी	उषा प्रियंवदा	232 – 239
14.	कहानी	बादलों के घेरे	कृष्णा सोबती	240 – 259
15.	कहानी	अमृतसर आ गया है	भीष्म साहनी	260 – 271
16.	कहानी	मलबे का मालिक	मोहन राकेश	272 – 280

गोदान

– प्रेमचंद

होरीराम ने दोनों बैलों को सानी-पानी दे कर अपनी स्त्री धनिया से कहा – गोबर को ऊख गोड़ने भेज देना। मैं न जाने कब लौटूँ। ज़रा मेरी लाठी दे दे। धनिया के दोनों हाथ गोबर से भरे थे। उपले पाथ कर आई थी। बोली – अरे, कुछ रस-पानी तो कर लो। ऐसी जल्दी क्या है ? होरी ने अपने झुर्रियों से भरे हुए माथे को सिकोड़ कर कहा – तुझे रस-पानी की पड़ी है, मुझे यह चिन्ता है कि अबेर हो गई तो मालिक से भेंट न होगी। असनान-पूजा करने लगेंगे, तो घण्टों बैठे बीत जायगा। 'इसी से तो कहती हूँ, कुछ जलपान कर लो और आज न जाओगे तो कौन हरज होगा ! अभी तो परसों गए थे।'

'तू जो बात नहीं समझती, उसमें टाँग क्यों अड़ाती है भाई ! मेरी लाठी दे दे और अपना काम देख। यह इसी मिलते-जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है, नहीं कहीं पता न लगता कि किधर गए। गाँव में इतने आदमी तो हैं, किस पर बेदखली नहीं आई, किस पर कुड़की नहीं आई। जब दूसरे के पाँवों-तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुसल है।'

धनिया इतनी व्यवहार-कुशल न थी। उसका विचार था कि हमने ज़मींदार के खेत जोते हैं, तो वह अपना लगान ही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलाएँ। यद्यपि अपने विवाहित जीवन के इन बीस बरसों में उसे अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि चाहे कितनी ही कतर-ब्योंत करो, कितना ही पेट-तन काटो, चाहे एक-एक कौड़ी को दाँत से पकड़ो; मगर लगान का बेबाक होना मुश्किल है। फिर भी वह हार न मानती थी, और इस विषय पर स्त्री-पुरुष में आए दिन संग्राम छिड़ा रहता था। उसकी छह सन्तानों में अब केवल तीन ज़िंदा हैं, एक लड़का गोबर कोई सोलह साल का, और दो लड़कियाँ सोना और रूपा, बारह और आठ साल की। तीन लड़के बचपन ही में मर गए। उसका मन आज भी कहता था, अगर उनकी दवा-दवाई होती तो वे बच जाते; पर वह एक धेले की दवा भी न मँगवा सकी थी। उसकी ही उम्र अभी क्या थी। छत्तीसवाँ ही साल तो था; पर सारे बाल पक गए थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं। सारी देह ढल गई थी, वह सुन्दर गेहुँआँ रंग सँवला गया था, और आँखों से भी कम सूझने लगा था। पेट की चिन्ता ही के कारण तो कभी तो जीवन का सुख न मिला। इस चिरस्थायी जीर्णावस्था ने उसके आत्मसम्मान को उदासीनता का रूप दे दिया था। जिस गृहस्थी में पेट की रोटियाँ भी न मिलें, उसके लिए इतनी खुशामद क्यों ? इस परिस्थिति से उसका मन बराबर विद्रोह किया करता था, और दो-चार घुड़कियाँ खा लेने पर ही उसे यथार्थ का ज्ञान होता था।

उसने परास्त हो कर होरी की लाठी, मिरजई, जूते, पगड़ी और तमाखू का बटुआ ला कर सामने पटक दिए।

होरी ने उसकी ओर आँखें तरेर कर कहा – क्या ससुराल जाना है, जो पाँचों पोसाक लाई है ? ससुराल में भी तो कोई जवान साली-सलहज नहीं बैठी है, जिसे जा कर दिखाऊँ।

होरी के गहरे साँवले, पिचके हुए चेहरे पर मुस्कराहट की मृदुता झलक पड़ी। धनिया ने लजाते हुए कहा – ऐसे ही बड़े सजीले जवान हो कि साली-सलहजें तुम्हें देख कर रीझ जाएँगी।

होरी ने फटी हुई मिरजई को बड़ी सावधानी से तह करके खाट पर रखते हुए कहा – तो क्या तू समझती है, मैं बूढ़ा हो गया? अभी तो चालीस भी नहीं हुए। मर्द साठे पर पाठे होते हैं।

'जा कर सीसे में मुँह देखो। तुम-जैसे मर्द साठे पर पाठे नहीं होते। दूध-घी अंजन लगाने तक को तो मिलता नहीं, पाठे होंगे। तुम्हारी दसा देख-देख कर तो मैं और भी सूखी जाती हूँ कि भगवान् यह बुढ़ापा कैसे कटेगा? किसके द्वार पर भीख माँगेंगे?'

होरी की वह क्षणिक मृदुता यथार्थ की इस आँच में झुलस गई। लकड़ी सँभलता हुआ बोला – साठे तक पहुँचने की नौबत न आने पाएगी धनिया, इसके पहले ही चल देंगे।

धनिया ने तिरस्कार किया – अच्छा रहने दो, मत असुभ मुँह से निकालो। तुमसे कोई अच्छी बात भी कहे, तो लगते हो कोसने।

होरी कन्धों पर लाठी रख कर घर से निकला, तो धनिया द्वार पर खड़ी उसे देर तक देखती रही। उसके इन निराशा-भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाए हुए हृदय में आतंकमय कम्पन-सा डाल दिया था। वह जैसे अपने नारीत्व के सम्पूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभय-दान दे रही थी। उसके अन्तःकरण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह-सा निकल कर होरी को अपने अंदर छिपाए लेता था। विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी, मानो झटका दे कर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा। बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदना-शक्ति आ गई थी। काना कहने से काने को जो दुःख होता है, वह क्या दो आँखों वाले आदमी को हो सकता है?

होरी कदम बढ़ाए चला जाता था। पगडंडी के दोनों ओर ऊख के पौधों की लहराती हुई हरियाली देख कर उसने मन में कहा – भगवान् कहीं गौं से बरखा कर दे और डाँड़ी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय जरूर लेगा। देसी गायें तो न दूध दें, न उनके बछवे ही किसी काम के हों। बहुत हुआ तो तेली के कोल्हू में चले। नहीं, वह पछाईं गाय लेगा। उसकी खूब सेवा करेगा। कुछ नहीं तो चार-पाँच सेर दूध होगा? गोबर दूध के लिए तरस-तरस रह जाता है। इस उमर में न खाया-पिया, तो फिर कब खाएगा? साल-भर भी दूध पी ले, तो देखने लायक हो जाए। बछवे भी अच्छे बैल निकलेंगे। दो सौ से कम की गोंई न होगी। फिर गऊ से ही तो द्वार की सोभा है। सबेरे-सबेरे गऊ के दर्सन हो जायँ तो क्या कहना! न जाने कब यह साध पूरी होगी, कब वह सुभ दिन आएगा!

हर एक गृहस्थ की भाँति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी। बैंक के सूद से चैन करने या जमीन खरीदने या महल बनवाने की विशाल आकांक्षाएँ उसके नन्हें-से हृदय में कैसे समातीं !

जेठ का सूर्य आमों के झुरमुट से निकल कर आकाश पर छाई हुई लालिमा को अपने रजत-प्रताप से तेज प्रदान करता हुआ ऊपर चढ़ रहा था और हवा में गरमी आने लगी थी। दोनों ओर खेतों में काम करने वाले किसान उसे देख कर राम-राम करते और सम्मान-भाव से चिलम पीने का निमन्त्रण देते थे; पर होरी को इतना अवकाश कहाँ था ? उसके अंदर बैठी हुई सम्मान-लालसा ऐसा आदर पा कर उसके सूखे मुख पर गर्व की झलक पैदा कर रही थी। मालिकों से मिलते-जुलते रहने ही का तो यह प्रसाद है कि सब उसका आदर करते हैं, नहीं उसे कौन पूछता – पाँच बीघे के किसान की बिसात ही क्या ? यह कम आदर नहीं है कि तीन-तीन, चार-चार हल वाले महतो भी उसके सामने सिर झुकाते हैं।

अब वह खेतों के बीच की पगडंडी छोड़ कर एक खलेटी में आ गया था, जहाँ बरसात में पानी भर जाने के कारण तरी रहती थी और जेठ में कुछ हरियाली नजर आती थी। आस-पास के गाँवों की गउएँ यहाँ चरने आया करती थीं। उस उमस में भी यहाँ की हवा में कुछ ताजगी और ठंडक थी। होरी ने दो-तीन साँसें जोर से लीं। उसके जी में आया, कुछ देर यहीं बैठ जाए। दिन-भर तो लू-लपट में मरना है ही। कई किसान इस गड्ढे का पट्टा लिखाने को तैयार थे। अच्छी रकम देते थे; पर ईश्वर भला करे रायसाहब का कि उन्होंने साफ कह दिया, यह जमीन जानवरों की चराई के लिए छोड़ दी गई है और किसी दाम पर भी न उठाई जायगी। कोई स्वार्थी ज़मींदार होता, तो कहता गायें जायँ भाड़ में, हमें रुपये मिलते हैं, क्यों छोड़ें; पर रायसाहब अभी तक पुरानी मर्यादा निभाते आते हैं। जो मालिक प्रजा को न पाले, वह भी कोई आदमी है ?

सहसा उसने देखा, भोला अपनी गाय लिए इसी तरफ चला आ रहा है। भोला इसी गाँव से मिले हुए पुरवे का ग्वाला था और दूध-मक्खन का व्यवसाय करता था। अच्छा दाम मिल जाने पर कभी-कभी किसानों के हाथ गायें बेच भी देता था। होरी का मन उन गायों को देख कर ललचा गया। अगर भोला वह आगे वाली गाय उसे दे तो क्या कहना ! रुपये आगे-पीछे देता रहेगा। वह जानता था, घर में रुपये नहीं हैं। अभी तक लगान नहीं चुकाया जा सका; बिसेसर साह का देना भी बाकी है, जिस पर आने रुपये का सूद चढ़ रहा है, लेकिन दरिद्रता में जो एक प्रकार की अदूरदर्शिता होती है, वह निर्लज्जता जो तकाजे, गाली और मार से भी भयभीत नहीं होती, उसने उसे प्रोत्साहित किया। बरसों से जो साध मन को आन्दोलित कर रही थी, उसने उसे विचलित कर दिया। भोला के समीप जा कर बोला – राम-राम भोला भाई, कहो क्या रंग-ढंग हैं ? सुना अबकी मेले से नई गायें लाए हो ?

भोला ने रूखाई से जवाब दिया। होरी के मन की बात उसने ताड़ ली थी – हाँ, दो बछिएँ और दो गायें लाया। पहलेवाली गायें सब सूख गई थी। बँधी पर दूध न पहुँचे तो गुजर कैसे हो?

होरी ने आगे वाली गाय के पुट्ठे पर हाथ रख कर कहा – दुधार तो मालूम होती है। कितने में ली ?

भोला ने शान जमाई – अबकी बाजार तेज रहा महतो, इसके अस्सी रुपये देने पड़े। आँखें निकल गईं। तीस-तीस रुपये तो दोनों कलोरों के दिए। तिस पर गाहक रुपये का आठ सेर दूध माँगता है।

'बड़ा भारी कलेजा है तुम लोगों का भाई, लेकिन फिर लाए भी तो वह माल कि यहाँ दस-पाँच गाँवों में तो किसी के पास निकलेगी नहीं।'

भोला पर नशा चढ़ने लगा। बोला – रायसाहब इसके सौ रुपये देते थे। दोनों कलोरों के पचास-पचास रुपये, लेकिन हमने न दिए। भगवान् ने चाहा तो सौ रुपये इसी ब्यान में पीट लूँगा।

'इसमें क्या सन्देह है भाई। मालिक क्या खा के लेंगे ? नजराने में मिल जाय, तो भले ले लें। यह तुम्हीं लोगों का गुर्दा है कि अंजुली-भर रुपये तकदीर के भरोसे गिन देते हो। यही जी चाहता है कि इसके दरसन करता रहूँ। धन्य है तुम्हारा जीवन कि गऊओं की इतनी सेवा करते हो ! हमें तो गाय का गोबर भी मयस्सर नहीं। गिरस्त के घर में एक गाय भी न हो, तो कितनी लज्जा की बात है। साल-के-साल बीत जाते हैं, गोरस के दरसन नहीं होते। घरवाली बार-बार कहती है, भोला भैया से क्यों नहीं कहते ? मैं कह देता हूँ, कभी मिलेंगे तो कहूँगा। तुम्हारे सुभाव से बड़ी परसन रहती है। कहती है, ऐसा मर्द ही नहीं देखा कि जब बातें करेंगे, नीची आँखें करके कभी सिर नहीं उठाते।'

भोला पर जो नशा चढ़ रहा था, उसे इस भरपूर प्याले ने और गहरा कर दिया। बोला – आदमी वही है, जो दूसरों की बहू-बेटी को अपनी बहू-बेटी समझे। जो दुष्ट किसी मेहरिया की ओर ताके, उसे गोली मार देना चाहिए।

'यह तुमने लाख रुपये की बात कह दी भाई ! बस सज्जन वही, जो दूसरों की आबरू समझे।'

'जिस तरह मर्द के मर जाने से औरत अनाथ हो जाती है, उसी तरह औरत के मर जाने से मर्द के हाथ-पाँव टूट जाते हैं। मेरा तो घर उजड़ गया महतो, कोई एक लोटा पानी देने वाला भी नहीं।'

गत वर्ष भोला की स्त्री लू लग जाने से मर गई थी। यह होरी जानता था, लेकिन पचास बरस का खंखड़ भोला भीतर से इतना स्निग्ध है, वह न जानता था। स्त्री की लालसा उसकी आँखों में सजल हो गई थी। होरी को आसन मिल गया। उसकी व्यावहारिक कृषक-बुद्धि सजग हो गई।

'पुरानी मसल झूठी थोड़े है – बिन घरनी घर भूत का डेरा। कहीं सगाई क्यों नहीं ठीक कर लेते ?'

'ताक में हूँ महतो, पर कोई जल्दी फँसता नहीं। सौ-पचास खरच करने को भी तैयार हूँ। जैसी भगवान् की इच्छा।'

'अब मैं भी फिराक में रहूँगा। भगवान् चाहेंगे, तो जल्दी घर बस जायगा।'

'बस, यही समझ लो कि उबर जाऊँगा भैया ! घर में खाने को भगवान् का दिया बहुत है। चार पसेरी रोज दूध हो जाता है, लेकिन किस काम का ?'

'मेरे ससुराल में एक मेहरिया है। तीन-चार साल हुए, उसका आदमी उसे छोड़ कर कलकत्ते चला गया। बेचारी पिसाई करके गुजारा कर रही है। बाल-बच्चा भी कोई नहीं। देखने-सुनने में अच्छी है। बस, लच्छमी समझ लो।'

भोला का सिकुड़ा हुआ चेहरा जैसे चिकना गया। आशा में कितनी सुधा है ! बोला – अब तो तुम्हारा ही आसरा है महतो ! छुट्टी हो, तो चलो एक दिन देख आएँ।

'मैं ठीक-ठाक करके तब तुमसे कहूँगा। बहुत उतावली करने से भी काम बिगड़ जाता है।'

'जब तुम्हारी इच्छा हो तब चलो। उतावली काहे की – इस कबरी पर मन ललचाया हो, तो ले लो।'

'यह गाय मेरे मान की नहीं है दादा। मैं तुम्हें नुकसान नहीं पहुँचाना चाहता। अपना धरम यह नहीं है कि मित्रों का गला दबाएँ। जैसे इतने दिन बीते हैं, वैसे और भी बीत जाएँगे।'

'तुम तो ऐसी बातें करते हो होरी, जैसे हम-तुम दो हैं। तुम गाय ले जाओ, दाम जो चाहे देना। जैसे मेरे घर रही, वैसे तुम्हारे घर रही। अस्सी रुपये में ली थी, तुम अस्सी रुपये ही देना देना। जाओ।'

'लेकिन मेरे पास नगद नहीं है दादा, समझ लो।'

'तो तुमसे नगद माँगता कौन है भाई ?'

होरी की छाती गज-भर की हो गई। अस्सी रुपये में गाय महँगी न थी। ऐसा अच्छा डील-डौल, दोनों जून में छह-सात सेर दूध, सीधी ऐसी कि बच्चा भी दुह ले। इसका तो एक-एक बाछा सौ-सौ का होगा। द्वार पर बँधेगी तो द्वार की सोभा बढ़ जायगी। उसे अभी कोई चार सौ रुपये देने थे; लेकिन उधार को वह एक तरह से मुफ्त समझता था। कहीं भोला की सगाई ठीक हो गई, तो साल-दो साल तो वह बोलेगा भी नहीं। सगाई न भी हुई, तो होरी का क्या बिगड़ता है ! यही तो होगा, भोला बार-बार तगादा करने आएगा, बिगड़ेगा, गालियाँ देगा; लेकिन होरी को इसकी ज्यादा शर्म न थी। इस व्यवहार का वह आदी था। कृषक के जीवन का तो यह प्रसाद है। भोला के साथ वह छल कर रहा था और यह व्यापार उसकी मर्यादा के अनुकूल न था। अब भी लेन-देन में उसके लिए लिखा-पढ़ी होने और न होने में कोई अन्तर न था। सूखे-बूड़े की विपदाएँ उसके मन को भीरु बनाए रहती थीं। ईश्वर का रुद्र रूप सदैव उसके सामने रहता था; पर यह छल उसकी नीति में छल न था। यह केवल स्वार्थ-सिद्धि थी और यह कोई बुरी बात न थी। इस तरह का छल तो वह दिन-रात करता रहता था। घर में दो-चार रुपये पड़े रहने पर भी महाजन के सामने कसमें खा जाता था कि एक पाई भी नहीं है। सन को कुछ गीला कर देना और रूई में

कुछ बिनौले भर देना उसकी नीति में जायज था और यहाँ तो केवल स्वार्थ न था, थोड़ा-सा मनोरंजन भी था। बुड्ढों का बुढ़भस हास्यास्पद वस्तु है और ऐसे बुड्ढों से अगर कुछ ऐंठ भी लिया जाय, तो कोई दोष-पाप नहीं।

भोला ने गाय की पगहिया होरी के हाथ में देते हुए कहा – ले जाओ महतो, तुम भी क्या याद करोगे। ब्याते ही छह सेर दूध लेना। चलो, मैं तुम्हारे घर तक पहुँचा दूँ। साइत तुम्हें अनजान समझ कर रास्ते में कुछ दिक करे। अब तुमसे सच कहता हूँ, मालिक नब्बे रुपये देते थे, पर उनके यहाँ गऊओं की क्या कदर। मुझसे ले कर किसी हाकिम-हुक्काम को दे देते। हाकिमों को गऊ की सेवा से मतलब? वह तो खून चूसना-भर जानते हैं। जब तक दूध देती, रखते, फिर किसी के हाथ बेच देते। किसके पल्ले पड़ती, कौन जाने। रुपया ही सब कुछ नहीं है भैया, कुछ अपना धरम भी तो है। तुम्हारे घर आराम से रहेगी तो। यह न होगा कि तुम आप खा कर सो रहो और गऊ भूखी खड़ी रहे। उसकी सेवा करोगे, प्यार करोगे, चुमकारोगे। गऊ हमें आसिरवाद देगी। तुमसे क्या कहूँ भैया, घर में चंगुल-भर भी भूसा नहीं रहा। रुपये सब बाजार में निकल गए। सोचा था, महाजन से कुछ ले कर भूसा ले लेंगे; लेकिन महाजन का पहला ही नहीं चुका। उसने इनकार कर दिया। इतने जानवरों को क्या खिलाएँ, यही चिन्ता मारे डालती है। चुटकी-चुटकी भर खिलाऊँ, तो मन-भर रोज का खरच है। भगवान् ही पार लगाएँ तो लगे।

होरी ने सहानुभूति के स्वर में कहा – तुमने हमसे पहले क्यों नहीं कहा – हमने एक गाड़ी भूसा बेच दिया।

भोला ने माथा ठोक कर कहा – इसीलिए नहीं कहा – भैया कि सबसे अपना दुःख क्यों रोऊँ; बाँटता कोई नहीं, हँसते सब हैं। जो गायें सूख गई हैं, उनका गम नहीं, पत्ती-सत्ती खिला कर जिला लूँगा; लेकिन अब यह तो रातिब बिना नहीं रह सकती। हो सके, तो दस-बीस रुपये भूसे के लिए दे दो।

किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें सन्देह नहीं। उसकी गाँठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव-ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक-एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घण्टों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाय, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता, लेकिन उसका सम्पूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है, खेती में अनाज होता है, वह संसार के काम आता है; गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं, मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान? होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।

भोला की संकट-कथा सुनते ही उसकी मनोवृत्ति बदल गई। पगहिया को भोला के हाथ में लौटाता हुआ बोला – रुपये तो दादा मेरे पास नहीं हैं। हाँ, थोड़ा-सा भूसा बचा है, वह तुम्हें दूँगा। चल कर उठवा लो। भूसे के लिए तुम गाय बेचोगे, और मैं लूँगा! मेरे हाथ न कट जाएँगे?

भोला ने आर्द्र कण्ठ से कहा – तुम्हारे बैल भूखों न मरेंगे। तुम्हारे पास भी ऐसा कौन-सा बहुत-सा भूसा रखा है।

'नहीं दादा, अबकी भूसा अच्छा हो गया था।'

'मैंने तुमसे नाहक भूसे की चर्चा की।'

'तुम न कहते और पीछे से मुझे मालूम होता, तो मुझे बड़ा रंज होता कि तुमने मुझे इतना गैर समझ लिया। अवसर पड़ने पर भाई की मदद भाई न करे, तो काम कैसे चले!'

'मुदा यह गाय तो लेते जाओ।'

'अभी नहीं दादा, फिर ले लूँगा।'

'तो भूसे के दाम दूध में कटवा लेना।'

होरी ने दुखित स्वर में कहा – दाम-कौड़ी की इसमें कौन बात है दादा, मैं एक-दो जून तुम्हारे घर खा लूँ तो तुम मुझसे दाम माँगोगे?

'लेकिन तुम्हारे बैल भूखों मरेंगे कि नहीं?

'भगवान् कोई-न-कोई सबील निकालेंगे ही। आसाढ़ सिर पर है। कड़वी बो लूँगा।'

'मगर यह गाय तुम्हारी हो गई। जिस दिन इच्छा हो, आ कर ले जाना।'

'किसी भाई का लिलाम पर चढ़ा हुआ बैल लेने में जो पाप है, वह इस समय तुम्हारी गाय लेने में है।'

होरी में बाल की खाल निकालने की शक्ति होती, तो वह खुशी से गाय ले कर घर की राह लेता। भोला जब नकद रुपये नहीं माँगता, तो स्पष्ट था कि वह भूसे के लिए गाय नहीं बेच रहा है, बल्कि इसका कुछ और आशय है; लेकिन जैसे पत्तों के खड़कने पर घोड़ा अकारण ही ठिठक जाता है और मारने पर भी आगे कदम नहीं उठाता, वही दशा होरी की थी। संकट की चीज लेना पाप है, यह बात जन्म-जन्मान्तरों से उसकी आत्मा का अंश बन गई थी।

भोला ने गद्गद् कण्ठ से कहा – तो किसी को भेज दूँ भूसे के लिए ?

होरी ने जवाब दिया – अभी मैं रायसाहब की ड्योढ़ी पर जा रहा हूँ। वहाँ से घड़ी-भर में लौटूँगा, तभी किसी को भेजना।

भोला की आँखों में आँसू भर आए। बोला – तुमने आज मुझे उबार लिया होरी भाई! मुझे अब मालूम हुआ कि मैं संसार में अकेला नहीं हूँ। मेरा भी कोई हितू है। एक क्षण के बाद उसने फिर कहा – उस बात को भूल न जाना।

होरी आगे बढ़ा, तो उसका चित्त प्रसन्न था। मन में एक विचित्र स्फूर्ति हो रही थी। क्या हुआ, दस-पाँच मन भूसा चला जायगा, बेचारे को संकट में पड़ कर अपनी गाय तो न बेचनी पड़ेगी। जब मेरे पास चारा हो जायगा तब गाय खोल लाऊँगा। भगवान् करें, मुझे कोई मेहरिया मिल जाए। फिर तो कोई बात ही नहीं।

उसने पीछे फिर कर देखा। कबरी गाय पूँछ से मक्खियाँ उड़ाती, सिर हिलाती, मस्तानी, मन्द-गति से झूमती चली जाती थी, जैसे बांदियों के बीच में कोई रानी हो। कैसा शुभ होगा वह दिन, जब यह कामधेनु उसके द्वार पर बँधेगी!

* * *

सेमरी और बेलारी दोनों अवध-प्रान्त के गाँव हैं। जिले का नाम बताने की कोई जरूरत नहीं। होरी बेलारी में रहता है, रायसाहब अमरपाल सिंह सेमरी में। दोनों गाँवों में केवल पाँच मील का अन्तर है। पिछले सत्याग्रह-संग्राम में रायसाहब ने बड़ा यश कमाया था। कौंसिल की मेंबरी छोड़ कर जेल चले गए थे। तब से उनके इलाके के असामियों को उनसे बड़ी श्रद्धा हो गई थी। यह नहीं कि उनके इलाके में असामियों के साथ कोई खास रियायत की जाती हो, या डाँड़ और बेगार की कड़ाई कुछ कम हो, मगर यह सारी बदनामी मुख़्तारों के सिर जाती थी। रायसाहब की कीर्ति पर कोई कलंक न लग सकता था। वह बेचारे भी तो उसी व्यवस्था के गुलाम थे। जाब्ते का काम तो जैसे होता चला आया है, वैसा ही होगा। रायसाहब की सज्जनता उस पर कोई असर न डाल सकती थी, इसलिए आमदनी और अधिकार में जौ-भर की भी कमी न होने पर भी उनका यश मानो बढ़ गया था। असामियों से वह हँस कर बोल लेते थे। यही क्या कम है? सिंह का काम तो शिकार करना है; अगर वह गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोल सकता, तो उसे घर बैठे मनमाना शिकार मिल जाता। शिकार की खोज में जंगल में न भटकना पड़ता।

रायसाहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेल-जोल बनाए रखते थे। उनकी नजरें और डालियाँ और कर्मचारियों की दस्तूरियाँ जैसी की तैसी चली आती थीं। साहित्य और संगीत के प्रेमी थे, ड्रामा के शौकीन, अच्छे वक्ता थे, अच्छे लेखक, अच्छे निशानेबाज। उनकी पत्नी को मरे आज दस साल हो चुके थे; मगर दूसरी शादी न की थी। हँस बोल कर अपने विधुर जीवन को बहलाते रहते थे।

होरी ड्योढ़ी पर पहुँचा तो देखा, जेठ के दशहरे के अवसर पर होने वाले धनुष-यज्ञ की बड़ी जोरों से तैयारियाँ हो रही हैं! कहीं रंग-मंच बन रहा था, कहीं मण्डप, कहीं मेहमानों का आतिथ्य-गृह, कहीं दुकानदारों के लिए दूकानें। धूप तेज हो गई थी, पर रायसाहब खुद काम में लगे हुए थे। अपने पिता से सम्पत्ति के साथ-साथ उन्होंने राम की भक्ति भी पाई थी और धनुष-यज्ञ को नाटक का रूप दे कर उसे शिष्ट मनोरंजन का साधन बना दिया

था। इस अवसर पर उनके यार-दोस्त, हाकिम-हुक्काम सभी निमन्त्रित होते थे और दो-तीन दिन इलाके में बड़ी चहल-पहल रहती थी। रायसाहब का परिवार बहुत विशाल था। कोई डेढ़ सौ सरदार एक साथ भोजन करते थे। कई चचा थे। दरजनों चचेरे भाई, कई सगे भाई, बीसियों नाते के भाई। एक चचा साहब राधा के अनन्य उपासक थे और बराबर वृन्दावन में रहते थे। भक्ति-रस के कितने ही कवित्त रच डाले थे और समय-समय पर उन्हें छपवा कर दोस्तों की भेंट कर देते थे। एक दूसरे चचा थे, जो राम के परम भक्त थे और फारसी-भाषा में रामायण का अनुवाद कर रहे थे। रियासत से सबक वजीफे बँधे हुए थे। किसी को कोई काम करने की जरूरत न थी।

होरी मण्डप में खड़ा सोच रहा था कि अपने आने की सूचना कैसे दे कि सहसा रायसाहब उधर ही आ निकले और उसे देखते ही बोले – अरे ! तू आ गया होरी, मैं तो तुझे बुलवाने वाला था। देख, अबकी तुझे राजा जनक का माली बनना पड़ेगा। समझ गया न, जिस वक्त श्रीजानकीजी मन्दिर में पूजा करने जाती हैं, उसी वक्त तू एक गुलदस्ता लिए खड़ा रहेगा और जानकीजी को भेंट करेगा, गलती न करना और देख, असामियों से ताकीद करके यह कह देना कि सब-के-सब शगुन करने आएँ। मेरे साथ कोठी में आ, तुझसे कुछ बातें करनी हैं।

वह आगे-आगे कोठी की ओर चले, होरी पीछे-पीछे चला। वहीं एक घने वृक्ष की छाया में एक कुर्सी पर बैठ गए और होरी को जमीन पर बैठने का इशारा करके बोले – समझ गया, मैंने क्या कहा – कारकुन को तो जो कुछ करना है, वह करेगा ही, लेकिन असामी जितने मन से असामी की बात सुनता है, कारकुन की नहीं सुनता। हमें इन्हीं पाँच-सात दिनों में बीस हजार का प्रबन्ध करना है। कैसे होगा, समझ में नहीं आता। तुम सोचते होगे, मुझ टके के आदमी से मालिक क्यों अपना दुखड़ा ले बैठे। किससे अपने मन की कहूँ ? न जाने क्यों तुम्हारे ऊपर विश्वास होता है। इतना जानता हूँ कि तुम मन में मुझ पर हँसोगे नहीं। और हँसो भी, तो तुम्हारी हँसी मैं बर्दाशत कर सकता हूँ। नहीं सह सकता उनकी हँसी, जो अपने बराबर के हैं, क्योंकि उनकी हँसी में ईर्ष्या, व्यंग्य और जलन है। और वे क्यों न हँसेंगे ? मैं भी तो उनकी दुर्दशा और विपत्ति और पतन पर हँसता हूँ, दिल खोल कर, तालियाँ बजा कर। सम्पत्ति और सहृदयता में बैर है। हम भी दान देते हैं, धर्म करते हैं। लेकिन जानते हो, क्यों ? केवल अपने बराबर वालों को नीचा दिखाने के लिए। हमारा दान और धर्म कोरा अहंकार है, विशुद्ध अहंकार। हममें से किसी पर डिगरी हो जाय, कुर्की आ जाय, बकाया मालगुजारी की इल्लत में हवालात हो जाय, किसी का जवान बेटा मर जाय, किसी की विधवा बहू निकल जाय, किसी के घर में आग लग जाय, कोई किसी वेश्या के हाथों उल्लू बन जाय, या अपने असामियों के हाथों पिट जाय, तो उसके और सभी भाई उस पर हँसेंगे, बगलें बजाएँगे, मानों सारे संसार की सम्पदा मिल गई है और मिलेंगे तो इतने प्रेम से, जैसे हमारे पसीने की जगह खून बहाने को तैयार हैं। अरे, और तो और, हमारे चचेरे, फुफुरे, ममेरे, मौसेरे भाई जो इसी रियासत की बदौलत मौज उड़ा रहे हैं, कविता कर रहे हैं, और जुए खेल रहे हैं, शराबें पी रहे हैं और ऐयाशी कर रहे हैं, वह भी मुझसे जलते हैं, आज मर जाऊँ तो घी के चिराग जलाएँ। मेरे दुःख को दुःख समझने वाला कोई नहीं। उनकी नजरों में मुझे दुखी होने का कोई अधिकार ही नहीं है। मैं अगर रोता हूँ, तो दुःख की हँसी उड़ाता हूँ। मैं अगर बीमार होता हूँ, तो मुझे सुख होता है। मैं अगर अपना ब्याह करके घर में कलह नहीं बढ़ाता, तो यह मेरी नीच स्वार्थपरता है, अगर ब्याह कर लूँ, तो वह विलासान्धता होगी। अगर शराब नहीं पीता तो मेरी कंजूसी है। शराब पीने लगूँ, तो वह प्रजा का रक्त

होगा। अगर ऐयाशी नहीं करता, तो अरसिक हूँ; ऐयाशी करने लगूँ, तो फिर कहना ही क्या ! इन लोगों ने मुझे भोग-विलास में फँसाने के लिए कम चालें नहीं चलीं और अब तक चलते जाते हैं। उनकी यही इच्छा है कि मैं अन्धा हो जाऊँ और ये लोग मुझे लूट लें, और मेरा धर्म यह है कि सब कुछ देख कर भी कुछ न देखूँ। सब कुछ जान कर भी गधा बना रहूँ।

रायसाहब ने गाड़ी को आगे बढ़ाने के लिए दो बीड़े पान खाए और होरी के मुँह की ओर ताकने लगे, जैसे उसके मनोभावों को पढ़ना चाहते हों।

होरी ने साहस बटोर कहा – हम समझते थे कि ऐसी बातें हमीं लोगों में होती हैं, पर जान पड़ता है, बड़े आदमियों में भी उनकी कमी नहीं है।

रायसाहब ने मुँह पान से भर कर कहा – तुम हमें बड़ा आदमी समझते हो? हमारे नाम बड़े हैं, पर दर्शन थोड़े। गरीबों में अगर ईर्ष्या या बैर है, तो स्वार्थ के लिए या पेट के लिए। ऐसी ईर्ष्या और बैर को मैं क्षम्य समझता हूँ। हमारे मुँह की रोटी कोई छीन ले, तो उसके गले में उँगली डाल कर निकालना हमारा धर्म हो जाता है। अगर हम छोड़ दें, तो देवता हैं। बड़े आदमियों की ईर्ष्या और बैर केवल आनन्द के लिए है। हम इतने बड़े आदमी हो गए हैं कि हमें नीचता और कुटिलता में ही निःस्वार्थ और परम आनन्द मिलता है। हम देवतापन के उस दर्जे पर पहुँच गए हैं, जब हमें दूसरों के रोने पर हँसी आती है। इसे तुम छोटी साधना मत समझो। जब इतना बड़ा कुटुम्ब है, तो कोई-न-कोई तो हमेशा बीमार रहेगा ही। और बड़े आदमियों के रोग भी बड़े होते हैं। वह बड़ा आदमी ही क्या, जिसे कोई छोटा रोग हो। मामूली ज्वर भी आ जाय, तो हमें सरसाम की दवा दी जाती है; मामूली गुंसी भी निकल आए, तो वह जहरबाद बन जाती है। अब छोटे सर्जन और मझोले सर्जन और बड़े सर्जन तार से बुलाए जा रहे हैं, मसीहुलमुल्क को लाने के लिए दिल्ली आदमी भेजा जा रहा है, भिषगाचार्य को लाने के लिए कलकत्ता। उधर देवालय में दुर्गापाठ हो रहा है और ज्योतिषाचार्य कुण्डली का विचार कर रहे हैं और तन्त्र के आचार्य अपने अनुष्ठान में लगे हुए हैं। राजा साहब को यमराज के मुँह से निकालने के लिए दौड़ लगी हुई है। वैद्य और डॉक्टर इस ताक में रहते हैं कि कब इनके सिर में दर्द हो और कब उनके घर में सोने की वर्षा हो। और ये रुपये तुमसे और तुम्हारे भाइयों से वसूल किए जाते हैं, भाले की नोंक पर। मुझे तो यही आश्चर्य होता है कि क्यों तुम्हारी आहों का दावानल हमें भस्म नहीं कर डालता; मगर नहीं आश्चर्य करने की कोई बात नहीं। भस्म होने में तो बहुत देर नहीं लगती, वेदना भी थोड़ी ही देर की होती है। हम जौ-जौ और अंगुल-अंगुल और पोस्पोर भस्म हो रहे हैं। उस हाहाकार से बचने के लिए हम पुलिस की, हुक्काम की, अदालत की, वकीलों की शरण लेते हैं और रूपवती स्त्री की भाँति सभी के हाथों का खिलौना बनते हैं। दुनिया समझती है, हम बड़े सुखी हैं। हमारे पास इलाके, महल, सवारियाँ, नौकर-चाकर, कर्ज, वेश्याएँ, क्या नहीं हैं, लेकिन जिसकी आत्मा में बल नहीं, अभिमान नहीं, वह और चाहे कुछ हो, आदमी नहीं है। जिसे दुश्मन के भय के मारे रात को नींद न आती हो, जिसके दुःख पर सब हँसें और रोने वाला कोई न हो, जिसकी चोटी दूसरों के पैरों की नीचे दबी हो, जो भोग-विलास के नशे में अपने को बिलकुल भूल गया हो, जो हुक्काम के तलवे चाटता हो और अपने अधीनों का खून चूसता हो, मैं उसे सुखी नहीं कहता। वह तो संसार का सबसे अभागा प्राणी है। साहब शिकार खेलने आएँ या दौरे पर, मेरा कर्त्तव्य है कि

उनकी दुम के पीछे लगा रहूँ। उनकी भौंहों पर शिकन पड़ी और हमारे प्राण सूखे। उन्हें प्रसन्न करने के लिए हम क्या नहीं करते; मगर वह पचड़ा सुनाने लगूँ तो शायद तुम्हें विश्वास न आए। डालियों और रिश्वतों तक तो खैर गनीमत है, हम सिजदे करने को भी तैयार रहते हैं। मुफ्तखोरी ने हमें अपंग बना दिया है, हमें अपने पुरुषार्थ पर लेश मात्र भी विश्वास नहीं, केवल अफसरों के सामने दुम हिला-हिला कर किसी तरह उनके कृपापात्र बने रहना और उनकी सहायता से अपने प्रजा पर आतंक जमाना ही हमारा उद्यम है। पिछलगुओं की खुशामदों ने हमें इतना अभिमानी और तुनकमिजाज बना दिया है कि हममें शील, विनय और सेवा का लोप हो गया है। मैं तो कभी-कभी सोचता हूँ कि अगर सरकार हमारे इलाके छीन कर हमें अपने रोजी के लिए मेहनत करना सिखा दे, तो हमारे साथ महान उपकार करे, और यह तो निश्चय है कि अब सरकार भी हमारी रक्षा न करेगी। हमसे अब उसका कोई स्वार्थ नहीं निकलता। लक्षण कह रहे हैं कि बहुत जल्द हमारे वर्ग की हस्ती मिट जाने वाली है। मैं उस दिन का स्वागत करने को तैयार बैठा हूँ। ईश्वर वह दिन जल्द लाए। वह हमारे उद्धार का दिन होगा। हम परिस्थितियों के शिकार बने हुए हैं। यह परिस्थिति ही हमारा सर्वनाश कर रही है और जब तक सम्पत्ति की यह बेड़ी हमारे पैरों से न निकलेगी, जब तक यह अभिशाप हमारे सिर पर मँडराता रहेगा, हम मानवता का वह पद न पा सकेंगे, जिस पर पहुँचना ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

रायसाहब ने फिर गिलौरी-दान निकाला और कई गिलौरियाँ निकाल कर मुँह में भर लीं। कुछ और कहने वाले थे कि एक चपरासी ने आ कर कहा – सरकार, बेगारों ने काम करने से इनकार कर दिया है। कहते हैं, जब तक हमें खाने को न मिलेगा, हम काम न करेंगे। हमने धमकाया, तो सब काम छोड़ कर अलग हो गए।

रायसाहब के माथे पर बल पड़ गए। आँखें निकाल कर बोले – चलो, मैं इन दुष्टों को ठीक करता हूँ। जब कभी खाने को नहीं दिया, तो आज यह नई बात क्यों ? एक आने रोज के हिसाब से मजूरी मिलेगी, जो हमेशा मिलती रही है; और इस मजूरी पर काम करना होगा, सीधे करें या टेढ़े।

फिर होरी की ओर देख कर बोले – तुम अब जाओ होरी, अपने तैयारी करो। जो बात मैंने कही है, उसका खयाल रखना। तुम्हारे गाँव से मुझे कम्से-कम पाँच सौ की आशा है।

रायसाहब झल्लाते हुए चले गए। होरी ने मन में सोचा, अभी यह कैसी-कैसी नीति और धरम की बातें कर रहे थे और एकाएक इतने गरम हो गए !

सूर्य सिर पर आ गया था। उसके तेज से अभिभूत हो कर वृक्ष ने अपना पसार समेट लिया था। आकाश पर मटियाली गर्द छाई हुई थी और सामने की पृथ्वी काँपती हुई जान पड़ती थी।

होरी ने अपना डंडा उठाया और घर चला। शगुन के रुपये कहाँ से आएँगे, यही चिन्ता उसके सिर पर सवार थी।

* * *

होरी अपने गाँव के समीप पहुँचा, तो देखा, अभी तक गोबर खेत में ऊख गोड़ रहा है और दोनों लड़कियाँ भी उसके साथ काम कर रही हैं। लू चल रहीं थी, बगुले उठ रहे थे, भूतल धधक रहा था। जैसे प्रकृति ने वायु में आग घोल दी हो। यह सब अभी तक खेत में क्यों हैं ? क्या काम के पीछे सब जान देने पर तुले हुए हैं ? वह खेत की ओर चला और दूर ही से चिल्ला कर बोला – आता क्यों नहीं गोबर, क्या काम ही करता रहेगा ? दोपहर ढल गई, कुछ सूझता है कि नहीं ?

उसे देखते ही तीनों ने कुदालें उठा लीं और उसके साथ हो लिए। गोबर साँवला, लम्बा, इकहरा युवक था, जिसे इस काम में रुचि न मालूम होती थी। प्रसन्नता की जगह मुख पर असन्तोष और विद्रोह था। वह इसलिए काम में लगा हुआ था कि वह दिखाना चाहता था, उसे खाने-पीने की कोई फिक्र नहीं है। बड़ी लड़की सोना लज्जाशील कुमारी थी, साँवली, सुडौल, प्रसन्न और चपल। गाढ़े की लाल साड़ी, जिसे वह घुटनों से मोड़ कर कमर में बाँधे हुए थी, उसके हलके शरीर पर कुछ लदी हुई-सी थी, और उसे प्रौढ़ता की गरिमा दे रही थी। छोटी रूपा पाँच-छह साल की छोकरी थी, मैली, सिर पर बालों का एक घोंसला-सा बना हुआ, एक लंगोटी कमर में बाँधे, बहुत ही ढीठ और रोनी।

रूपा ने होरी की टाँगों में लिपट कर कहा – काका ! देखो, मैंने एक ढेला भी नहीं छोड़ा। बहन कहती है, जा पेड़ तले बैठ। ढेले न तोड़े जाएँगे काका, तो मिट्टी कैसे बराबर होगी ?

होरी ने उसे गोद में उठा प्यार करते हुए कहा – तूने बहुत अच्छा किया बेटी, चल घर चलें। कुछ देर अपने विद्रोह को दबाए रहने के बाद गोबर बोला – यह तुम रोज-रोज मालिकों की खुशामद करने क्यों जाते हो ? बाकी न चुके तो प्यादा आ कर गालियाँ सुनाता है, बेगार देनी ही पड़ती है, नजर-नजराना सब तो हमसे भराया जाता है। फिर किसी की क्यों सलामी करो !

इस समय यही भाव होरी के मन में भी आ रहे थे, लेकिन लड़के के इस विद्रोह-भाव को दबाना जरूरी था। बोला – सलामी करने न जायँ, तो रहें कहाँ ? भगवान् ने जब गुलाम बना दिया है, तो अपना क्या बस है ? यह इसी सलामी की बरकत है, कि द्वार पर मँड़ैया डाल ली और किसी ने कुछ नहीं कहा। घूरे ने द्वार पर खूँटा गाड़ा था, जिस पर कारिंदों ने दो रुपये डाँड़ ले लिए थे। तलैया से कितनी मिट्टी हमने खोदी, कारिंदों ने कुछ नहीं कहा। दूसरा खोदे तो नजर देनी पड़े। अपने मतलब के लिए सलामी करने जाता हूँ, पाँव में सनीचर नहीं है और न सलामी करने में कोई बड़ा सुख मिलता है। घण्टों खड़े रहो, तब जा कर मालिक को खबर होती है। कभी बाहर निकलते हैं, कभी कहला देते हैं कि फुरसत नहीं हैं।

गोबर ने कटाक्ष किया – बड़े आदमियों की हाँ-में-हाँ मिलाने में कुछ-न-कुछ आनन्द तो मिलता ही है, नहीं लोग मेंबरी के लिए क्यों खड़े हों ?

जब सिर पर पड़ेगी तब मालूम होगा बेटा, अभी जो चाहे कह लो। पहले मैं भी यही सब बातें सोचा करता था; पर अब मालूम हुआ कि हमारी गर्दन दूसरों के पैरों के नीचे दबी हुई है, अकड़ कर निबाह नहीं हो सकता।'

* * *

गोबर ने व्यंग्य किया – तो फिर अपना इलाका हमें क्यों नहीं दे देते। हम अपने खेत, बैल, हल, कुदाल सब उन्हें देने को तैयार हैं। करेंगे बदला ? यह सब धूर्तता है, निरी मोटमरदी। जिसे दुःख होता है, वह दरजनों मोटरें नहीं रखता, महलों में नहीं रहता, हलवा-पूरी नहीं खाता और न नाच-रंग में लिप्त रहता है। मजे से राज का सुख भोग रहे हैं, उस पर दुखी हैं !

* * *

'यह बात नहीं है बेटा, छोटे-बड़े भगवान् के घर से बन कर आते हैं। सम्पत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्वजन्म में जैसे कर्म किए हैं, उनका आनन्द भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं संचा, तो भोगें क्या ?'

'यह सब मन को समझाने की बातें हैं। भगवान् सबको बराबर बनाते हैं। यहाँ जिसके हाथ में लाठी है, वह गरीबों को कुचल कर बड़ा आदमी बन जाता है।'

'यह तुम्हारा भरम है। मालिक आज भी चार घण्टे रोज भगवान् का भजन करते हैं।'

'किसके बल पर यह भजन-भाव और दान-धरम होता है;

'अपने बल पर।'

'नहीं, किसानों के बल पर और मजदूरों के बल पर। यह पाप का धन पचे कैसे ? इसीलिए दान-धरम करना पड़ता है, भगवान् का भजन भी इसीलिए होता है। भूखे-नंगे रह कर भगवान् का भजन करें, तो हम भी देखें। हमें कोई दोनों जून खाने को दे, तो हम आठों पहर भगवान् का जाप ही करते रहें। एक दिन खेत में ऊख गोड़ना पड़े तो सारी भक्ति भूल जाए।'

होरी ने हार कर कहा – अब तुम्हारे मुँह कौन लगे भाई, तुम तो भगवान् की लीला में भी टाँग अड़ाते हो।

* * *

होरी ने मुँह का पसीना पोंछ कर कहा – उसी की चिन्ता तो मारे डालती है दादा – अनाज तो सब-का-सब खलिहान में ही तुल गया। ज़मींदार ने अपना लिया, महाजन ने अपना लिया। मेरे लिए पाँच सेर अनाज बच रहा। यह भूसा तो मैंने रातों-रात ढो कर छिपा दिया था, नहीं तिनका भी न बचता। ज़मींदार तो एक ही है, मगर महाजन

तीन-तीन हैं, सहुआइन अलग और मँगरू अलग और दातादीन पण्डित अलग। किसी का ब्याज भी पूरा न चुका। ज़मींदार के भी आधे रुपये बाकी पड़ गए। सहुआइन से फिर रुपये उधार लिए तो काम चला। सब तरह किफायत करके देख लिया भैया, कुछ नहीं होता। हमारा जनम इसीलिए हुआ है कि अपना रक्त बहाएँ और बड़ों का घर भरें। मूल का दुगुना सूद भर चुका, पर मूल ज्यों-का-त्यों सिर पर सवार है। लोग कहते हैं, सादी-गमी में, तीरथ-बरत में हाथ बाँध कर खरच करो। मुदा रास्ता कोई नहीं दिखाता। रायसाहब ने बेटे के ब्याह में बीस हजार लुटा दिए। उनसे कोई कुछ नहीं कहता। मँगरू ने अपने बाप के करिया-करम में पाँच हजार लगाए। उनसे कोई कुछ नहीं पूछता। वैसी ही मरजाद तो सबकी है।

* * *

साँझ हो रही थी। होरी ऐसा अलसाया कि ऊख गोड़ने न जा सका। बैलों को नाँद में लगाया, सानी-खली दी और एक चिलम भर कर पीने लगा। इस फसल में सब कुछ खलिहान में तौल देने पर भी कोई तीन सौ कर्ज था, जिस पर कोई सौ रुपये सूद के बढ़ते जाते थे। मँगरू साह से आज पाँच साल हुए, बैल के लिए साठ रुपये लिए थे, उसमें साठ दे चुका था, पर वह साठ रुपये ज्यों-के-त्यों बने हुए थे। दातादीन पण्डित से तीस रुपये ले कर आलू बोए थे। आलू तो चोर खोद ले गए, और उस तीस के इन तीन बरसों में सौ हो गए थे। दुलारी विधवा सहुआइन थी, जो गाँव में नोन, तेल, तम्बाकू की दुकान रखे हुए थी। बँटवारे के समय उससे चालीस रुपये ले कर भाइयों को देना पड़ा था। उसके भी लगभग सौ रुपये हो गए थे, क्योंकि आने रुपये का ब्याज था। लगान के भी अभी पच्चीस रुपये बाकी पड़े हुए थे और दशहरे के दिन शगुन के रुपयों का भी कोई प्रबन्ध करना था। बाँसों के रुपये बड़े अच्छे समय पर मिल गए। शगुन की समस्या हल हो जायगी, लेकिन कौन जाने। यहाँ तो एक धोला भी हाथ में आ जाय, तो गाँव में शोर मच जाता है, और लेनदार चारों तरफ से नोचने लगते हैं। ये पाँच रुपये तो वह शगुन में देगा, चाहे कुछ हो जाय, मगर अभी ज़िंदगी के दो बड़े-बड़े काम सिर पर सवार थे। गोबर और सोना का विवाह। बहुत हाथ बाँधने पर भी तीन सौ से कम खर्च न होंगे। ये तीन सौ किसके घर से आएँगे ? कितना चाहता है कि किसी से एक पैसा कर्ज न ले, जिसका आता हो, उसका पाई-पाई चुका दे, लेकिन हर तरह का कष्ट उठाने पर भी गला नहीं छूटता। इसी तरह सूद बढ़ता जायगा और एक दिन उसका घर-द्वार सब नीलाम हो जायगा उसके बाल-बच्चे निराश्रय हो कर भीख माँगते फिरेंगे। होरी जब काम-धंधों से छुट्टी पा कर चिलम पीने लगता था, तो यह चिन्ता एक काली दीवार की भाँति चारों ओर से घेर लेती थी, जिसमें से निकलने की उसे कोई गली न सूझती थी। अगर सन्तोष था तो यही कि यह विपत्ति अकेले उसी के सिर न थी। प्रायः सभी किसानों का यही हाल था। अधिकांश की दशा तो इससे भी बदतर थी। सोभा और हीरा को उससे अलग हुए अभी कुल तीन साल हुए थे, मगर दोनों पर चार-चार सौ का बोझ लद गया था। झींगुर दो हल की खेती करता है। उस पर एक हजार से कुछ बेसी ही देना है। जियावन महतो के घर, भिखारी भीख भी नहीं पाता, लेकिन करजे का कोई ठिकाना नहीं। यहाँ कौन बचा है ?

* * *

होरी सचमुच आपे में न था। गऊ उसके लिए केवल भक्ति और श्रद्धा की वस्तु नहीं, सजीव सम्पत्ति थी। वह उससे अपने द्वार की शोभा और अपने घर का गौरव बढ़ाना चाहता था। वह चाहता था, लोग गाय को द्वार पर बँधी देख कर पूछें – यह किसका घर है ? लोग कहें – होरी महतो का। तभी लड़की वाले भी उसकी विभूति से प्रभावित होंगे। आँगन में बँधी, तो कौन देखेगा ? धनिया इसके विपरीत सशंक थी। वह गाय को सात परदों के अंदर छिपा कर रखना चाहती थी। अगर गाय आठों पहर कोठरी में रह सकती, तो शायद वह उसे बाहर न निकलने देती। यों हर बात में होरी की जीत होती थी। वह अपने पक्ष पर अड़ जाता था और धनिया को दबना पड़ता था, लेकिन आज धनिया के सामने होरी की एक न चली। धनिया लड़ने को तैयार हो गई। गोबर, सोना और रूपा, सारा घर होरी के पक्ष में था, पर धनिया ने अकेले सबको परास्त कर दिया। आज उसमें एक विचित्र आत्मविश्वास और होरी में एक विचित्र विनय का उदय हो गया था।

* * *

उधर गोबर खाना खा कर अहिराने में जा पहुँचा। आज झुनिया से उसकी बहुत-सी बातें हुई थीं। जब वह गाय ले कर चला था, तो झुनिया आधे रास्ते तक उसके साथ आई थी। गोबर अकेला गाय को कैसे ले जाता ! अपरिचित व्यक्ति के साथ जाने में उसे आपत्ति होना स्वाभाविक था। कुछ दूर चलने के बाद झु निया ने गोबर को मर्म-भरी आँखों से देख कर कहा – अब तुम काहे को यहाँ कभी आओगे ?

एक दिन पहले तक गोबर कुमार था। गाँव में जितनी युवतियाँ थीं, वह या तो उसकी बहनें थीं या भाभियाँ। बहनों से तो कोई छेड़छाड़ हो ही क्या सकती थी, भाभियाँ अलबत्ता कभी-कभी उससे ठिठोली किया करती थीं, लेकिन वह केवल सरल विनोद होता था। उनकी दृष्टि में अभी उसके यौवन में केवल फूल लगे थे। जब तक फल न लग जायँ, उस पर ढेले फेंकना व्यर्थ की बात थी। और किसी ओर से प्रोत्साहन न पा कर उसका कौमार्य उसके गले से चिपटा हुआ था। झुनिया का वंचित मन, जिसे भाभियों के व्यंग और हास-विलास ने और भी लोलुप बना दिया था, उसके कौमार्य ही पर ललचा उठा। और उस कुमार में भी पत्ता खड़कते ही किसी सोए हुए शिकारी जानवर की तरह यौवन जाग उठा।

गोबर ने आवरणहीन रसिकता के साथ कहा – अगर भिक्षुक को भीख मिलने की आसा हो, तो वह दिन-भर और रात-भर दाता के द्वार पर खड़ा रहे।

झुनिया ने कटाक्ष करके कहा – तो यह कहो, तुम भी मतलब के यार हो।

गोबर की धमनियों का रक्त प्रबल हो उठा। बोला – भूखा आदमी अगर हाथ फैलाए तो उसे क्षमा कर देना चाहिए।

झुनिया और गहरे पानी में उतरी – भिक्षुक जब तक दस द्वारे न जाय, उसका पेट कैसे भरेगा ? मैं ऐसे भिक्षुकों को मुँह नहीं लगाती। ऐसे तो गली-गली मिलते हैं। फिर भिक्षुक देता क्या है, असीस ! असीसों से तो किसी का पेट नहीं भरता।

मन्द-बुद्धि गोबर झुनिया का आशय न समझ सका। झुनिया छोटी-सी थी, तभी से ग्राहकों के घर दूध ले कर जाया करती थी। ससुराल में उसे ग्राहकों के घर दूध पहुँचाना पड़ता था। आजकल भी दही बेचने का भार उसी पर था। उसे तरह-तरह के मनुष्यों से साबिका पड़ चुका था। दो-चार रुपये उसके हाथ लग जाते थे, घड़ी-भर के लिए मनोरंजन भी हो जाता था, मगर यह आनन्द जैसे मँगनी की चीज हो। उसमें टिकाव न था, समर्पण न था, अधिकार न था। वह ऐसा प्रेम चाहती थी, जिसके लिए वह जिए और मरे, जिस पर वह अपने को समर्पित कर दे। वह केवल जुगनू की चमक नहीं, दीपक का स्थायी प्रकाश चाहती थी। वह एक गृहस्थ की बालिका थी, जिसके गृहिणीत्व को रसिकों की लगावटबाजियों ने कुचल नहीं पाया था।

गोबर ने कामना से उदीप्त मुख से कहा – भिक्षुक को एक ही द्वार पर भरपेट मिल जाय, तो क्यों द्वार-द्वार घूमे ?

झुनिया ने सदय भाव से उसकी ओर ताका। कितना भोला है, कुछ समझता ही नहीं।

'भिक्षुक को एक द्वार पर भरपेट कहाँ मिलता है। उसे तो चुटकी ही मिलेगी। सर्बस तो तभी पाओगे, जब अपना सर्बस दोगे।'

'मेरे पास क्या है झुनिया ?'

'तुम्हारे पास कुछ नहीं है? मैं तो समझती हूँ, मेरे लिए तुम्हारे पास जो कुछ है, वह बड़े-बड़े लखपतियों के पास नहीं है। तुम मुझसे भीख न माँग कर मुझे मोल ले सकते हो।'

गोबर उसे चकित नेत्रों से देखने लगा।

झुनिया ने फिर कहा – और जानते हो, दाम क्या देना होगा ? मेरा हो कर रहना पड़ेगा। फिर किसी के सामने हाथ फैलाए देखूँगी, तो घर से निकाल दूँगी।

गोबर को जैसे अँधेरे में टटोलते हुए इच्छित वस्तु मिल गई। एक विचित्र भयमिश्रित आनन्द से उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा।

* * *

जेठ की उदास और गर्म संध्या सेमरी की सड़कों और गलियों में, पानी के छिड़काव से शीतल और प्रसन्न हो रही थी। मण्डप के चारों तरफ फूलों और पौधों के गमले सजा दिए गए थे और बिजली के पंखे चल रहे थे। रायसाहब अपने कारखाने में बिजली बनवा लेते थे। उनके सिपाही पीली वर्दियाँ डाटे, नीले साफे बाँधे, जनता पर रोब जमाते फिरते थे। नौकर उजले कुरते पहने और केसरिया पाग बाँधे, मेहमानों और मुखियों का आदर-सत्कार कर रहे थे। उसी वक्त एक मोटर सिंह-द्वार के सामने आ कर रुकी और उसमें से तीन महानुभाव उतरे। वह जो खद्दर का कुरता और चप्पल पहने हुए हैं, उनका नाम पण्डित ओंकारनाथ है। आप दैनिक-पत्र 'बिजली' के यशस्वी सम्पादक हैं, जिन्हें देश-चिन्ता ने घुला डाला है। दूसरे महाशय जो कोट-पैंट में हैं, वह हैं तो वकील, पर वकालत न चलने के कारण एक बीमा-कंपनी की दलाली करते हैं और ताल्लुकेदारों को महाजनों और बैंकों से कर्ज दिलाने में वकालत से कहीं ज्यादा कमाई करते हैं। इनका नाम है श्यामबिहारी तंखा और तीसरे सज्जन जो रेशमी अचकन और तंग पाजामा पहने हुए हैं, मिस्टर बी. मेहता, यूनिवर्सिटी में दर्शनशास्त्र के अध्यापक हैं। ये तीनों सज्जन रायसाहब के सहपाठियों में हैं और शगुन के उत्सव पर निमन्त्रित हुए हैं। आज सारे इलाके के असामी आएँगे और शगुन के रुपये भेंट करेंगे। रात को धनुष-यज्ञ होगा और मेहमानों की दावत होगी। होरी ने पाँच रुपये शगुन के दे दिए हैं और एक गुलाबी मिर्जई पहने, गुलाबी पगड़ी बाँधे, घुटने तक काछनी काछे, हाथ में एक खुरपी लिए और मुख पर पाउडर लगवाए राजा जनक का माली बन गया है और गरूर से इतना फूल उठा है, मानो यह सारा उत्सव उसी के पुरुषार्थ से हो रहा है।

रायसाहब ने मेहमानों का स्वागत किया।

* * *

तश्तरी में पान आ गए थे। रायसाहब ने मेहमानों को पान और इलायची देते हुए कहा – बुद्धि अगर स्वार्थ से मुक्त हो, तो हमें उसकी प्रभुता मानने में कोई आपत्ति नहीं। समाजवाद का यही आदर्श है। हम साधु-महात्माओं के सामने इसीलिए सिर झुकाते हैं कि उनमें त्याग का बल है। इसी तरह हम बुद्धि के हाथ में अधिकार भी देना चाहते हैं, सम्मान भी, नेतृत्व भी, लेकिन सम्पत्ति किसी तरह नहीं। बुद्धि का अधिकार और सम्मान व्यक्ति के साथ चला जाता है, लेकिन उसकी सम्पत्ति विष बोने के लिए उसके बाद और भी प्रबल हो जाती है। बुद्धि के बगैर किसी समाज का संचालन नहीं हो सकता। हम केवल इस बिच्छू का डंक तोड़ देना चाहते हैं।

दूसरी मोटर आ पहुँची और मिस्टर खन्ना उतरे, जो एक बैंक के मैनेजर और शक्कर मिल के मैनजिंग डाइरेक्टर हैं। दो देवियाँ भी उनके साथ थीं। रायसाहब ने दोनों देवियाँ को उतारा। वह जो खद्दर की साड़ी पहने बहुत गम्भीर और विचारशील-सी हैं, मिस्टर खन्ना की पत्नी, कामिनी खन्ना हैं। दूसरी महिला जो ऊँची एड़ी का जूता पहने हुए हैं और जिनकी मुख-छवि पर हँसी फूटी पड़ती है, मिस मालती हैं। आप इंग्लैंड से डाक्टरी पढ़ आई हैं और अब प्रैक्टिस करती हैं। ताल्लुकेदारों के महलों में उनका बहुत प्रवेश है। आप नवयुग की साक्षात् प्रतिमा हैं। गात कोमल, पर चपलता कूट-कूट कर भरी हुई। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं, मेक-अप में प्रवीण, बला की हाजिर-जवाब, पुरुष-मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्त्व समझने वाली,

लुभाने और रिझाने की कला में निपुण । जहाँ आत्मा का स्थान है, वहाँ प्रदर्शन, जहाँ हृदय का स्थान है, वहाँ हाव-भाव, मनोद्गारों पर कठोर निग्रह, जिसमें इच्छा या अभिलाषा का लोप-सा हो गया हो।

आपने मिस्टर मेहता से हाथ मिलाते हुए कहा – सच कहती हूँ, आप सूरत से ही फिलॉसफर मालूम होते हैं। इस नई रचना में तो आपने आत्मवादियों को उधेड़ कर रख दिया। पढ़ते-पढ़ते कई बार मेरे जी में ऐसा आया कि आपसे लड़ जाऊँ। फिलॉसफरों में सहृदयता क्यों गायब हो जाती है ?

मेहता झेंप गए। बिना ब्याहे थे और नवयुग की रमणियों से पनाह माँगते थे। पुरुषों की मण्डली में खूब चहकते थे, मगर ज्यों ही कोई महिला आई और आपकी जबान बंद हुई, जैसे बुद्धि पर ताला लग जाता था। स्त्रियों से शिष्ट व्यवहार तक करने की सुधि न रहती थी।

* * *

आठ बजे शिकार-पार्टी चली । खन्ना ने कभी शिकार न खेला था, बंदूक की आवाज से काँपते थे, लेकिन मिस मालती जा रही थीं, वह कैसे रुक सकते थे । मिस्टर तंखा को अभी तक एलेक्शन के विषय में बातचीत करने का अवसर न मिला था। शायद वहाँ वह अवसर मिल जाए। रायसाहब अपने इलाके में बहुत दिनों से नहीं गए थे। वहाँ का रंग-ढंग देखना चाहते थे। कभी-कभी इलाके में आने-जाने से असामियों से एक सम्बन्ध भी तो हो जाता है और रोब भी रहता है। कारकुन और प्यादे भी सचेत रहते हैं। मिर्जा खुर्शेद को जीवन के नए अनुभव प्राप्त करने का शौक था, विशेषकर ऐसे, जिनमें कुछ साहस दिखाना पड़े। मिस मालती अकेले कैसे रहतीं। उन्हें तो रसिकों का जमघट चाहिए। केवल मिस्टर मेहता शिकार खेलने के सच्चे उत्साह से जा रहे थे।

* * *

जब से होरी के घर में गाय आ गई है, घर की श्री ही कुछ और हो गई है। धनिया का घमण्ड तो उसके सँभाल से बाहर हो-हो जाता है। जब देखो, गाय की चर्चा।

भूसा छिज गया था। ऊख में थोड़ी-सी चरी बो दी गई थी। उसी की कुट्टी काटकर जानवरों को खिलाना पड़ता था। आँखें आकाश की ओर लगी रहती थीं कि कब पानी बरसे और घास निकले। आधा आसाढ़ बीत गया और वर्षा न हुई।

सहसा एक दिन बादल उठे और आसाढ़ का पहला दौंगड़ा गिरा। किसान खरीफ बोने के लिए हल ले-लेकर निकले कि रायसाहब के कारकुन ने कहला भेजा, जब तक बाकी न चुक जायगी, किसी को हल न ले जाने दिया जायगा। किसानों पर जैसे वज्रपात हो गया। और कभी तो इतनी कड़ाई न होती थी, अबकी वह कैसा हुक्म। कोई गाँव छोड़कर भागा थोड़ा ही जाता है; अगर खेतों में हल न चले, तो रुपये कहाँ से आ जायँगे ? निकालेंगे तो खेत ही से। सब मिलकर कारकुन के पास जाकर रोये। कारकुन का नाम था पण्डित नोखेराम। आदमी बुरे न थे;

मगर मालिक का हुक्म था। उसे कैसे टालें ? अभी उस दिन रायसाहब ने होरी से कैसी दया और धर्म की बातें की थीं और आज असामियों पर यह जुल्म। होरी मालिक के पास जाने को तैयार हुआ; लेकिन फिर सोचा, उन्होंने कारकुन को एक बार जो हुक्म दे दिया, उसे क्यों टालने लगे ? वह अगुवा बनकर क्यों बुरा बने? जब और कोई कुछ नहीं बोलता, तो वही आग में क्यों कूदे ? जो सबके सिर पड़ेगी, वह भी झेल लेगा।

किसानों में खलबली मची हुई थी। सभी गाँव के महाजनों के पास रुपये के लिए दौड़े। गाँव में मँगरू साह की आजकल चढ़ी हुई थी। इस साल सन में उसे अच्छा फायदा हुआ था। गेहूँ और अलसी में भी उसने कुछ कम नहीं कमाया था। पण्डित दातादीन और दुलारी सहूआइन भी लेन-देन करती थीं। सबसे बड़े महाजन थे झिंगुरीसिंह। वह शहर के बड़े महाजन के एजेण्ट थे। उनके नीचे कई आदमी और थे, जो आसपास के देहातों में घूम-घूमकर लेन-देन करते थे। इनके उपरान्त और भी कई छोटे-मोटे महाजन थे, जो दो आने रुपये ब्याज पर बिना लिखा-पढ़ी के रुपये देते थे। गाँव वालों को लेन-देन का कुछ ऐसा शौक था कि जिनके पास दस-बीस रुपये जमा हो जाते, वही महाजन बन बैठता था। एक समय होरी ने भी महाजनी की थी। उसी का यह प्रभाव था कि लोग अभी तक यही समझते थे कि होरी के पास दबे हुए रुपये हैं। आखिर वह धन गया कहाँ ? बँटवारे में निकला नहीं, होरी ने कोई तीर्थ, व्रत, भोज किया नहीं, गया तो कहाँ गया ? जूते जाने पर भी उनके घट्ठे बने रहते हैं।

किसी ने किसी देवता को सीधा किया, किसी ने किसी को। किसी ने आना रुपया ब्याज देना स्वीकार किया, किसी ने दो आना। होरी में आत्मसम्मान का सर्वथा लोप न हुआ था। जिन लोगों के रुपये उस पर बाकी थे उनके पास कौन मुँह लेकर जाय ? झिंगुरीसिंह के सिवा उसे और कोई न सूझा। वह पक्का कागज़ लिखाते थे, नज़राना अलग लेते थे, दस्तूरी अलग, स्टाम्प की लिखाई अलग। उस पर एक साल का ब्याज पेशगी काटकर रुपया देते थे। पच्चीस रुपये का कागज लिखा, तो मुश्किल से सत्रह रुपये हाथ लगते थे; मगर इस गाढ़े समय में और क्या किया जाय ? रायसाहब की ज़बरदस्ती है, नहीं इस समय किसी के सामने क्यों हाथ फैलाना पड़ता ?

झिंगुरीसिंह बैठे दतून कर रहे थे। नाटे, मोटे, खल्वाट, काले, लम्बी नाक और बड़ी-बड़ी मूँछों वाले आदमी थे, बिलकुल विदूषक-जैसे। और थे भी बड़े हँसोड़। इस गाँव को अपनी ससुराल बनाकर मर्दों से साले या ससुर और औरतों से साली या सलहज का नाता जोड़ लिया था। रास्ते में लड़के उन्हें चिढ़ाते – पण्डितजी पाल्लगी ! और झिंगुरीसिंह उन्हें चटपट आशीर्वाद देते– तुम्हारी आँखें फूटें, घुटना टूटे, मिर्गी आये, घर में आग लग जाय आदि। लड़के इस आशीर्वाद से कभी न अघाते थे; मगर लेन-देन में बड़े कठोर थे। सूद की एक पाई न छोड़ते थे और वादे पर बिना रुपये लिये द्वार से न टलते थे।

होरी ने सलाम करके अपनी विपत्ति-कथा सुनायी।

झिंगुरीसिंह ने मुस्कराकर कहा– वह सब पुराना रुपया क्या कर डाला?

'पुराने रुपये होते ठाकुर, तो महाजनी से अपना लगा न छुड़ा लेता, कि सूद भरते किसी को अच्छा लगता है ?'

'गड़े रुपये न निकलें, चाहें सूद कितना ही देना पड़े। तुम लोगों की यही नीति है।'

'कहाँ के गड़े रुपये बाबू साहब, खाने को तो होता नहीं। लड़का जवान हो गया; ब्याह का कहीं ठिकाना नहीं। बड़ी लड़की भी ब्याहने जोग हो गई। रुपये होते, तो किस दिन के लिए गाड़ रखते ?'

झिंगुरीसिंह ने जब से उसके द्वार पर गाय देखी थी, उस पर दाँत लगाए हुए थे। गाय का डील-डौल और गठन कह रहा था कि उसमें पाँच सेर से कम दूध नहीं है। मन में सोच लिया था, होरी को किसी अरदब में डालकर गाय को उड़ा लेना चाहिए। आज वह अवसर आ गया।

* * *

सहसा गोबर आकर घबड़ाई हुई आवाज में बोला – दादा, सुन्दरिया को क्या हो गया ? क्या काले नाग ने छू लिया ? वह तो पड़ी तड़प रही है।

होरी चौके में जा चुका था। थाली सामने छोड़कर बाहर निकल आया और बोला – क्या असगुन मुँह से निकालते हो। अभी तो मैं देखे आ रहा हूँ। लेटी थी।

तीनों बाहर गये। चिराग लेकर देखा। सुन्दरिया के मुँह से फिचकुर निकल रहा था। आँखें पथरा गई थीं, पेट फूल गया था और चारों पाँव फैल गए थे। धनिया सिर पीटने लगी। होरी पण्डित दातादीन के पास दौड़ा। गाँव में पशु-चिकित्सा के वही आचार्य थे। पण्डितजी सोने जा रहे थे। दौड़े हुए आये। दम-के-दम में सारा गाँव जमा हो गया। गाय को किसी ने कुछ खिला दिया। लक्षण स्पष्ट थे। साफ विष दिया गया है; लेकिन गाँव में कौन ऐसा मुद्दई है, जिसने विष दिया हो; ऐसी वारदात तो इस गाँव में कभी हुई नहीं; लेकिन बाहर का कौन आदमी गाँव में आया ! होरी की किसी से दुश्मनी भी न थी कि उस पर सन्देह किया जाए। हीरा से कुछ कहा-सुनी हुई थी; मगर वह भाई-भाई का झगड़ा था। सबसे ज्यादा दुखी तो हीरा ही था। धमकियाँ दे रहा था जिसने यह हत्यारों का काम किया है, उसे पाए तो खून पी जाए। वह लाख गुस्सैल हो, पर नीच काम नहीं कर सकता।

आधी रात तक जमघट रहा। सभी होरी के दुःख में दुखी थे और बधिक को गालियाँ देते थे। वह इस समय पकड़ा जा सकता, तो उसके प्राणों की कुशल न थी। जब यह हाल है तो कोई जानवरों को बाहर कैसे बाँधेगा ? अभी तक रात-बिरात सभी जानवर बाहर पड़े रहते थे। किसी तरह की चिन्ता न थी; लेकिन अब तो एक नई विपत्ति आ खड़ी हुई थी। क्या गाय थी कि बस देखता रहे ! पूजने जोग। पाँच सेर से कम दूध न था। सौ-सौ का एक-एक बाछा होता। आते देर न हुई और यह वज्र गिर पड़ा।

* * *

आज होरी के घर भोजन नहीं पका। न किसी ने बैलों को सानी-पानी दिया। सारे गाँव में सनसनी फैली हुई थी। दो-दो चार-चार आदमी जगह-जगह जमा हो कर इसी विषय की आलोचना कर रहे थे। हीरा अवश्य कहीं

भाग गया। देखा होगा कि भेद खुल गया, अब जेहल जाना पड़ेगा, हत्या अलग लगेगी। बस, कहीं भाग गया। पुनिया अलग रो रही थी, कुछ कहा न सुना, न जाने कहाँ चल दिए।

जो कुछ कसर रह गई थी, वह संध्या-समय हल्के के थानेदार ने आ कर पूरी कर दी। गाँव के चौकीदार ने इस घटना की रपट की, जैसा उसका कर्त्तव्य था, और थानेदार साहब भला, अपने कर्त्तव्य से कब चूकने वाले थे? अब गाँव वालों को भी उनका सेवा-सत्कार करके अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। दातादीन, झिंगुरीसिंह, नोखेराम, उनके चारों प्यादे, मँगरू साह और लाला पटेश्वरी, सभी आ पहुँचे और दारोगाजी के सामने हाथ बाँध कर खड़े हो गए। होरी की तलबी हुई। जीवन में यह पहला अवसर था कि वह दारोगा के सामने आया। ऐसा डर रहा था, जैसे फाँसी हो जायगी। धनिया को पीटते समय उसका एक-एक अंग गड़क रहा था। दारोगा के सामने कछुए की भाँति भीतर सिमटा जाता था। दारोगा ने उसे आलोचक नेत्रों से देखा और उसके हृदय तक पहुँच गए। आदमियों की नस पहचानने का उन्हें अच्छा अभ्यास था। किताबी मनोविज्ञान में कोरे, पर व्यावहारिक मनोविज्ञान के मर्मज्ञ थे। यकीन हो गया, आज अच्छे का मुँह देख कर उठे हैं। और होरी का चेहरा कहे देता था, इसे केवल एक घुड़की काफी है।

दारोगा ने पूछा – तुझे किस पर शुबहा है?

होरी ने जमीन छुई और हाथ बाँध कर बोला – मेरा सुबहा किसी पर नहीं है सरकार, गाय अपने मौत से मरी है। बुड्ढी हो गई थी।

धनिया भी आ कर पीछे खड़ी थी। तुरन्त बोली – गाय मारी है तुम्हारे भाई हीरा ने।

* * *

होरी और धनिया में उस दिन से बराबर मनमुटाव चला आता था। गोबर से भी होरी की बोलचाल बंद थी। माँ-बेटे ने मिल कर जैसे उसका बहिष्कार कर दिया था। अपने घर में परदेसी बना हुआ था। दो नावों पर सवार होने वालों की जो दुर्गति होती है, वही उसकी हो रही थी। गाँव में भी अब उसका उतना आदर न था। धनिया ने अपने साहस से स्त्रियों का ही नहीं, पुरुषों का नेतृत्व भी प्राप्त कर लिया था। महीनों तक आसपास के इलाकों में इस काण्ड की खूब चर्चा रही। यहाँ तक कि वह एक अलौकिक रूप तक धारण करता जाता था – 'धनिया नाम है उसका जी। भवानी का इष्ट है उसे। दारोगाजी ने ज्यों ही उसके आदमी के हाथ में हथकड़ी डाली कि धनिया ने भवानी का सुमिरन किया। भवानी उसके सिर आ गई। फिर तो उसमें इतनी शक्ति आ गई कि उसने एक झटके में पति की हथकड़ी तोड़ डाली और दारोगा की मूँछें पकड़ कर उखाड़ लीं, फिर उसकी छाती पर चढ़ बैठी। दारोगा ने जब बहुत मानता की, तब जा कर उसे छोड़ा।' कुछ दिन तो लोग धनिया के दर्शनों को आते रहे। वह बात अब पुरानी पड़ गई थी, लेकिन गाँव में धनिया का सम्मान बहुत बढ़ गया था। उसमें अद्भुत साहस है और समय पड़ने पर वह मर्दों के भी कान काट सकती है।

मगर धीरे-धीरे धनिया में एक परिवर्तन हो रहा था। होरी को पुनिया की खेती में लगे देख कर भी वह कुछ न बोलती थी। और यह इसलिए नहीं कि वह होरी से विरक्त हो गई थी, बल्कि इसलिए कि पुनिया पर अब उसे भी दया आती थी। हीरा का घर से भाग जाना उसकी प्रतिशोध-भावना की तुष्टि के लिए काफी था।

इसी बीच में होरी को ज्वर आने लगा। फस्ली बुखार फैला था ही। होरी उसके चपेट में आ गया। और कई साल के बाद जो ज्वर आया, तो उसने सारी बकाया चुका ली। एक महीने तक होरी खाट पर पड़ा रहा। इस बीमारी ने होरी को तो कुचल डाला ही, पर धनिया पर भी विजय पा गई। पति जब मर रहा है, तो उससे कैसा बैर ? ऐसी दशा में तो बैरियों से भी बैर नहीं रहता, वह तो अपना पति है। लाख बुरा हो, पर उसी के साथ जीवन के पच्चीस साल कटे हैं, सुख किया है तो उसी के साथ, दुःख भोगा है तो उसी के साथ । अब तो चाहे वह अच्छा है या बुरा, अपना है। दाढ़ीजार ने मुझे सबके सामने मारा, सारे गाँव के सामने मेरा पानी उतार लिया, लेकिन तब से कितना लज्जित है कि सीधे ताकता नहीं। खाने आता है तो सिर झुकाए खा कर उठ जाता है, डरता रहता है कि मैं कुछ कह न बैठूँ।

होरी जब अच्छा हुआ, तो पति-पत्नी में मेल हो गया था।

* * *

सर्वसम्मति से यही तय हुआ कि होरी पर सौ रुपये तावान लगा दिया जाए। केवल एक दिन गाँव के आदमियों को बटोर कर उनकी मंजूरी ले लेने का अभिनय आवश्यक था। सम्भव था, इसमें दस-पाँच दिन की देर हो जाती। पर आज ही रात को झुनिया के लड़का पैदा हो गया। और दूसरे ही दिन गाँव वालों की पंचायत बैठ गई। होरी और धनिया, दोनों अपनी किस्मत का फैसला सुनने के लिए बुलाए गए। चौपाल में इतनी भीड़ थी कि कहीं तिल रखने की जगह न थी। पंचायत ने फैसला किया कि होरी पर सौ रुपये नकद और तीस मन अनाज डाँड़ लगाया जाए।

धनिया भरी सभा में रुँधे हुए कण्ठ से बोली – पंचो, गरीब को सता कर सुख न पाओगे, इतना समझ लेना। हम तो मिट जाएँगे, कौन जाने, इस गाँव में रहें या न रहें, लेकिन मेरा सराप तुमको भी जरूर लगेगा। मुझसे इतना कड़ा जरीबाना इसलिए लिया जा रहा है कि मैंने अपने बहू को क्यों अपने घर में रखा। क्यों उसे घर से निकाल कर सड़क की भिखारिन नहीं बना दिया। यही न्याय है – ऐं ?

पटेश्वरी बोले – वह तेरी बहू नहीं है, हरजाई है।

* * *

धनिया तिलमिला कर बोली – यह पंच नहीं हैं, राच्छस हैं, पक्के राच्छस ! यह सब हमारी जगह-जमीन छीन कर माल मारना चाहते हैं। डाँड़ तो बहाना है। समझाती जाती हूँ, पर तुम्हारी आँखें नहीं खुलतीं। तुम इन पिसाचों से दया की आसा रखते हो ? सोचते हो, दस-पाँच मन निकाल कर तुम्हें दे देंगे। मुँह धो रखो।

जब होरी ने न माना और टोकरी सिर पर रखने लगा, तो धनिया ने दोनों हाथों से पूरी शक्ति के साथ टोकरी पकड़ ली और बोली – इसे तो मैं न ले जाने दूँगी, चाहे तुम मेरी जान ही ले लो। मर-मर कर हमने कमाया, पहर रात-रात को सींचा, अगोरा, इसलिए कि पंच लोग मूँछों पर ताव दे कर भोग लगाएँ और हमारे बच्चे दाने-दाने को तरसें ! तुमने अकेले ही सब कुछ नहीं कर लिया है। मैं भी अपने बच्चियों के साथ सती हुई हूँ। सीधे से टोकरी रख दो, नहीं आज सदा के लिए नाता टूट जायगा। कहे देती हूँ।

होरी सोच में पड़ गया। धनिया के कथन में सत्य था। उसे अपने बाल-बच्चों की कमाई छीन कर तावान देने का क्या अधिकार है।

* * *

जब गोबर चलने लगा, तो बुढ़िया ने खाँड़ और सत्तू मिला कर उसे खाने को दिया। गाँव के और कई आदमी मजूरी की टोह में शहर जा रहे थे। बातचीत में रास्ता कट गया और नौ बजते-बजते सब लोग अमीनाबाद के बाजार में आ पहुँचे। गोबर हैरान था, इतने आदमी नगर में कहाँ से आ गए ? आदमी पर आदमी गिरा पड़ता था।

उस दिन बाजार में चार-पाँच सौ मजदूरों से कम न थे। राज और बढ़ई और लोहार और बेलदार और खाट बुनने वाले और टोकरी ढोने वाले और संगतराश सभी जमा थे। गोबर यह जमघट देख कर निराश हो गया। इतने सारे मजदूरों को कहाँ काम मिला जाता है। और उसके हाथ तो कोई औजार भी नहीं है। कोई क्या जानेगा कि वह क्या काम कर सकता है। कोई उसे क्यों रखने लगा ? बिना औजार के उसे कौन पूछेगा ?

धीरे-धीरे एक-एक करके मजदूरों को काम मिलता जा रहा था। कुछ लोग निराश हो कर घर लौटे जा रहे थे। अधिकतर वह बूढ़े और निकम्मे बच रहे थे, जिनका कोई पुछत्तर न था। और उन्हीं में गोबर भी था। लेकिन अभी आज उसके पास खाने को है। कोई गम नहीं।

सहसा मिर्जा खुर्शेद ने मजदूरों के बीच में आ कर ऊँची आवाज से कहा – जिसको छह आने रोज पर काम करना हो, वह मेरे साथ आए। सबको छह आने मिलेंगे। पाँच बजे छुट्टी मिलेगी। दस-पाँच राजों और बढ़इयों को छोड़ कर सब-के-सब उनके साथ चलने को तैयार हो गए। चार सौ फटेहालों की एक विशाल सेना सज गई। आगे मिर्जा थे, कन्धों पर मोटा सोटा रखे हुए। पीछे भुखमरों की लम्बी कतार थी, जैसे भेड़ें हों।

* * *

मेहता गम्भीर भाव से बोले – आपका खयाल बिलकुल गलत है मिर्जाजी ! मिस मालती हसीन हैं, खुशमिजाज हैं, समझदार हैं, रोशनखयाल हैं और भी उनमें कितनी खूबियाँ हैं, लेकिन मैं अपने जीवन-संगिनी में जो बात देखना चाहता हूँ, वह उनमें नहीं है और न शायद हो सकती है। मेरे जेहन में औरत वफा और त्याग की मूर्ति है, जो अपनी बेजबानी से, अपनी कुर्बानी से, अपने को बिलकुल मिटा कर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है। देह पुरुष की रहती है पर आत्मा स्त्री की होती है। आप कहेंगे, मर्द अपने को क्यों नहीं मिटाता ? औरत ही से क्यों इसकी आशा करता है ? मर्द में वह सामर्थ्य ही नहीं है। वह अपने को मिटाएगा, तो शून्य हो जायगा। वह किसी खोह में जा बैठेगा और सर्वात्मा में मिल जाने का स्वप्न देखेगा। वह तेज प्रधान जीव है, और अहंकार में यह समझ कर कि वह ज्ञान का पुतला है, सीधा ईश्वर में लीन होने की कल्पना किया करता है। स्त्री पृथ्वी की भाँति धैर्यवान् है, शान्ति-सम्पन्न है, सहिष्णु है। पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं, तो वह महात्मा बन जाता है। नारी में पुरुष के गुण आ जाते हैं तो वह कुलटा हो जाती है। पुरुष आकर्षित होता है स्त्री की ओर, जो सर्वांश में स्त्री हो। मालती ने अभी तक मुझे आकर्षित नहीं किया। मैं आपसे किन शब्दों में कहूँ कि स्त्री मेरी नजरों में क्या है। संसार में जो कुछ सुन्दर है, उसी की प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूँ, मैं उससे यह आशा रखता हूँ कि मैं उसे मार ही डालूँ तो भी प्रतिहिंसा का भाव उसमें न आए। अगर मैं उसकी आँखों के सामने किसी स्त्री को प्यार करूँ तो भी उसकी ईर्ष्या न जागे। ऐसी नारी पा कर मैं उसके चरणों में गिर पड़ूँगा और उस पर अपने को अर्पण कर दूँगा।

मिर्जा ने सिर हिला कर कहा – ऐसी औरत आपको इस दुनिया में तो शायद ही मिले।

मेहता ने हाथ मार कर कहा – एक नहीं हजारों, वरना दुनिया वीरान हो जाती।

'ऐसी एक ही मिसाल दीजिए।'

'मिसेज खन्ना को ही ले लीजिए।'

'लेकिन खन्ना !'

'खन्ना अभागे हैं, जो हीरा पा कर काँच का टुकड़ा समझ रहे हैं। सोचिए, कितना त्याग है और उसके साथ ही कितना प्रेम है। खन्ना के रूपासक्त मन में शायद उसके लिए रत्ती-भर भी स्थान नहीं है, लेकिन आज खन्ना पर कोई आगत आ जाय, तो वह अपने को उन पर न्योछावर कर देगी। खन्ना आज अन्धे या कोढ़ी हो जायँ, तो भी उसकी वफादारी में फर्क न आएगा। अभी खन्ना उसकी कद्र नहीं कर रहे हैं, मगर आप देखेंगे, एक दिन यही खन्ना उसके चरण धो-धो कर पिएँगे। मैं ऐसी बीवी नहीं चाहता, जिससे मैं आइंस्टीन के सिद्धान्त पर बहस कर सकूँ, या जो मेरी रचनाओं के प्रूफ देखा करे। मैं ऐसी औरत चाहता हूँ, जो मेरे जीवन को पवित्र और उज्ज्वल बना दे, अपने प्रेम और त्याग से।'

* * *

होरी की फसल सारी की सारी डाँड़ की भेंट हो चुकी थी। वैशाख तो किसी तरह कटा, मगर जेठ लगते-लगते घर में अनाज का एक दाना न रहा। पाँच-पाँच पेट खाने वाले और घर में अनाज नदारद। दोनों जून न मिले, एक जून तो मिलना ही चाहिए। भर-पेट न मिले, आधा पेट तो मिले। निराहार कोई कै दिन रह सकता है ! उधार ले तो किससे ? गाँव के छोटे-बड़े महाजनों से तो मुँह चुराना पड़ता था। मजूरी भी करे, तो किसकी ? जेठ में अपना ही काम ढेरों था। ऊख की सिंचाई लगी हुई थी, लेकिन खाली पेट मेहनत भी कैसे हो !

साँझ हो गई थी। छोटा बच्चा रो रहा था। माँ को भोजन न मिले, तो दूध कहाँ से निकले ? सोना परिस्थिति समझती थी, मगर रूपा क्या समझे। बार-बार रोटी-रोटी चिल्ला रही थी। दिन-भर तो कच्ची अमिया से जी बहला, मगर अब तो कोई ठोस चीज चाहिए। होरी दुलारी सहुआइन से अनाज उधार माँगने गया था, पर वह दुकान बंद करके पैंठ चली गई थी। मँगरू साह ने केवल इनकार ही न किया, लताड़ भी दी – उधार माँगने चले हैं, तीन साल से धेला सूद नहीं दिया, उस पर उधार दिए जाओ। अब आकबत में देंगे। खोटी नीयत हो जाती है, तो यही हाल होता है। भगवान् से भी यह अनीति नहीं देखी जाती है। कारकुन की डाँट पड़ी, तो कैसे चुपके से रुपये उगल दिए। मेरे रुपये, रुपये ही नहीं हैं और मेहरिया है कि उसका मिजाज ही नहीं मिलता।

* * *

मालती बाहर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी। उसके जीवन में हँसी ही हँसी नहीं है, केवल गुड़ खा कर कौन जी सकता है ! और जीए भी तो वह कोई सुखी जीवन न होगा। वह हँसती है, इसलिए कि उसे इसके भी दाम मिलते हैं। उसका चहकना और चमकना, इसलिए नहीं है कि वह चहकने को ही जीवन समझती है, या उसने निजत्व को अपने आँखों में इतना बढ़ा लिया है कि जो कुछ करे, अपने ही लिए करे। नहीं, वह इसलिए चहकती है और विनोद करती है कि इससे उसके कर्त्तव्य का भार कुछ हल्का हो जाता है। उसके बाप उन विचित्र जीवों में थे, जो केवल जबान की मदद से लाखों के वारे-न्यारे करते थे। बड़े-बड़े ज़मींदारों और रईसों की जायदादें बिकवाना, उन्हें कर्ज दिलाना या उनके मुआमलों का अफसरों से मिल कर तय करा देना, यही उनका व्यवसाय था। दूसरे शब्दों में दलाल थे। इस वर्ग के लोग बड़े प्रतिभावान् होते हैं। जिस काम से कुछ मिलने की आशा हो, वह उठा लेंगे, और किसी न किसी तरह उसे निभा भी देंगे। किसी राजा की शादी किसी राजकुमारी से ठीक करवा दी और दस-बीस हजार उसी में मार लिए। यही दलाल जब छोटे-छोटे सौदे करते हैं, तो टाउट कहे जाते हैं, और हम उनसे घृणा करते हैं। बड़े-बड़े काम करके वही टाउट राजाओं के साथ शिकार खेलता है और गर्वनरों की मेज पर चाय पीता है। मिस्टर कौल उन्हीं भाग्यवानों में से थे। उनके तीन लड़कियाँ ही लड़कियाँ थीं ! उनका विचार था कि तीनों को इंग्लैंड भेज कर शिक्षा के शिखर पर पहुँचा दें। अन्य बहुत से बड़े आदमियों की तरह उनका भी खयाल था कि इंग्लैंड में शिक्षा पा कर आदमी कुछ और हो जाता है। शायद वहाँ की जलवायु में बुद्धि को तेज कर देने की कोई शक्ति है, मगर उनकी यह कामना एक-तिहाई से ज्यादा पूरी न हुई। मालती इंग्लैंड में ही थी कि उन पर फालिज गिरा और बेकाम कर गया। अब बड़ी मुश्किल से दो आदमियों के सहारे उठते-बैठते थे। जबान तो बिलकुल बंद ही हो गई। और जब जबान ही बंद हो गई तो आमदनी भी बंद हो गई। जो कुछ थी, जबान ही की कमाई थी। कुछ बचा कर रखने की उनकी आदत न थी। अनियमित आय थी, और अनियमित खर्च था,

इसलिए इधर कई साल से बहुत तंगहाल हो रहे थे। सारा दायित्व मालती पर आ पड़ा। मालती के चार-पाँच सौ रुपये में वह भोग-विलास और ठाठ-बाट तो क्या निभता ! हाँ, इतना था कि दोनों लड़कियों की शिक्षा होती जाती थी और भलेमानसों की तरह ज़िंदगी बसर होती थी। मालती सुबह से पहर रात तक दौड़ती रहती थी। चाहती थी कि पिता सात्त्विकता के साथ रहें, लेकिन पिताजी को शराब-कबाब का ऐसा चस्का पड़ा था कि किसी तरह गला न छोड़ता था। कहीं से कुछ न मिलता, तो एक महाजन से अपने बँगले पर प्रोनोट लिख कर हजार दो हजार ले लेते थे। महाजन उनका पुराना मित्र था, जिसने उनकी बदौलत लेन-देन में लाखों कमाए थे, और मुरौवत के मारे कुछ बोलता न था, उसके पच्चीस हजार चढ़ चुके थे, और जब चाहता, कुर्की करा सकता था, मगर मित्रता की लाज निभाता जाता था। आत्मसेवियों में जो निर्लज्जता आ जाती है, वह कौल में भी थी। तकाजे हुआ करें, उन्हें परवा न थी। मालती उनके अपव्यय पर झुँझलाती रहती थी, लेकिन उसकी माता जो साक्षात् देवी थीं और इस युग में भी पति की सेवा को नारी-जीवन का मुख्य हेतु समझती थीं, उसे समझाती रहती थीं, इसलिए गृह-युद्ध न होने पाता था।

* * *

मिस्टर मेहता का भाषण शुरू हुआ –

'देवियो, जब मैं इस तरह आपको सम्बोधित करता हूँ, तो आपको कोई बात खटकती नहीं। आप इस सम्मान को अपना अधिकार समझती हैं, लेकिन आपने किसी महिला को पुरुषों के प्रति 'देवता' का व्यवहार करते सुना है ? उसे आप देवता कहें, तो वह समझेगा, आप उसे बना रही हैं। आपके पास दान देने के लिए दया है, श्रद्धा है, त्याग है। पुरुष के पास दान के लिए क्या है ? वह देवता नहीं, लेवता है। वह अधिकार के लिए हिंसा करता है, संग्राम करता है, कलह करता है ...'

तालियाँ बजीं। रायसाहब ने कहा – औरतों को खुश करने का इसने कितना अच्छा ढंग निकाला।

'बिजली' सम्पादक को बुरा लगा – कोई नई बात नहीं। मैं कितनी ही बार यह भाव व्यक्त कर चुका हूँ।

मेहता आगे बढ़े – इसलिए जब मैं देखता हूँ, हमारी उन्नत विचारों वाली देवियाँ उस दया और श्रद्धा और त्याग के जीवन से असंतुष्ट हो कर संग्राम और कलह और हिंसा के जीवन की ओर दौड़ रही हैं और समझ रही हैं कि यही सुख का स्वर्ग है, तो मैं उन्हें बधाई नहीं दे सकता।

मिसेज खन्ना ने मालती की ओर सगर्व नेत्रों से देखा। मालती ने गर्दन झुका ली।

खुर्शेद बोले – अब कहिए। मेहता दिलेर आदमी है। सच्ची बात कहता है और मुँह पर।

'बिजली' सम्पादक ने नाक सिकोड़ी – अब वह दिन लद गए, जब देवियाँ इन चकमों में आ जाती थीं। उनके अधिकार हड़पते जाओ और कहते जाओ, आप तो देवी हैं, लक्ष्मी हैं, माता हैं।

मेहता आगे बढ़े – स्त्री को पुरुष के रूप में, पुरुष के कर्म में रत देख कर मुझे उसी तरह वेदना होती है, जैसे पुरुष को स्त्री के रूप में, स्त्री के कर्म करते देख कर। मुझे विश्वास है, ऐसे पुरुषों को आप अपने विश्वास और प्रेम का पात्र नहीं समझतीं और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, ऐसी स्त्री भी पुरुष के प्रेम और श्रद्धा का पात्र नहीं बन सकती।

* * *

मेहता का भाषण जारी था – देवियो, मैं उन लोगों में नहीं हूँ, जो कहते हैं, स्त्री और पुरुष में समान शक्तियाँ हैं, समान प्रवृत्तियाँ हैं, और उनमें कोई विभिन्नता नहीं है। इससे भयंकर असत्य की मैं कल्पना नहीं कर सकता। यह वह असत्य है, जो युग-युगान्तरों से संचित अनुभव को उसी तरह ढँक लेना चाहता है, जैसे बादल का एक टुकड़ा सूर्य को ढँक लेता है। मैं आपको सचेत किए देता हूँ कि आप इस जाल में न फँसें। स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अँधेरे से। मनुष्य के लिए क्षमा और त्याग और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है। पुरुष धर्म और अध्यात्म और ऋषियों का आश्रय ले कर उस लक्ष्य पर पहुँचने के लिए सदियों से जोर मार रहा है, पर सफल नहीं हो सका। मैं कहता हूँ, उसका सारा अध्यात्म और योग एक तरफ और नारियों का त्याग एक तरफ।

'पुरुष कहता है, जितने दार्शनिक और वैज्ञानिक आविष्कारक हुए हैं, वह सब पुरुष थे। जितने बड़े-बड़े महात्मा हुए हैं, वह सब पुरुष थे। सभी योद्धा, सभी राजनीति के आचार्य, बड़े-बड़े नाविक सब कुछ पुरुष थे, लेकिन इन बड़ों-बड़ों के समूहों ने मिल कर किया क्या? महात्माओं और धर्म-प्रवर्तकों ने संसार में रक्त की नदियाँ बहाने और वैमनस्य की आग भड़काने के सिवा और क्या किया, योद्धाओं ने भाइयों की गर्दनें काटने के सिवा और क्या यादगार छोड़ी, राजनीतिज्ञों की निशानी अब केवल लुप्त साम्राज्यों के खण्डहर रह गए हैं, और आविष्कारकों ने मनुष्य को मशीन का गुलाम बना देने के सिवा और क्या समस्या हल कर दी? पुरुषों की इस रची हुई संस्कृति में शान्ति कहाँ है? सहयोग कहाँ है?'

ओंकारनाथ उठ कर जाने को हुए – विलासियों के मुँह से बड़ी-बड़ी बातें सुन कर मेरी देह भस्म हो जाती है।

* * *

गोविन्दी का अन्तःकरण खिला जा रहा था। ऐसी फुरेरियाँ वहाँ कभी न उठीं थीं। जितने आदमियों से उसका परिचय था, उनमें मेहता का स्थान सबसे ऊँचा था। उनके मुख से यह प्रोत्साहन पा कर वह मतवाली हुई जा रही थी। उसी नशे में बोली – तो चलिए, मुझे उनके दर्शन करा दीजिए।

मेहता ने बालक के कपोलों में मुँह छिपा कर कहा – वह तो यहीं बैठी हुई हैं।

'कहाँ, मैं तो नहीं देख रही हूँ।'

'मैं उसी देवी से बोल रहा हूँ।'

गोविन्दी ने जोर से कहकहा मारा – आपने आज मुझे बनाने की ठान ली, क्यों ?

मेहता ने श्रद्धावनत हो कर कहा – देवीजी, आप मेरे साथ अन्याय कर रही हैं, और मुझसे ज्यादा अपने साथ। संसार में ऐसे बहुत कम प्राणी हैं, जिनके प्रति मेरे मन में श्रद्धा हो। उन्हीं में एक आप हैं। आपका धैर्य और त्याग और शील और प्रेम अनुपम है। मैं अपने जीवन में सबसे बड़े सुख की जो कल्पना कर सकता हूँ वह आप जैसी किसी देवी के चरणों की सेवा है। जिस नारीत्व को मैं आदर्श मानता हूँ, आप उसकी सजीव प्रतिमा हैं।

गोविन्दी की आँखों से आनन्द के आँसू निकल पड़े। इस श्रद्धा-कवच को धारण करके वह किस विपत्ति का सामना न करेगी ? उसके रोम-रोम में जैसे मृदु-संगीत की ध्वनि निकल पड़ी। उसने अपने रमणीत्व का उल्लास मन में दबा कर कहा – आप दार्शनिक क्यों हुए मेहताजी – आपको तो कवि होना चाहिए था।

मेहता सरलता से हँस कर बोले – क्या आप समझती हैं, बिना दार्शनिक हुए ही कोई कवि हो सकता है ? दर्शन तो केवल बीच की मंजिल है।

'तो अभी आप कवित्व के रास्ते में हैं, लेकिन आप यह भी जानते हैं, कवि को संसार में कभी सुख नहीं मिलता ?'

'जिसे संसार दु:ख कहता है वही कवि के लिए सुख है। धन और ऐश्वर्य, रूप और बल, विद्या और बुद्धि, ये विभूतियाँ संसार को चाहे कितना ही मोहित कर लें, कवि के लिए यहाँ ज़रा भी आकर्षण नहीं है, उसके मोद और आकर्षण की वस्तु तो बुझी हुई आशाएँ और मिटी हुई स्मृतियाँ और टूटे हुए हृदय के आँसू हैं। जिस दिन इन विभूतियों में उसका प्रेम न रहेगा, उस दिन वह कवि न रहेगा। दर्शन जीवन के इन रहस्यों से केवल विनोद करता है, कवि उनमें लय हो जाता है। मैंने आपकी दो-चार कविताएँ पढ़ी हैं और उनमें जितनी पुलक, जितना कम्पन, जितनी मधुर व्यथा, जितना रुलाने वाला उन्माद पाया है, वह मैं ही जानता हूँ। प्रकृति ने हमारे साथ कितना बड़ा अन्याय किया है कि आप-जैसी कोई दूसरी देवी नहीं बनाई।

* * *

मिर्जा खुर्शेद का हाता क्लब भी है, कचहरी भी, अखाड़ा भी। दिन-भर जमघट लगा रहता है। मुहल्ले में अखाड़े के लिए कहीं जगह नहीं मिलती थी। मिर्जा ने एक छप्पर डलवा कर अखाड़ा बनवा दिया है, वहाँ नित्य सौ-पचास लड़ंतिए आ जुटते हैं। मिर्जाजी भी उनके साथ जोर करते हैं। मुहल्ले की पंचायतें भी यहीं होती हैं। मियाँ-बीवी और सास-बहू और भाई-भाई के झगड़े-टंटे यही चुकाए जाते हैं। मुहल्ले के सामाजिक जीवन का यही केन्द्र है और राजनैतिक आन्दोलन का भी। आए दिन सभाएँ होती रहती हैं। यहीं स्वयंसेवक टिकते हैं, यहीं उनके

प्रोग्राम बनते हैं, यहीं से नगर का राजनैतिक संचालन होता है। पिछले जलसे में मालती नगर-कांग्रेस-कमेटी की सभानेत्री चुन ली गई है। तब से इस स्थान की रौनक और भी बढ़ गई।

गोबर को यहाँ रहते साल भर हो गया। अब वह सीधा-साधा ग्रामीण युवक नहीं है। उसने बहुत कुछ दुनिया देख ली और संसार का रंग-ढंग भी कुछ-कुछ समझने लगा है। मूल में वह अब भी देहाती है, पैसे को दाँत से पकड़ता है, स्वार्थ को कभी नहीं छोड़ता, और परिश्रम से जी नहीं चुराता, न कभी हिम्मत हारता है, लेकिन शहर की हवा उसे भी लग गई है। उसने पहले महीने में तो केवल मजूरी की और आधा पेट खा कर थोड़े से रुपये बचा लिए। फिर वह कचालू और मटर और दही-बड़े के खोंचे लगाने लगा। इधर ज्यादा लाभ देखा, तो नौकरी छोड़ दी। गर्मियों में शर्बत और बरफ की दुकान भी खोल दी। लेन-देन में खरा था, इसलिए उसकी साख जम गई। जाड़े आए, तो उसने शर्बत की दुकान उठा दी और गर्म चाय पिलाने लगा। अब उसकी रोजाना आमदनी ढाई-तीन रुपये से कम नहीं है। उसने अंग्रेजी फैशन के बाल कटवा लिए हैं, महीन धोती और पंप-शू पहनता है। एक लाल ऊनी चादर खरीद ली और पान-सिगरेट का शौकीन हो गया है। सभाओं में आने-जाने से उसे कुछ-कुछ राजनैतिक ज्ञान भी हो चला है। राष्ट्र और वर्ग का अर्थ समझने लगा है। सामाजिक रूढ़ियों की प्रतिष्ठा और लोक-निन्दा का भय अब उसमें बहुत कम रह गया है। आए दिन की पंचायतों ने उसे निस्संकोच बना दिया है। जिस बात के पीछे वह यहाँ घर से दूर, मुँह छिपाए पड़ा हुआ है, उसी तरह की, बल्कि उससे भी कहीं निन्दास्पद बातें यहाँ नित्य हुआ करती हैं, और कोई भागता नहीं। फिर वही क्यों इतना डरे और मुँह चुराए।

* * *

मिल करीब-करीब पूरी जल चुकी है, लेकिन उसी मिल को फिर से खड़ा करना होगा। मिस्टर खन्ना ने अपनी सारी कोशिशें इसके लिए लगा दी हैं। मजदूरों की हड़ताल जारी है, मगर अब उससे मिल-मालिकों को कोई विशेष हानि नहीं है। नए आदमी कम वेतन पर मिल गए हैं और जी तोड़ कर काम करते हैं, क्योंकि उनमें सभी ऐसे हैं, जिन्होंने बेकारी के कष्ट भोग लिए हैं और अब अपना बस चलते ऐसा कोई काम करना नहीं चाहते जिससे उनकी जीविका में बाधा पड़े। चाहे जितना काम लो, चाहे जितनी कम छुट्टियाँ दो, उन्हें कोई शिकायत नहीं। सिर झुकाए बैलों की तरह काम में लगे रहते हैं। घुड़कियाँ, गालियाँ, यहाँ तक कि डंडों की मार भी उनमें ग्लानि नहीं पैदा करती, और अब पुराने मजदूरों के लिए इसके सिवा कोई मार्ग नहीं रह गया है कि वह इसी घटी हुई मजूरी पर काम करने आएँ और खन्ना साहब की खुशामद करें। पण्डित ओंकारनाथ पर तो उन्हें अब रत्ती-भर भी विश्वास नहीं है। उन्हें वे अकेले-दुकेले पाएँ तो शायद उनकी बुरी गत बनाएँ, पर पण्डितजी बहुत बचे हुए रहते हैं। चिराग जलने के बाद अपने कार्यालय से बाहर नहीं निकलते और अफसरों की खुशामद करने लगे हैं। मिर्जा खुर्शेद की धाक अब भी ज्यों-की-त्यों हैं, लेकिन मिर्जाजी इन बेचारों का कष्ट और उसके निवारण का अपने पास कोई उपाय न देख कर दिल से चाहते हैं कि सब-के-सब बहाल हो जायँ, मगर इसके साथ ही नए आदमियों के कष्ट का खयाल करके जिज्ञासुओं से यही कह दिया करते हैं कि जैसी इच्छा हो, वैसा करो।

* * *

मालती के रंग-ढंग की भी कायापलट होती जाती थी। मेहता का जीवन अब तक स्वाध्याय और चिन्तन में गुजरा था, और सब कुछ पढ़ चुकने के बाद और आत्मवाद और अनात्मवाद की खूब छान-बीन कर लेने पर वह इसी तत्त्व पर पहुँच जाते थे कि प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों के बीच में जो सेवा-मार्ग है, चाहे उसे कर्मयोग ही कहो, वही जीवन को सार्थक कर सकता है, वही जीवन को ऊँचा और पवित्र बना सकता है। किसी सर्वज्ञ ईश्वर में उनका विश्वास न था। यद्यपि वह अपनी नास्तिकता को प्रकट न करते थे, इसलिए कि इस विषय में निश्चित रूप से कोई मत स्थिर करना वह अपने लिए असम्भव समझते थे, पर यह धारणा उनके मन में दृढ़ हो गई थी कि प्राणियों के जन्म-मरण, सुख-दुःख, पाप-पुण्य में कोई ईश्वरीय विधान नहीं है। उनका खयाल था कि मनुष्य ने अपने अहंकार में अपने को इतना महान बना लिया है कि उसके हर एक काम की प्रेरणा ईश्वर की ओर से होती है। इसी तरह वह टिड्डियाँ भी ईश्वर को उत्तरदायी ठहराती होंगी, जो अपने मार्ग में समुद्र आ जाने पर अरबों की संख्या में नष्ट हो जाती हैं। मगर ईश्वर के यह विधान इतने अज्ञेय हैं कि मनुष्य की समझ में नहीं आते, तो उन्हें मानने से ही मनुष्य को क्या सन्तोष मिल सकता है। ईश्वर की कल्पना का एक ही उद्देश्य उनकी समझ में आता था और वह था मानव-जीवन की एकता। एकात्मवाद या सर्वात्मवाद या अहिंसा-तत्त्व को वह आध्यात्मिक दृष्टि से नहीं, भौतिक दृष्टि से ही देखते थे, यद्यपि इन तत्त्वों का इतिहास के किसी काल में भी आधिपत्य नहीं रहा, फिर भी मनुष्य-जाति के सांस्कृतिक विकास में उनका स्थान बड़े महत्त्व का है। मानव-समाज की एकता में मेहता का दृढ़ विश्वास था, मगर इस विश्वास के लिए उन्हें ईश्वर-तत्त्व के मानने की जरूरत न मालूम होती थी। उनका मानव-प्रेम इस आधार पर अवलम्बित न था कि प्राणि-मात्र में एक आत्मा का निवास है। द्वैत और अद्वैत व्यावहारिक महत्त्व के सिवा वह और कोई उपयोग न समझते थे, और वह व्यावहारिक महत्त्व उनके लिए मानव-जाति को एक दूसरे के समीप लाना, आपस के भेद-भाव को मिटाना और भ्रातृ-भाव को दृढ़ करना ही था। यह एकता, यह अभिन्नता उनकी आत्मा में इस तरह जम गई थी कि उनके लिए किसी आध्यात्मिक आधार की सृष्टि उनकी दृष्टि में व्यर्थ थी और एक बार इस तत्त्व को पा कर वह शान्त न बैठ सकते थे। स्वार्थ से अलग अधिक-से-अधिक काम करना उनके लिए आवश्यक हो गया था। इसके बगैर उनका चित्त शान्त न हो सकता था। यश, लाभ या कर्त्तव्य-पालन के भाव उनके मन में आते ही न थे। इनकी तुच्छता ही उन्हें इनसे बचाने के लिए काफी थी। सेवा ही अब उनका स्वार्थ होती जाती थी। और उनकी इस उदार वृत्ति का असर अज्ञात रूप से मालती पर भी पड़ता जाता था। अब तक जितने मर्द उसे मिले, सभी ने उसकी विलास वृत्ति को ही उकसाया। उसकी त्याग वृत्ति दिन-दिन क्षीण होती जाती थी, पर मेहता के संसर्ग में आ कर उसकी त्याग-भावना सजग हो उठी थी। सभी मनस्वी प्राणियों में यह भावना छिपी रहती है और प्रकाश पा कर चमक उठती है। आदमी अगर धन या नाम के पीछे पड़ा है, तो समझ लो कि अभी तक वह किसी परिष्कृत आत्मा के सम्पर्क में नहीं आया। मालती अब अक्सर गरीबों के घर बिना फीस लिए ही मरीजों को देखने चली जाती थी। मरीजों के साथ उसके व्यवहार में मृदुता आ गई थी। हाँ, अभी तक वह शौक-सिंगार से अपना मन न हटा सकती थी। रंग और पाउडर का त्याग उसे अपने आन्तरिक परिवर्तनों से भी कहीं ज्यादा कठिन जान पड़ता था।

* * *

डॉक्टर मेहता परीक्षक से परीक्षार्थी हो गए हैं। मालती से दूर-दूर रह कर उन्हें ऐसी शंका होने लगी है कि उसे खो न बैठें। कई महीनों से मालती उनके पास न आई थी और जब वह विकल हो कर उसके घर गए, तो मुलाकात न हुई। जिन दिनों रुद्रपाल और सरोज का प्रेमकाण्ड चलता रहा, तब तो मालती उनकी सलाह लेने प्रायः एक-दो बार रोज आती थी, पर जब से दोनों इंग्लैंड चले गए थे, उसका आना-जाना बंद हो गया था। घर पर भी वह मुश्किल से मिलती। ऐसा मालूम होता था, जैसे वह उनसे बचती है, जैसे बलपूर्वक अपने मन को उनकी ओर से हटा लेना चाहती है। जिस पुस्तक में वह इन दिनों लगे हुए थे, वह आगे बढ़ने से इनकार कर रही थी, जैसे उनका मनोयोग लुप्त हो गया हो। गृह-प्रबन्ध में तो वह कभी बहुत कुशल न थे। सब मिला कर एक हजार रुपये से अधिक महीने में कमा लेते थे, मगर बचत एक धेले की भी न होती थी। रोटी-दाल खाने के सिवा और उनके हाथ कुछ न था। तकल्लुफ अगर कुछ था तो वह उनकी कार थी, जिसे वह खुद ड्राइव करते थे। कुछ रुपये किताबों में उड़ जाते थे, कुछ चन्दों में, कुछ गरीब छात्रों की परवरिश में और अपने बाग की सजावट में, जिससे उन्हें इश्क-सा था। तरह-तरह के पौधों और वनस्पतियाँ विदेशों से महँगे दामों मँगाना और उनको पालना, यही उनका मानसिक चटोरापन था या इसे दिमागी ऐयाशी कहें, मगर इधर कई महीनों से उस बगीचे की ओर से भी वह कुछ विरक्त-से हो रहे थे और घर का इंतजाम और भी बदतर हो गया था।

* * *

होरी की दशा दिन-दिन गिरती ही जाती थी। जीवन के संघर्ष में उसे सदैव हार हुई, पर उसने कभी हिम्मत नहीं हारी। प्रत्येक हार जैसे उसे भाग्य से लड़ने की शक्ति दे देती थी, मगर अब वह उस अन्तिम दशा को पहुँच गया था, जब उसमें आत्मविश्वास भी न रहा था। अगर वह अपने धर्म पर अटल रह सकता, तो भी कुछ आँसू पुँछते, मगर वह बात न थी। उसने नीयत भी बिगाड़ी, अधर्म भी कमाया, कोई ऐसी बुराई न थी, जिसमें वह पड़ा न हो, पर जीवन की कोई अभिलाषा न पूरी हुई, और भले दिन मृगतृष्णा की भाँति दूर ही होते चले गए, यहाँ तक कि अब उसे धोखा भी न रह गया था, झूठी आशा की हरियाली और चमक भी अब नजर न आती थी।

हारे हुए महीप की भाँति उसने अपने को इस तीन बीघे के किले में बंद कर लिया था और उसे प्राणों की तरह बचा रहा था। फाके सहे, बदनाम हुआ, मजूरी की, पर किले को हाथ से न जाने दिया, मगर अब वह किला भी हाथ से निकला जाता था। तीन साल से लगान बाकी पड़ा हुआ था और अब पण्डित नोखेराम ने उस पर बेदखली का दावा कर दिया था। कहीं से रुपये मिलने की आशा न थी। जमीन उसके हाथ से निकल जायगी और उसके जीवन के बाकी दिन मजूरी करने में कटेंगे। भगवान् की इच्छा ! रायसाहब को क्या दोष दे ? असामियों ही से उनका भी गुजर है। इसी गाँव पर आधे से ज्यादा घरों पर बेदखली आ रही है, आवे। औरों की जो दशा होगी, वही उसकी भी होगी। भाग्य में सुख बदा होता, तो लड़का यों हाथ से निकल जाता ?

* * *

दो दिन तक गाँव में खूब धूमधाम रही। बाजे बजे, गाना-बजाना हुआ और रूपा रो-धो कर बिदा हो गई, मगर होरी को किसी ने घर से निकलते न देखा। ऐसा छिपा बैठा था, जैसे मुँह में कालिख लगी हो। मालती के आ जाने से चहल-पहल और बढ़ गई। दूसरे गाँव की स्त्रियाँ भी आ गईं।

गोबर ने अपने शील-स्नेह से सारे गाँव को मुग्ध कर लिया है। ऐसा कोई घर न था, जहाँ वह अपने मीठे व्यवहार की याद न छोड़ आया हो। भोला तो उसके पैरों पर गिर पड़े। उनकी स्त्री ने उसको पान खिलाए और एक रुपया बिदाई दी और उसका लखनऊ का पता भी पूछा। कभी लखनऊ आएगी तो उससे जरूर मिलेगी। अपने रुपये की उससे कोई चर्चा न की।

तीसरे दिन जब गोबर चलने लगा, तो होरी ने धनिया के सामने आँखों में आँसू भर कर वह अपराध स्वीकार किया, जो कई दिन से उसकी आत्मा को मथ रहा था, और रो कर बोला – बेटा, मैंने इस जमीन के मोह से पाप की गठरी सिर पर लादी। न जाने भगवान् मुझे इसका क्या दण्ड देंगे।

गोबर ज़रा भी गर्म न हुआ, किसी प्रकार का रोष उसके मुँह पर न था। श्रद्धाभाव से बोला – इसमें अपराध की कोई बात नहीं है दादा ! हाँ, रामसेवक के रुपये अदा कर देना चाहिए। आखिर तुम क्या करते ? मैं किसी लायक नहीं, तुम्हारी खेती में उपज नहीं, करज कहीं मिल नहीं सकता, एक महीने के लिए भी घर में भोजन नहीं। ऐसी दसा में तुम और कर ही क्या सकते थे ? जैजात न बचाते तो रहते कहाँ ? जब आदमी का कोई बस नहीं चलता, तो अपने को तकदीर पर ही छोड़ देता है। न जाने यह धाँधली कब तक चलती रहेगी ? जिसे पेट की रोटी मयस्सर नहीं, उसके लिए मरजाद और इज्जत सब ढोंग है। औरों की तरह तुमने भी दूसरों का गला दबाया होता, उनकी जमा मारी होती, तो तुम भी भले आदमी होते। तुमने कभी नीति को नहीं छोड़ा, यह उसी का दण्ड है। तुम्हारी जगह मैं होता, या तो जेहल में होता या फाँसी पा गया होता। मुझसे यह कभी बरदास न होता कि मैं कमा-कमा कर सबका घर भरूँ और आप अपने बाल-बच्चों के साथ मुँह में जाली लगाए बैठा रहूँ।

धनिया बहू को उसके साथ भेजने को राजी न हुई। झुनिया का मन भी अभी कुछ दिन यहाँ रहने का था। तय हुआ कि गोबर अकेला ही जाए।

दूसरे दिन प्रातःकाल गोबर सबसे विदा हो कर लखनऊ चला। होरी उसे गाँव के बाहर तक पहुँचाने आया। गोबर के प्रति इतना प्रेम उसे कभी न हुआ था। जब गोबर उसके चरणों पर झुका, तो होरी रो पड़ा, मानो फिर उसे पुत्र के दर्शन न होंगे। उसकी आत्मा में उल्लास था, गर्व था, संकल्प था। पुत्र से यह श्रद्धा और स्नेह पा कर वह तेजवान् हो गया है, विशाल हो गया है। कई दिन पहले उस पर जो अवसाद-सा छा गया था, एक अन्धकार-सा, जहाँ वह अपना मार्ग भूला जाता था, वहाँ अब उत्साह है और प्रकाश है।

रूपा अपने ससुराल में खुश थी। जिस दशा में उसका बालपन बीता था, उसमें पैसा सबसे कीमती चीज था। मन में कितनी साधे थीं, जो मन ही में घुट-घुट कर रह गई थीं। वह अब उन्हें पूरा कर रही थी और रामसेवक अधेड़ हो कर भी जवान हो गया था। रूपा के लिए वह पति था, उसके जवान, अधेड़ या बूढ़े होने से उसकी नारी-

भावना में कोई अन्तर न आ सकता था। उसकी यह भावना पति के रंग-रूप या उम्र पर आश्रित न थी, उसकी बुनियाद इससे बहुत गहरी थी, शाश्वत परम्पराओं की तह में, जो केवल किसी भूकम्प से ही हिल सकती थी। उसका यौवन अपने ही में मस्त था, वह अपने ही लिए अपना बनाव-सिंगार करती थी और आप ही खुश होती थी। रामसेवक के लिए उसका दूसरा रूप था। तब वह गृहिणी बन जाती थी, घर के काम-काज में लगी हुई। अपनी जवानी दिखा कर उसे लज्जा या चिन्ता में न डालना चाहती थी। किसी तरह की अपूर्णता का भाव उसके मन में न आता था। अनाज से भरे हुए बखार और गाँव की सिवान तक फैले हुए खेत और द्वार पर ढोरों की कतारें और किसी प्रकार की अपूर्णता को उसके अंदर आने ही न देती थीं।

और उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा थी अपने घर वालों को खुश देखना। उनकी गरीबी कैसे दूर कर दे ? उस गाय की याद अभी तक उसके दिल में हरी थी, जो मेहमान की तरह आई थी और सबको रोता छोड़ कर चली गई थी। वह स्मृति इतने दिनों के बाद और भी मृदु हो गई थी। अभी उसका निजत्व इस नए घर में न जम पाया था। वही पुराना घर उसका अपना घर था। वहीं के लोग अपने आत्मीय थे, उन्हीं का दुःख उसका दुःख और उन्हीं का सुख उसका सुख था। इस द्वार पर ढोरों का एक रेवड़ देख कर उसे वह हर्ष न हो सकता था, जो अपने द्वार पर एक गाय देख कर होता। उसके दादा की यह लालसा कभी पूरी न हुई थी। जिस दिन वह गाय आई थी, उन्हें कितना उछाह हुआ था। जैसे आकाश से कोई देवी आ गई हो। तब से फिर उन्हें इतनी कमाई ही न हुई कि दूसरी गाय लाते, पर वह जानती थी, आज भी वह लालसा होरी के मन में उतनी ही सजग है। अबकी वह जायगी, तो साथ वह धौरी गाय जरूर लेती जायगी। नहीं, अपने आदमी के हाथ क्यों न भेजवा दे। रामसेवक से पूछने की देर थी। मंजूरी हो गई, और दूसरे दिन एक अहीर के मारफत रूपा ने गाय भेज दी। अहीर से कहा – दादा से कह देना, मंगल के दूध पीने के लिए भेजी है। होरी भी गाय लेने की फिक्र में था। यों अभी उसे गाय की कोई जल्दी न थी, मगर मंगल यहीं है और वह बिना दूध के कैसे रह सकता है ! रुपये मिलते ही वह सबसे पहले गाय लेगा। मंगल अब केवल उसका पोता नहीं है, केवल गोबर का बेटा नहीं है, मालती देवी का खिलौना भी है। उसका लालन-पालन उसी तरह का होना चाहिए।

मगर रुपये कहाँ से आएँ ? संयोग से उसी दिन एक ठीकेदार ने सड़क के लिए गाँव के ऊसर में कंकड़ की खुदाई शुरू की। होरी ने सुना तो चट-पट वहाँ जा पहुँचा, और आठ आने रोज पर खुदाई करने लगा, अगर यह काम दो महीने भी टिक गया तो गाय भर को रुपये मिल जाएँगे। दिन-भर लू और धूप में काम करने के बाद वह घर आता, तो बिलकुल मरा हुआ, लेकिन अवसाद का नाम नहीं। उसी उत्साह से दूसरे दिन फिर काम करने जाता। रात को भी खाना खा कर ढिबरी के सामने बैठ जाता और सुतली कातता। कहीं बारह-एक बजे सोने जाता। धनिया भी पगला गई थी, उसे इतनी मेहनत करने से रोकने के बदले खुद उसके साथ बैठी-बैठी सुतली कातती। गाय तो लेनी ही है, रामसेवक के रुपये भी तो अदा करने हैं। गोबर कह गया है। उसे बड़ी चिन्ता है।

रात के बारह बज गए थे। दोनों बैठे सुतली कात रहे थे। धनिया ने कहा – तुम्हें नींद आती हो तो जाके सो रहो। भोरे फिर तो काम करना है।

होरी ने आसमान की ओर देखा – चला जाऊँगा। अभी तो दस बजे होंगे। तू जा, सो रह।

मैं तो दोपहर को छन-भर पौढ़ रहती हूँ।'

'मैं भी चबेना करके पेड़ के नीचे सो लेता हूँ।'

'बड़ी लू लगती होगी।'

'लू क्या लगेगी ? अच्छी छाँह है।'

'मैं डरती हूँ, कहीं तुम बीमार न पड़ जाओ।'

'चल; बीमार वह पड़ते हैं, जिन्हें बीमार पड़ने की फुरसत होती है। यहाँ तो यह धुन है कि अबकी गोबर आय, तो रामसेवक के आधे रुपये जमा रहें। कुछ वह भी लायगा। बस, इस साल इस रिन से गला छूट जाय, तो दूसरी ज़िंदगी हो।'

'गोबर की अबकी बड़ी याद आती है, कितना सुशील हो गया है।'

'चलती बेर पैरों पर गिर पड़ा।'

'मंगल वहाँ से आया तो कितना तैयार था। यहाँ आ कर कितना दुबला हो गया है।'

'वहाँ दूध, मक्खन, क्या नहीं पाता था ? यहाँ रोटी मिल जाय, वही बहुत है। ठीकेदार से रुपये मिले और गाय लाया।'

'गाय तो कभी आ गई होती, लेकिन तुम जब कहना मानो। अपनी खेती तो सँभाले न सँभलती थी, पुनिया का भार भी अपने सिर ले लिया।'

'क्या करता, अपना धरम भी तो कुछ है। हीरा ने नालायकी की तो उसके बाल-बच्चों को सँभालने वाला तो कोई चाहिए ही था। कौन था मेरे सिवा बता ? मैं न मदद करता, तो आज उनकी क्या गति होती, सोच। इतना सब करने पर भी तो मंगरू ने उस पर नालिस कर ही दी।'

'रुपये गाड़ कर रखेगी तो क्या नालिस न होगी ?'

'क्या बकती है। खेती से पेट चल जाय, यही बहुत है। गाड़ कर कोई क्या रखेगा।'

'हीरा तो जैसे संसार से ही चला गया।'

'मेरा मन तो कहता है कि वह आवेगा, कभी न कभी जरूर।'

दोनों सोए। होरी अँधेरे मुँह उठा तो देखता है कि हीरा सामने खड़ा है, बाल बढ़े हुए, कपड़े तार-तार, मुँह सूखा हुआ, देह में रक्त और माँस का नाम नहीं, जैसे कद भी छोटा हो गया है। दौड़ कर होरी के कदमों पर गिर पड़ा।

होरी ने उसे छाती से लगा कर कहा – तुम तो बिलकुल घुल गए हीरा ! कब आए ? आज तुम्हारी बार-बार याद आ रही थी। बीमार हो क्या ?

आज उसकी आँखों में वह हीरा न था, जिसने उसकी ज़िंदगी तल्ख़ कर दी थी, बल्कि वह हीरा था, जो बे-माँ-बाप का छोटा-सा बालक था। बीच के ये पच्चीस-तीस साल जैसे मिट गए, उनका कोई चिह्न भी नहीं था।

हीरा ने कुछ जवाब न दिया। खड़ा रो रहा था।

होरी ने उसका हाथ पकड़ कर गद्गद् कण्ठ से कहा – क्यों रोते हो भैया, आदमी से भूल-चूक होती ही है। कहाँ रहा इतने दिन ?

हीरा कातर स्वर में बोला – कहाँ बताऊँ दादा ! बस, यही समझ लो कि तुम्हारे दर्शन बदे थे, बच गया। हत्या सिर पर सवार थी। ऐसा लगता था कि वह गऊ मेरे सामने खड़ी है, हरदम, सोते-जागते, कभी आँखों से ओझल न होती। मैं पागल हो गया और पाँच साल पागलखाने में रहा। आज वहाँ से निकले छह महीने हुए। माँगता-खाता फिरता रहा। यहाँ आने की हिम्मत ही न पड़ती थी। संसार को कौन मुँह दिखाऊँगा ? आखिर जी न माना। कलेजा मजबूत करके चला आया। तुमने बाल-बच्चों को ...

होरी ने बात काटी – तुम नाहक भागे। अरे, दारोगा को दस-पाँच दे कर मामला रफे-दफे करा दिया जाता और होता क्या ?

'तुम से जीते-जी उरिन न हूँगा दादा !'

'मैं कोई गैर थोड़े ही हूँ भैया !'

होरी प्रसन्न था। जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएँ, मानो उसके चरणों पर लोट रही थीं। कौन कहता है, जीवन-संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं ? इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजय पताकाएँ हैं। उसकी छाती फूल उठी है। मुख पर तेज आ गया है। हीरा की कृतज्ञता में उसके जीवन की सारी सफलता मूर्तिमान हो गई है। उसके बखार में सौ-दो सौ मन अनाज भरा होता, उसकी हाँडी में हजार-पाँच सौ गड़े होते, पर उससे यह स्वर्ग का सुख क्या मिल सकता था ?

हीरा ने उसे सिर पर पाँव तक देख कर कहा – तुम भी तो बहुत दुबले हो गए दादा !

होरी ने हँस कर कहा – तो क्या यह मेरे मोटे होने के दिन हैं ? मोटे वह होते हैं, जिन्हें न रिन की सोच होती है, न इज्जत की। इस जमाने में मोटा होना बेहयाई है। सौ को दुबला करके तब एक मोटा होता है। ऐसे मोटेपन में क्या सुख? सुख तो जब है कि सभी मोटे हों, सोभा से भेंट हुई।

'उससे तो रात ही भेंट हो गई थी। तुमने तो अपनों को भी पाला, जो तुमसे बैर करते थे, उनको भी पाला और अपना मरजाद बनाए बैठे हो। उसने तो खेती-बारी सब बेच-बाच डाली और अब भगवान् ही जाने, उसका निबाह कैसे होगा ?'

आज होरी खुदाई करने चला, तो देह भारी थी। रात की थकन दूर न हो पाई थी, पर उसके कदम तेज थे और चाल में निर्द्वन्द्वता की अकड़ थी।

आज दस बजे ही से लू चलने लगी और दोपहर होते-होते तो आग बरस रही थी। होरी कंकड़ के झौवे उठा-उठा कर खदान से सड़क पर लाता था और गाड़ी पर लादता था। जब दोपहर की छुट्टी हुई, तो वह बेदम हो गया था। ऐसी थकन उसे कभी न हुई थी। उसके पाँव तक न उठते थे। देह भीतर से झुलसी जा रही थी। उसने न स्नान ही किया न चबेना, उसी थकन में अपना अँगोछा बिछा कर एक पेड़ के नीचे सो रहा, मगर प्यास के मारे कण्ठ सूखा जाता है। खाली पेट पानी पीना ठीक नहीं। उसने प्यास को रोकने की चेष्टा की, लेकिन प्रतिक्षण भीतर की दाह बढ़ती जाती थी, न रहा गया। एक मजदूर ने बाल्टी भर रखी थी और चबेना कर रहा था। होरी ने उठ कर एक लोटा पानी खींच कर पिया और फिर आ कर लेट रहा, मगर आधा घण्टे में उसे कै हो गई और चेहरे पर मुर्दनी-सी छा गई।

उस मजदूर ने कहा – कैसा जी है होरी भैया ?

होरी के सिर में चक्कर आ रहा था। बोला – कुछ नहीं, अच्छा हूँ।

यह कहते-कहते उसे फिर कै हुई और हाथ-पाँव ठंडे होने लगे। यह सिर में चक्कर क्यों आ रहा है ? आँखों के सामने जैसे अँधेरा छाया जाता है। उसकी आँखें बंद हो गईं और जीवन की सारी स्मृतियाँ सजीव हो-हो कर हृदय-पट पर आने लगीं, लेकिन बेक्रम, आगे की पीछे, पीछे की आगे, स्वप्न-चित्रों की भाँति बेमेल, विकृत और असम्बद्ध, वह सुखद बालपन आया, जब वह गुल्लियाँ खेलता था और माँ की गोद में सोता था। फिर देखा, जैसे गोबर आया है और उसके पैरों पर गिर रहा है। फिर दृश्य बदला, धनिया दुलहिन बनी हुई, लाल चुंदरी पहने उसको भोजन करा रही थी। फिर एक गाय का चित्र सामने आया, बिलकुल कामधेनु-सी। उसने उसका दूध दुहा और मंगल को पिला रहा था कि गाय एक देवी बन गई और .....

उसी मजदूर ने पुकारा – दोपहरी ढल गई होरी, चलो झौवा उठाओ।

होरी कुछ न बोला। उसके प्राण तो न जाने किस-किस लोक में उड़ रहे थे। उसकी देह जल रही थी, हाथ-पाँव ठंडे हो रहे थे। लू लग गई थी।

उसके घर आदमी दौड़ाया गया। एक घण्टा में धनिया दौड़ी हुई आ पहुँची। सोभा और हीरा पीछे-पीछे खटोले की डोली बना कर ला रहे थे।

धनिया ने होरी की देह छुई, तो उसका कलेजा सन से हो गया। मुख कान्तिहीन हो गया था।

काँपती हुई आवाज से बोली – कैसा जी है तुम्हारा ? होरी ने अस्थिर आँखों से देखा और बोला – तुम आ गए गोबर ? मैंने मंगल के लिए गाय ले ली है। वह खड़ी है, देखो।

धनिया ने मौत की सूरत देखी थी। उसे पहचानती थी। उसे दबे पाँव आते भी देखा था, आँधी की तरह आते भी देखा था। उसके सामने सास मरी, ससुर मरा, अपने दो बालक मरे, गाँव के पचासों आदमी मरे। प्राण में एक धक्का-सा लगा। वह आधार जिस पर जीवन टिका हुआ था, जैसे खिसका जा रहा था, लेकिन नहीं, यह धैर्य का समय है, उसकी शंका निर्मूल है, लू लग गई है, उसी से अचेत हो गए हैं।

उमड़ते हुए आँसुओं को रोक कर बोली – मेरी ओर देखो, मैं हूँ, क्या मुझे नहीं पहचानते ?

होरी की चेतना लौटी। मृत्यु समीप आ गई थी, आग दहकने वाली थी। धुआँ शान्त हो गया था। धनिया को दीन आँखों से देखा, दोनो कोनों से आँसू की दो बूँदें ढुलक पड़ीं। क्षीण स्वर में बोला – मेरा कहा सुना माफ करना धनिया ! अब जाता हूँ। गाय की लालसा मन में ही रह गई। अब तो यहाँ के रुपये करिया करम में जाएँगे। रो मत धनिया, अब कब तक जिलाएगी ? सब दुर्दसा तो हो गई। अब मरने दे।

और उसकी आँखें फिर बंद हो गईं। उसी वक्त हीरा और सोभा डोली ले कर पहुँच गए। होरी को उठा कर डोली में लिटाया और गाँव की ओर चले।

गाँव में यह खबर हवा की तरह फैल गई। सारा गाँव जमा हो गया। होरी खाट पर पड़ा शायद सब कुछ देखता था, सब कुछ समझता था, पर जबान बंद हो गई थी। हाँ, उसकी आँखों से बहते हुए आँसू बतला रहे थे, कि मोह का बन्धन तोड़ना कितना कठिन हो रहा है। जो कुछ अपने से नहीं बन पड़ा, उसी के दुःख का नाम तो मोह है। पाले हुए कर्त्तव्य और निपटाए हुए कामों का क्या मोह ! मोह तो उन अनाथों को छोड़ जाने में है, जिनके साथ हम अपना कर्त्तव्य न निभा सके, उन अधूरे मंसूबों में है, जिन्हें हम पूरा न कर सके।

मगर सब कुछ समझ कर भी धनिया आशा की मिटती हुई छाया को पकड़े हुए थी। आँखों से आँसू गिर रहे थे, मगर यन्त्र की भाँति दौड़-दौड़ कर कभी आम भून कर पना बनाती, कभी होरी की देह में भूसी की मालिश करती। क्या करे, पैसे नहीं हैं, नहीं किसी को भेज कर डॉक्टर बुलाती।

हीरा ने रोते हुए कहा – भाभी दिल कड़ा करो। गोदान करा दो, दादा चले।

धनिया ने उसकी ओर तिरस्कार की आँखों से देखा। अब वह दिल को और कितना कठोर करे ? अपने पति के प्रति उसका जो धर्म है, क्या यह उसको बताना पड़ेगा ? जो जीवन का संगी था, उसके नाम को रोना ही क्या उसका धर्म है ?

और कई आवाजें आईं – हाँ, गोदान करा दो, अब यही समय है।

धनिया यन्त्र की भाँति उठी, आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लाई और पति के ठंडे हाथ में रख कर सामने खड़े मातादीन से बोली – महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है।

और पछाड़ खा कर गिर पड़ी।

❖❖❖

बाणभट्ट की आत्मकथा

– हजारी प्रसाद द्विवेदी

कथामुख

बाणभट्ट की 'आत्मकथा' के प्रकाशित होने के पूर्व उसका थोड़ा इतिहास जान लेना आवश्यक है। मिस कैथराइन आस्ट्रिया के एक सम्भ्रान्त ईसाई-परिवार की कन्या हैं। यद्यपि वे अभी तक जीवित हैं; पर उन्होंने एक विचित्र ढंग का वैराग्य ग्रहण किया है, और पिछले पाँच वर्षों में मुझे उनकी केवल एक ही चिट्ठी मिली है, जो इस लेख से सम्बद्ध होने के कारण अन्त में छाप दी गई है। मिस कैथराइन का भारतीय विद्याओं के प्रति असीम अनुराग था। अपने देश में रहते समय ही उन्होंने संस्कृत और ईसाई-हिन्दी का अच्छा अभ्यास कर लिया था। 68 वर्ष की उम्र में वे इस देश में आयीं और अक्लान्त भाव से यहाँ के प्राचीन स्थानों का आठ वर्ष तक लगातार भ्रमण करती रहीं। यहाँ आकर उन्होंने बांग्ला का भी अभ्यास किया था; पर इस भाषा में लिखने की योग्यता उन्हें अब तक नहीं हुई और आगे होने की कोई विशेष संभावना भी नहीं है। मिस कैथराइन को हम लोग 'दीदी' कहते थे – दीदी अर्थात् दादी। आगे जब कभी 'दीदी' शब्द का प्रयोग किया जाए, तो पाठक उन्हीं से तात्पर्य समझें। बांग्ला में दादी के साथ मज़ाक करने का रिवाज है, दीदी इस बात को जानती थीं और कभी-कभी बड़ा करारा मजाक कर बैठती थीं। हम लोगों पर – विशेषकर मेरे ऊपर – दीदी का स्नेह नाती के समान ही था। दीदी बहुत भोली थीं। अपनी कष्टसाध्य यात्राओं के बाद जब वे इधर लौटतीं तो हम लोगों के आनन्द का ठिकाना न रहता। नई बात सुनने के लिए या नई चीज़ देखने के लिए हम लोगों की भीड़ लग जाती। दीदी एक-एक करके, कभी कोई तालपत्र की पोथी, कभी पुरानी पोथी के ऊपर की चित्रित काठ की पाटी, कभी पुराने सिक्के निकाल निकालकर हमारे हाथों पर रखती जातीं और उनका इतिहास सुनाती जातीं। उस समय उनका चेहरा श्रद्धा से गद्गद् होता और उनकी छोटी-छोटी नीली आँखें पानी से भरी होतीं। फिर धीरे-से उनकी जेब से एक सफेद बिल्ली का बच्चा निकलता – बिल्कुल सिकुड़ा हुआ। हम लोग इस मजाक से परिचित थे। दीदी को प्रसन्न करके के लिए हम में से कोई बड़ी उत्सुकता के साथ बिल्ली के उस बच्चे को इस प्रकार लेता, मानो कोई हस्तलिखित पोथी ले रहा हो। और तब वह बिलौटा कूद जाता और हम लोग मानो अचकचाकर डर जाते। फिर दीदी इतना हँसती कि नूतन कुटीर की छत हिल जाती। दीदी के इस हर्षातिरेक का परिणाम यह होता कि यार लोग संगृहीत बहुमूल्य वस्तुओं में से कुछ को दबा जाते। (मैंने कभी ऐसा अपकर्म नहीं किया !) पर दीदी को पता भी नहीं चलता। कभी-कभी दीदी जब ध्यानस्थ हो जातीं, तो उनका वलीकुचित मुखमण्डल बहुत ही आकर्षक होता। ऐसा जान पड़ता कि साक्षात् सरस्वती आविर्भूत हुई हैं। ऊधम करते हुए छोकरे पास से निकल जाते, धूल उड़ाती हुई बैलगाड़ियाँ चली जातीं, कुत्ते उछल-कूद से शुरू कर लड़ाई-झगड़े पर आमादा हो जाते; पर दीदी कर्पूर-प्रतिमा की भाँति निर्वाक्, निश्चल, निःस्पन्द ही रहतीं ! जब उनकी समाधि टूटती, तब उनकी बातें सुनने लायक होतीं।

अन्तिम बार दीदी राजगृह से लौटी थीं। उनके चेहरे से ऐसा जान पड़ता था कि बुद्धदेव से उनकी जरूर भेंट हुई होगी। मैं जब मिलने गया, तो यद्यपि वे थकी हुई थीं, पर यह कहना न भूलीं कि उन्हें राजगृह में एक स्यार

मिल गया था, जो उन्हें देखकर तीन बार ठिठक-ठिठककर खड़ा हुआ – जैसे कुछ कहना चाहता हो ! दीदी का विश्वास था कि वह बुद्धदेव का समसामयिक था और उसी युग की कोई बात कहना चाहता था; क्योंकि दीदी ने स्पष्ट ही उसके चेहरे पर एक निरीह करुण भाव देखा था। आहा, उस युग के स्यार भी कैसे करुणावान् होते थे ! मैं समझ गया कि दीदी को अगर छूट दी जाए, तो उस शृगाल के सम्बन्ध में एक पुराण तैयार हो जाएगा और पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो जाएगा। मैंने कहा, "दीदी, आज विश्राम करो, स्यार की बात कल होगी।" दीदी ने भाव-विह्वल होकर कहा, "हाँ रे, थक गई हूँ। जा, आज भाग जा। कल जरूर आना। देख, इस बार शोण नद के दोनों किनारों की पैदल यात्रा कर आई हूँ।" मैं जैसे अचरज में आ गया – "शोण नद ?"

"हाँ रे, शोण नद।"

"कुछ मिला है, दीदी ?"

"बहुत-कुछ। कल आना।"

मैं पचहत्तर वर्ष की इस बुढ़िया के साहस और अध्यवसाय की बात सोचकर हैरान था। उस समय उठ गया। आहार के समय एक बार लौटकर फिर आया। सोचा, इस समय दीदी को घर पर भोजन के लिए ले चलूँ। पर देखा, दीदी सामने मैदान में ध्यानस्थ बैठी हैं। आहा, चाँदनी इसी को तो कहते हैं। सारा आकाश घने नील-वर्ण के अच्छोद सरोवर की भाँति एक दिगन्त से दूसरे दिगन्त तक फैला हुआ था। उसमें राजहंस की भाँति चन्द्रमा धीरे-धीरे तैर रहा था। दूर कोने में एक-दो मेघ-शिशु दिन-भर के थके-माँदे सोए हुए थे। नीचे से ऊपर तक केवल चाँदनी-ही-चाँदनी फैली थी और मैदान में दीदी निश्चल समाधि की अवस्था में बैठी थीं। पास ही खड़ा एक छोटा-सा खजूर-वृक्ष सारी शून्यता को समता दे रहा था। मैं चुपचाप खिसक गया।

दूसरे दिन मैं शाम को दीदी के स्थान पर पहुँचा। नौकर से मालूम हुआ कि उस रात को दीदी दो बजे तक चुपचाप बैठी रहीं और फिर एकाएक अपनी टेबिल पर आकर लिखने लगीं। रात-भर लिखती रहीं और लिखने में ऐसी तन्मय थीं कि दूसरे दिन आठ बजे तक लालटेन बुझाए बिना लिखती ही रहीं। फिर टेबिल पर ही सिर रखकर लेट गईं और शाम के तीन बजे तक लेटी रहीं। फिर उन्होंने स्नान किया और अब चाय पीने जा रही हैं। चाय पीते-पीते दीदी से बात करना बड़ा मनोरंजक होता था, सो मैंने अपना भाग्य सराहा। दीदी चाय पीने का आयोजन कर रही थीं। मुझे देखकर बहुत प्रसन्न हुईं और बोलीं, "तुझे ही खोज रही थी। शोण-यात्रा में उपलब्ध सामग्री का हिन्दी रूपान्तर मैंने कर लिया है। तू इसे एक बार पढ़ तो भला। देख, मेरी हिन्दी में जो गलती है, उसे सुधार दे और आनन्द से इसका अँगरेजी में उल्था करा ले। ले भला !"

यह 'ले भला !' दीदी का स्नेह-संभाषण था। जब वे अपने नातियों पर बहुत खुश होतीं, तो उन्हें कुछ देते समय कहती जातीं – 'ले भला !' आज तक इस स्नेह वाक्य के साथ चाय और बिस्कुट ही मिला करते थे; पर आज मिला कागज का एक बड़ा-सा पुलिंदा। दीदी ने उसे देकर कहा कि यह उनकी दो सौ मील की पैदल यात्रा

का सुपरिणाम है। फिर कहने लगीं, "तू इसे आज ही रात को ठीक कर ले और कल पाँच बजे की गाड़ी से कलकत्ते जाकर टाइप करा ला। परसों मुझे इसकी कापियाँ मिल जानी चाहिए।"

मैंने सकुचाते हुए कहा, "दीदी, कोई पाण्डुलिपि मिली है क्या ?"

दीदी ने डाँटते हुए कहा, "एक बार पढ़के तो देख। इसका रहस्य फिर पूछना। तू बड़ा आलसी है। देख रे, बड़े दुःख की बात बता रही हूँ। पुरुष का जन्म पाया है, आलस छोड़कर काम कर। स्त्रियाँ चाहें भी तो आलस्यहीन होकर कहाँ काम कर सकती हैं ? मेरे जीवन के वे दिन लज्जा और संकोच में ही निकल गए, जब काम करने की ताकत थी। अब वृद्धास्था में न तो उतना उत्साह रह गया है और न शक्ति ही। तू बड़ा आलसी है। बाद में पछताएगा। पुरुष होकर इतना आलसी होना ठीक नहीं। तू समझता है, यूरोप की स्त्रियाँ सबकुछ कर सकती हैं ? गलत बात है। हम भी पराधीन हैं। समाज की पराधीनता जरूर कम है; पर प्रकृति की पराधीनता तो हटायी नहीं जा सकती। आज देखती हूँ कि जीवन के 68 वर्ष व्यर्थ ही बीत गए !"

मैंने देखा, दीदी की आँखें गीली हो गई हैं और उनका पोपला मुख कुछ कहने के लिए व्याकुल है; पर बात निकल नहीं रही है। जैसे शब्द ही न मिल रहे हों। न जाने किस अतीत में उनका चित्त धीरे-धीरे डूब गया और मैं चुप बैठा रहा। उस दिन भी दीदी का चाय पीना नहीं हुआ। जब दीदी का ध्यान भंग हुआ, तो उनकी आँखों से पानी की धारा झर रही थी और वे उसे पोंछने का प्रयत्न भी नहीं कर रही थीं।

मैंने अनुभव किया कि दीदी किसी बीती हुई घटना का ताना-बाना सुलझा रही हैं। उधर से ध्यान हटाने के लिए मैंने प्रश्न किया, "दीदी, आजकल शोण में नावें चलती हैं ?" दीदी ने मुस्करा दिया। उसका भाव था कि 'मैं समझ गई, तू मेरा ध्यान दूसरी ओर ले जाना चाहता है।' फिर बोलीं, "देख, मैं यहाँ ज्यादा नहीं ठहर सकती। इस अनुवाद को तू ज़रा ध्यान से पढ़ और कल कलकत्ते जाकर टाइप करा ला। दो-एक चित्र भी पुस्तक में देने होंगे। जा, जल्दी कर।"

कागजों का पुलिंदा लेकर मैं घर आया। यद्यपि मेरी आँखें कमजोर हैं और रात को काम करना मेरे लिए कठिन है; फिर भी दीदी के कागजों को मैंने पढ़ना शुरू किया। शीर्षक के स्थान पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा था – 'अथ बाणभट्ट की आत्मकथा लिख्यते।'

बाणभट्ट की आत्मकथा ! तब तो दीदी को अमूल्य वस्तु हाथ लगी है। मैं ध्यान से सारी कथा पढ़ गया। मुझे अपार आनन्द आ रहा था। इतने दिन बाद संस्कृत-साहित्य में एक अनोखी चीज प्राप्त हुई है। रात यों ही बात गई। सबेरे मैं कलकत्ते को रवाना हो गया। वहाँ एक सप्ताह रुकना पड़ा। लौटकर आया, तो मालूम हुआ कि दीदी काशीवास करने चली गई हैं। किसी को कोई पता-ठिकाना नहीं दे गईं।

दो साल तक वह कथा यों ही पड़ी रही। एक दिन मैंने सोचा कि बाणभट्ट के ग्रन्थों से मिलाकर देखा जाए कि कथा कितनी प्रामाणिक है। कथा में ऐसी बहुत-सी बातें थीं, जो उन पुस्तकों में नहीं हैं। इनके लिए मैंने

समसामयिक पुस्तकों का आश्रय लिया और एक तरह से कथा को नए सिरे से सम्पादित किया। आगे जो कथा दी हुई है, वह दीदी का अनुवाद है और फुटनोट में जो पुस्तकों के हवाले दिए हुए हैं वे मेरे हैं। कथा ही असल में महत्त्वपूर्ण है, टिप्पणियाँ तो उसकी प्रामाणिकता की सबूत हैं।

बहुत दिनों तक दीदी कोई समाचार नहीं मिला। मैं अब उनके दर्शन की आशा छोड़ बैठा था। एक दिन अचानक मुगलसराय स्टेशन पर दीदी के दर्शन हो गए। वे गाड़ी बदल रही थीं और बहुत ही व्यस्त दीख रही थीं। मुझे देखकर वे ज़रा भी प्रसन्न नहीं हुईं। केवल कुली को डाँटकर कहती रहीं – "सँभालके ले चल। तू बड़ा आलसी है !" मैंने सोचा, कुली भी आलसी है ! फिर मैंने चिल्लाकर कहा, "दीदी, तुम क्या पहचानती भी नहीं, वाह रे !"

दीदी रुक गईं। बोलीं, "देखो, मैं बहुत दुखी हूँ ! वह बिल्ली धोखा दे गई।"

मैंने कहा, "क्यों, क्या हुआ ?"

दीदी बोलीं, "कमबख्त स्त्री निकली। देख न, पाँच बच्चे दिए हैं, मैं कहाँ तक सँभालूँ ?"

मैंने बात काटकर कहा, "दीदी, वह आत्मकथा मेरे ही पास पड़ी है।"

दीदी गुस्से में थीं। रुकीं नहीं। गाड़ी में बैठकर उन्होंने एक कार्ड फेंककर कहा, "मैं देश जा रही हूँ। ले, मेरा पता है। ले भला !"

मैंने कार्ड सँभाला और दीदी की गाड़ी चल दी।

नीचे बाणभट्ट की 'आत्मकथा' दे रहा हूँ। दीदी ने उसे प्रकाशित करने की आज्ञा दे दी है। ध्यान देने की बात यह है कि बाणभट्ट की अन्यान्य पुस्तकों की भाँति यह आत्मकथा भी अपूर्ण ही है।

•••

अथ बाणभट्ट की 'आत्मकथा' लिख्यते

प्रथम उच्छवास

जयन्ति बाणासुरमौलिलालिता
दशास्यचूड़ामणिचक्रचुम्बिन:
सुरासुराधीशशिखान्तमशायिनो
भवच्छिदस्त्र्यम्बकपादपांसव: ॥[1]

यद्यपि बाणभट्ट नाम से ही मेरी प्रसिद्धि है; पर यह मेरा वास्तविक नाम नहीं है। इस नाम का इतिहास लोग न जानते, तो अच्छा था। मैंने प्रयत्नपूर्वक इस इतिहास से लोगों को अनभिज्ञ रखना चाहा है; पर नाना कारणों से अब मैं उस इतिहास को अधिक नहीं छिपा सकता। मेरी लज्जा का प्रधान कारण यह है कि मेरा जन्म जिस प्रख्यात वात्स्यायन-वंश में हुआ है, उसके धवलकीर्ति-पट पर यह कहानी एक कलंक है। मेरे पितृ-पितामहों के गृह वेदाध्यायियों से भरे रहते थे। उनके घर की शुक-सारिकाएँ भी विशुद्ध मन्त्रोच्चारण कर लेती थीं, और यद्यपि लोगों को यह बात अतिशयोक्ति जँचेगी, परन्तु यह सत्य है कि मेरे पूर्वजों के विद्यार्थी उनकी शुक-सारिकाओं से डरते रहते थे। वे पद-पद पर उनके अशुद्ध पाठों को सुधार दिया करती थीं।[2] हमारे पूर्वजों के घर यज्ञ-धूम से निरन्तर धूमायित रहते थे। परन्तु यह सब मेरी सुनी हुई कहानी है। अपने पिता चित्रभानु भट्टको तो मैंने स्वयं देखा है। यदि मैं कहूँ कि सरस्वती स्वयं आकर अपने पाणि-पल्लवों से मेरे पितृदेव के होमकालीन श्रम-सीकरों को पोंछा करती थीं, तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं होगी; क्योंकि उष:काल से लेकर सूर्योदय के दो मुहूर्तों तक निरन्तर हवन करने के बाद जब मेरे पिता पसीने से तर होकर उठते थे, तो सीधे अध्यापन के कुशासन पर जा बैठते थे। यही उनका विश्राम था। इसी समय विद्यार्थियों को वेदाभ्यास कराते-कराते उनके श्रम-बिन्दु सूखते थे।[3] इसे सरस्वती का पसीना पोंछना न कहूँ, तो क्या कहूँ? ऐसे ही कृती पिता का मैं पुत्र था – जन्म का आवारा, गप्पी, अस्थिरचित्त और घुमक्कड़। मैं घर से जब निकल भागा था, तो अपने साथ गाँव के अन्य अनेक छोकरों को भी फोड़ ले गया था। वे सब अन्त तक मेरे साथ नहीं रहे, तो भी मैं गाँव में बदनाम तो हो ही गया था। मगध की बोली में 'बंड' पूँछ-कटे बैल को कहते हैं। वहाँ यह कहावत मशहूर है कि 'बंड आप आप गए, साथ में नौ हाथ का पगहा भी लेते गए।' सो लोग मुझे 'बंड' कहने लगे। इसी को बाद में संस्कृत शब्द 'बाण' द्वारा संस्कार करके मैंने इस नाम की कुछ इज्जत बढ़ा ली। भट्ट तो लोगों ने और बाद में जोड़ा। वैसे मेरा असली नाम दक्ष था। इधर मेरे प्रति लोगों का आदर और स्नेह का भाव बढ़ गया है, वे चाहें तो दक्ष भट्ट कर लें। बड़ी होशियारी से मैंने यह नाम अन्यत्र सुरक्षित रख छोड़ा है। उसकी कहानी मैं अभी बताऊँगा।

मेरे पिता ग्यारह भाई थे। मैंने उनमें से सबको नहीं देखा था। मेरे एक चचेरे भाई का नाम उडुपति था। वे उम्र में मुझसे बहुत बड़े थे, पर मेरे साथ उनका व्यवहार समवयस्कों के समान ही था। वे उस युग के प्रसिद्ध तार्किक थे। उन्होंने ही वसुभूति नामक बौद्ध भिक्षु को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। उनकी विद्वता और चारित्र्य का महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन पर बड़ा प्रभाव था, और वे एकाएक वैदिक मत की ओर प्रवृत्त हो गए थे। वे उडुपति

भट्ट[4] मेरे ऊपर जितना स्नेह रखते थे, उतना मेरे परिवार में कोई नहीं रखता था। उन्होंने अनेक अपकर्मों से मुझे बचाया है। प्रसंगवश मैं उनकी चर्चा यथास्थान करूँगा। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि 14 वर्ष की उम्र में जब मेरे पिता नहीं रहे – माता तो बहुत पहले मर चुकी थीं[5] तो ये उडुपति भट्ट ही मुझे उस स्नेह-रस से सिञ्चित करते रहे, जिसे मैंने अपनी माता से पाया था। लेकिन इस कहानी को अपने दुर्भाग्य के रोने से नहीं शुरू करूँगा। इसे अपने सौभाग्य के उदय के साथ ही आरम्भ करूँगा। बीच-बीच में यदि दुर्भाग्य की कहानी आ जाए, तो इस कथा के अध्येता उसे क्षमा करेंगे।

आवारा तो मैं था ही। इस नगर से उस नगर में, इस जनपद से उस जनपद में बरसों मारा-मारा फिरता रहा। इस भटकन में मैंने कौन-सा कर्म नहीं किया ? कभी नट बनता, कभी पुतलियों का नाच दिखाता, कभी नाट्य-मण्डली संगठित करता और कभी पुराण-वाचक बनकर जनपदों को धोखा देता रहा; सारांश, कोई कर्म छोड़ा नहीं। भगवान् ने मुझे रूप अच्छा दिया था और बोलने की पटुता भी थोड़ी-सी थी। बस, मेरी किशोरावस्था और जवानी के दिनों में ये ही दो बातें मेरी सहायता करती थीं। यद्यपि लोग मेरे बहुविध कार्य-कलाप को देखकर मुझे 'भुजंग' समझने लगे थे; पर मैं लंपट कदापि नहीं था। सो घूमता-घामता एक बार मैं स्थाण्वीश्वर (थानेसर) नगर में पहुँच गया। उस दिन को मैं अपने सौभाग्य का दिन मानता हूँ।

जब मैं नगर में पहुँचा, तो बड़ी धूमधाम देखी। कूर्मपृष्ठ के समान उन्नतोदर राजमार्ग पर एक बड़ा भारी जुलूस चला जा रहा था। उसमें स्त्रियों की संख्या ही अधिक थी। राजवधुएँ बहुमूल्य शिविकाओं पर आरूढ़ थीं। साथ-साथ चलनेवाली परिचारिकाओं के चरणविघट्टनजनित नूपुरों के क्वणन से दिगन्त शब्दायमान हो उठा था। वेगपूर्वक भुज-लताओं के उत्तोलन के कारण मणिजटित चूड़ियाँ चंचल हो उठी थीं। इससे बाहुलताएँ भी झंकार करने लगी थीं। उनकी ऊपर उठी हथेलियों को देखने से ऐसा लगता था, मानो आकाश-गंगा में खिली हुई कमलिनियाँ हवा के झोंकों से विलुलित होकर नीचे उतर आयी हों। भीड़ के संघर्ष से उनके कानों के पल्लव खिसक रहे थे। वे एक-दूसरी से टकरा जाती थीं। इस प्रकार एक का केयूर दूसरी की चादर में लगकर उसे खरोंच डालता था। पसीने से घुल-घुलकर अंगराग उनके चीनांशुकों को रँग रहे थे। साथ में नर्तकियों का भी एक दल जा रहा था। उनके हँसते हुए वदनों को देखकर ऐसा भान होता था कि कोई प्रस्फुटित कुमुदों का वन चला जा रहा है। उनकी चंचल हास-लताएँ जोर-जोर से हिलती हुई उनके वक्षभाग से टकरा रही थीं, खुली हुई केश-राशि सिन्दूर-बिन्दु पर अटक जाती थी। निरन्तर गुलाल और अबीर के उड़ते रहने के कारण उनके केश पिंगल वर्ण के हो उठे थे और उनके मनोरम गान से सारा राजमार्ग प्रतिध्वनित हो उठा था।

मैं नगर के एक चौराहे पर खड़ा-खड़ा मुग्ध भाव से यह दृश्य देख रहा था। इसका सबसे मजेदार हिस्सा वह था, जिसमें राजमहल में रहनेवाले बौने, कुबड़े, नपुंसक और मूर्ख लोग उद्धत नृत्य से विह्वल होकर भागे जा रहे थे। एक वृद्ध कंचुकी की दशा बड़ी दयनीय हो गई थी। उसके गले में एक नृत्यपरायण रमणी का उत्तरीय वस्त्र अटक गया था और खींच-तान में पड़ा हुआ बेचारा बूढ़ा उपहास का पात्र बन गया था। राजकन्याओं का स्थान जुलूस के ठीक मध्य भाग में था। यहाँ का नृत्य-गान संयत, गम्भीर और मनोहारी था। एक ओर भेरी, मृदंग, पटह, काहल और शंख के निनाद से धरित्री फटी जा रही थी और दूसरी ओर राजकन्याओं के कपोल-तली के

आन्दोलित मणिमय कुण्डलों और उत्पल-पत्रों से जगमगाती हुई शिविकाएँ बीच-बीच में सनूपुर चरणों की ईषत् झंकार से मुखरित हो उठती थीं। सबके पीछे राजा के चारण और बंदी लोग विरुदगान करते हुए जा रहे थे। उनमें से कुछ तो आनन्दातिरेक में ऐसे मदमस्त थे कि मुख से ही एक विशेष प्रकार के वाद्य का काम ले रहे थे। जुलूस के पार होने में दो दण्ड समय बीत गया[6] और मैं निश्चल प्रतिमा की भाँति इतनी देर तक खड़ा रहा।

जब जुलूस निकल गया; तो मैं जैसे नींद से जागा। नगरवासियों से पता चला कि महाराजाधिराज श्रीहर्षदेव के भाई कुमार कृष्णवर्द्धन के घर पुत्र-जन्म हुआ है और आज उसका नामकरण संस्कार होने जा रहा है। मैंने जब यह सुना, तो क्षण-भर के लिए मेरा चेहरा उतर गया। मुझे अपनी दशा याद आ गई। एक ऐसे भाग्यवान् हैं जिनके जन्म पर इतना उत्सव मनाया जा रहा है और एक मैं अभागा हूँ जो देश-विदेश मारा-मारा फिर रहा हूँ! मुझे मेरा जन्म याद आया। मेरी माता मेरे जन्म के कुछ वर्ष बाद ही परलोक सिधार गई थीं। पिता उस समय वृद्ध हो चले थे। अपने अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन के अनेक-विध कर्मबहुल जीवन में उन्हें मेरे पालन-पोषण का गुरुभार भी सँभालना पड़ा था। स्नेह बड़ी दारुण वस्तु है, ममता बड़ी प्रचण्ड शक्ति है; क्योंकि वृद्ध पिता के थके जीवन में भी एक और उपसर्ग आ जुटा और फिर भी वे अक्लान्त चित्त से मुझे सँभालते रहे। होम-वेदिका से उठकर जब वे अध्यापन के कुशासन पर बैठते, तो मेरा धूलि-धूसर कलेवर प्रायः उनकी गोद में होता। मैंने उनसे जितना स्नेह पाया, उतनी विद्या नहीं पायी। चौदह वर्ष की अवस्था में वे भी मुझे अनाथ करके चले गए। मेरे जीवन में जो कुछ सार है, वह मेरे पिता का स्नेह है। उसी से मैं बिगड़ा भी और बना भी। आज इस आनन्द के कोलाहल ने धक्का देकर मुझे अपने पिता की गोद में फेंक दिया। मैंने एक बार आकाश की ओर देखा। मुझे ऐसा लगा कि मेरे पितामहगण मेरे ऊपर दुःख के अश्रु बरसा रहे हैं। कहाँ वेदाध्यायियों का 'यशोंशु-शुक्लीकृत-सप्तविष्टय' वंश और कहाँ मैं अभागा बंड! हे धरित्री, फट जाओ, ताकि मैं छिप जाऊँ!

एकाएक मेरे मन में आया कि क्यों न कुमार कृष्णवर्द्धन के पुत्र-जन्म के अवसर पर बधाई दे आऊँ। आशीर्वाद देना तो ब्राह्मण का धर्म है, कर्त्तव्य है, पेशा है। यद्यपि मैं योजना बनाकर कोई कार्य नहीं कर पाता – और यही कारण है कि मैं कोई भी पुस्तक समाप्त नहीं कर सका – पर निश्चय करने में बिल्कुल देर नहीं करता। सो ज्यों ही यह विचार मेरे मन में आया, मैं कुमार के गृह को प्रस्थान करने का आयोजन करने लगा उस दिन मैंने डटके स्नान किया, शुक्ल अंगराग धारण किया, शुक्ल पुष्पों की माला धारण की, आगुल्फ शुक्ल धौत उत्तरीय धारण किया – यही मेरा प्रिय वेश था,[7] और भगवान् त्र्यंबक के चरणों में अश्रुधौत प्रणाम निवेदन करके चल पड़ा। उस समय संध्या हो आई थी। भगवान् मरीचिमाली की किरणें पृथ्वीतल को छोड़कर तरु-शिखरों पर और वहाँ से भी उठकर अस्तंगिरि की चूड़ा पर जा बैठीथीं। धीरे-धीरे चाँदनी भी छा गई। उस दिन शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी थी। मैं अत्यन्त पुलकित होकर कुमार कृष्णवर्द्धन के घर की ओर चला। एक बार भी मैंने यह नहीं सोचा कि इस समय वे मुझसे मिलना चाहेंगे या नहीं। मेरे मन में आज विचित्र उमंग थी। आज ही मानो मेरा सारा कलुष धुल गया था और मेरा मन तथा शरीर लघु-भार हो गए थे। मैं अब निश्चय कर चुका था कि अपनी लंपटता की बदनामी को हमेशा के लिए धो दूँगा। आज मैं कुमार कृष्णवर्द्धन से मित्रता करूँगा, और दस दिन के भीतर ही महाराजाधिराज का भी कृपापात्र बन जाऊँगा। फिर मेरा गृह यज्ञ धूम की कालिमा से दिशाओं को धवल बना देगा। फिर मेरे द्वार

पर वेद-मन्त्रों का उच्चारण करती हुई शुक-सारिकाएँ बटुकजनों को पद-पद पर टोका करेंगी। मैं अब वात्यायन-वंश का कलंक कदापि न रहूँगा।

पर मेरा भाग्य अब भी किसी अदृष्ट के कण्टक में उलझा हुआ था। जो होना था, वह हो गया; और जो होना चाहिए था, वह न हुआ। इसके बाद मुझे एक ऐसी घटना लिखनी है, जिसे लिखते समय मुझे आज भी भय और आशंका से काँप उठना पड़ता है। मैं जिस बात से बचना चाहता था, उसी से टकराना पड़ा। भाग्य को कौन बदल सकता है ? विधि की प्रबल लेखनी से जो कुछ लिख दिया गया, उसे कौन मिटा सकता है ? अदृष्ट के पारावार को उलीचने में अब तक कौन समर्थ हुआ है ?

द्वितीय उच्छवास

मैं तेजी से बढ़ा जा रहा था। भावी जीवन की रंगीन कल्पकनाओं में डूबते-उतराते मनुष्य को आसपास देखने की फुरसत कहाँ होती है। मैं एक प्रकार से आँख मूँदकर चल रहा था। इसी समय एक क्षीण-कोमल कण्ठ ने पुकारा – "भट्ट, ओ भट्ट, इधर देखो, मुझे पहचानते हो ?" इस आवाज ने मुझे चौंका दिया। इस सुदूर स्थाण्वीश्वर में मुझे पहचाननेवाला यह कौन है ?

* * *

अरे, यह तो निपुणिका है। मैं एक क्षण तक उन्मथित-सा, भ्रान्त-सा, निःसंज्ञ-सा खड़ा रहा। फिर एकाएक चिल्ला पड़ा, "अरे, निउनिया !" 'निउनिया' निपुणिका का प्राकृत नाम है।

* * *

निपुणिका का संक्षिप्त परिचय यहाँ दे देना चाहिए। निपुणिका आजकल की उन जातियों में से एक की सन्तान है, जो किसी समय अस्पृश्य समझी जाती थी; परन्तु जिनके पूर्व-पुरुषों को सौभाग्यवश गुप्त-सम्राटों की नौकरी मिल गई थी। नौकरी मिलने से उनकी सामाजिक मर्यादा कुछ ऊपर उठ गई। वे आजकल अपने को पवित्र वैश्य-वंश में गिनने लगी हैं और ब्राह्मण-क्षत्रियों में प्रचलित प्रथाओं का अनुकरण करने लगी हैं। उनमें विधवा-विवाह की चलन हाल ही में बंद हुई है। निपुणिका का विवाह किसी कांदविक वैश्य के साथ हुआ जो भड़भूजे से उठकर सेठ बना था। विवाह के बाद एक वर्ष भी नहीं बीतने पाया था कि निपुणिका विधवा हो गई।

* * *

मैं इस अभागिनी के दुःख-सुख को अच्छी तरह समझे बिना अब उठ नहीं सकता था। बहुत दिनों के बाद अपनी असावधान हँसी के कारण उत्पन्न हुई परिस्थिति को सुधारने-सँभालने का अवसर मिला था। न जाने मेरी प्रमत्त किलकार ने इस दुःखिनी के किस सुकुमार घाव को ताजा कर दिया था, निरन्तर छह वर्षों से न जाने वह कहाँ-कहाँ मारी-मारी फिरी है और इन दिनों न जाने किस अभाग्य के नाले में छटपटा रही है, बाणभट्ट यह सब जाने

बिना नहीं टल सकता। इसी सहानुभूतिमय हृदय ने तो मुझे आवारा बना दिया है। जो प्रमत्त हँसी छह वर्षों से मेरा हृदय कुरेद रही है, उसका प्रायश्चित आज आँसुओं से करना होगा। मुझे इस विषय में कोई सन्देह नहीं कि निपुणिका का चरित्र यहाँ के सदाचारियों की दृष्टि में अत्यन्त निकृष्ट है। इस दूकान पर बैठे हुए निश्चय ही मैंने अपने को काजल की कोठरी में बंद कर दिया है। सब है, पर निपुणिका मुझसे बड़ी है मूल्यवान् है। सारे जीवन मैंने स्त्री-शरीर को किसी अज्ञात देवता का मन्दिर समझा है। आज लोगों की आलोचना के डर से उस मन्दिर को कीचड़ में धँसा हुआ छोड़ जाना मेरे वश की बात नहीं है।

* * *

मैंने उसकी कोटरशायिनी आँखों को एक बार फिर देखा। उनमें आँसू भरे हुए थे। मैं बोला, "निउनिया, तू झूठ बोलती है। तू पछता रही है, तू कष्ट में है, तू आश्रय चाहती है, तू मुझे यहाँ ये हटने नहीं देना चाहती। मैं जो पहले था, वह आज भी हूँ; सारी दुनिया भी मुझे मेरे आश्रय से अलग नहीं कर सकती। यह दूकान अभी बंद कर दे। जहाँ लोग तेरी कोई बात नहीं जानते, ऐसे किसी स्थान पर शान्तिपूर्वक रह। मैं तुझे कीचड़ में छोड़कर नहीं जा सकता। मेरे प्रति तेरा मोह कट गया है, यह अच्छी बात है। तू इस कालिमा-भरी नगरी के राजमार्ग को छोड़ दे। तेरी आँखें कैसी धँस गई हैं ! हाँ अभागी, तू मुझसे भी छिपा रही है !" निपुणिका इस बार घायल हो गई। वह फूट-फूटकर रो पड़ी। दो-एक ग्राहक इसी समय दूकान पर आते दिखाई पड़े। उन्हें दूर से देखकर ही निपुणिका सँभल गई। एक क्षण का भी विलम्ब किए बिना उसने दुकान का दरवाजा बंद कर दिया और मुझे भीतर चलने का इशारा किया। दूकान के पीछे एक छोटा-सा आँगन था, उसके बीचोबीच एक तुलसी का वृक्ष था। पास में एक छोटी वेदी थी और उस पर महावराह की एक अत्यन्त भव्य मूर्त्ति रखी थी। मूर्त्ति छोटी ही थी; पर जिस मूर्त्तिकार ने उसे बनाया था, वह बहुत ही पका हुआ शिल्पी जान पड़ता था। महावराह के दाँतों पर उठी हुई धरित्री के मुखमण्डल पर जो उल्लास और दीप्ति का भाव था, वह देखते ही बनता था। महावराह के दोनों हाथ कटि-देश पर इस प्रगल्भलता के साथ टिके हुए थे, और बाहुमूल की पेशियाँ इस दृढ़ता के साथ निकाली गई थीं कि देखकर मन में एक अपूर्व विश्वास उद्रिक्त हो उठता था। मुझे समझने में एक मूहूर्त्त का भी विलम्ब नहीं हुआ कि ये निपुणिका के उपास्य देव हैं और निपुणिका अपने उद्धार की ऐसी ही आशा लगाए हुए है। निपुणिका ने एक बार मूर्त्ति को सतृष्ण नयनों से देखा, उसका गला तब भी रुँधा हुआ था, और इशारे से मुझे एक छोटे घर में बैठने का निर्देश किया। मैं बैठ गया।

* * *

निपुणिका इस बार और जोर से हँस पड़ी। बोली, "देव-मन्दिर का उद्धार करना है।"

मैं समझ गया, देव-मन्दिर अर्थात् नारी। यह तो कोई अनुचित कार्य नहीं है। ज़रा हँसके मैंने कहा, "तेरा उद्धार तो महावराह ने कर दिया है, तेरी परवा मुझे नहीं है। अब और कौन रमणी विपत्ति में फँसी हुई है, जिसका उद्धार मुझे करना होगा।"

निपुणिका ने कहा, "भट्ट, अब तक तुमने नारी में जो देव-मन्दिर का आभास पाया है, वह तुम्हारे भोले मन की कल्पना थी। आज मैं तुम्हें सचमुच का देव-मन्दिर दिखाऊँगी। परन्तु उसके लिए तुम्हें छोटे राजकुल में मेरी सखी बनकर प्रवेश करना होगा और कीचड़ में धँसे हुए उस मन्दिर का उद्धार करना होगा। आज ही उत्तम अवसर है। महावराह ही मेरे वास्तविक सहायक हैं। उन्होंने ही तुम्हें यहाँ भेजा है। तुम न आते तो भी मुझे तो यह करना ही था। बोलो भट्ट, तुम यह काम कर सकोगे ? तुम असुर-गृह में आबद्ध लक्ष्मी का उद्धार करने का साहस रखते हो ? मदिरा के पंक में डूबी हुई कामधेनु को उबारना चाहते हो ? बोलो, अभी मुझे जाना है ! महावराह ने आज ही अनुमति दी है। इस सीता का उद्धार करते समय तुम्हें जटायु की भाँति शायद प्राण दे देना पड़ेगा। है साहस ?"

मैं हँसा। यह काम मैं जरूर कर सकता हूँ। केवल एक बार मैंने अपने स्वर्गीय पिता को मन-ही-मन प्रणाम किया – 'पिता, आज आत्मोद्धार-कर्म से विरत रहना पड़ा। समय और सुयोग मिला, तो फिर कभी होता रहेगा। न जाने किस दु:खिनी के दुःखमोचन-यज्ञ में अपने-आपको होम देने की पुकार आई है। आज इसी का ऋत्विज् बनने दो।' निपुणिका की ओर देखकर मैंने कहा, "निउनिया, मैं प्रस्तुत हूँ, नेपथ्य (वेश बदलने का वस्त्र आदि) ला।"

तृतीय उच्छवास

निपुणिका ने इस छोटे राजकुल के विभव को ज़रा विस्तारपूर्वक ही समझाया और फिर वहाँ की कलंकवार्त्ता को भी उसी विस्तार के साथ व्यक्त किया। कान्यकुब्ज की रक्षणशील जनता में मौखरियों के प्रति आदर और सम्भ्रम का भाव है, चतुर महाराज हर्षवर्द्धन इस बात को जानते हैं। इसीलिए मौखरि-वंश का यह दावेदार, स्थाण्वीश्वर में 'महाराज' कहकर ही पुकारा जाता है। उसे कोई अधिकार नहीं दिया गया है; पर सम्पत्ति दी गई है। इसीलिए उसमें एक अनुत्तरदायी भोगलिप्सा बढ़ गई है, जो अब अत्यन्त निकृष्ट अनाचार का रूप धारण कर चुकी है। महाराजाधिराज को यह बात मालूम है; पर जनता में अब भी मौखरि-वंश का मान है, इसलिए साहसपूर्वक वे इस छोटे महाराज को हटा नहीं सकते। इसी छोटे महाराज के घर में आज एक महीने से एक अत्यन्त साध्वी राजकुमारी अपनी इच्छा के विरुद्ध आबद्ध है। निपुणिका ने यद्यपि यह कहानी बहुत संक्षेप में बताई; पर उस राजबाला की बात आते ही वह अपने को रोक नहीं सकी। उसने उसकी एक-एक क्रिया का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया और अन्त में डबडबाई आँखों से कहा, "भट्ट, वह अशोक-वन की सीता है, तुम उसका उद्धार करके अपना जीवन सार्थक करो।" जीवन सार्थक करने का साधन निपुणिका ने स्वयं दे दिया था। वह एक छोटा-सा विष-दग्ध छुरा था, जो कंचुकी में आसानी से छिपाया जा सकता था। इसे देते समय उसने ज़रा हँसकर कहा था, "इसकी कोई आवश्यकता नहीं होगी भट्ट, पर रख लेने में हर्ज ही क्या है।" मैं समझ गया, प्राण लेना या देना जरूरी नहीं है; पर लेना या देना पड़ ही जाए, तो हानि क्या है ! मैंने निपुणिका की ओर हँसकर देखा। वह भी हँसने लगी।

* * *

राजकन्या ने निपुणिका की ओर विश्वासपूर्वक देखा। निपुणिका के लिए वह पार्वती के समान वन्दनीया थी और उसके लिए निपुणिका सखी और वयस्या के समान दुःख-संगिनी। एक बार अपनी बड़ी-बड़ी स्नेह-मेदुर आँखों से मेरी ओर देखा। उस दृष्टि में जिज्ञासा का भाव था। निपुणिका ने आगे जाकर बहुत धीरे-धीरे कुछ कहा। उसने मेरे विषय में कुछ गोपन नहीं रखा; क्योंकि एक क्षण में ही राजकन्या के नयनों में लज्जा का भाव उदय हुआ, उसके धवलायमान कपोलों पर लज्जा की लालिमा दौड़ गई। वह क्षण-भर के लिए कुछ म्लान भी हो गई। उस समय मुझे अपने अनधिकार प्रवेश पर बड़ा क्षोभ हुआ, लेकिन निपुणिका ने क्या जाने क्या कहकर उसे सँभाल लिया। राजकन्या ने बंकिम नेत्रपात से मेरी ओर देखा और फिर एक बार महावराह की ओर कातर भाव से ताका। उसकी आँखों से धारा बह चली। स्पष्ट ही उस कातर दृष्टि का अभिप्राय यह था कि हे इष्टदेव, अभी और क्या-क्या दिखाओगे ! निपुणिका, किन्तु, कान में कुछ कहती ही रही। एक घड़ी तक मैं ग्लान-लज्जित बैठा रहा और वह राज्यकन्या नाना चिन्ताओं में डूबी पड़ी रही। फिर वह धीरे-धीरे उठी। निपुणिका ने घर के बाहर बैठी हुई चामरधारिणी को पुकार के कहा, "हञ्जे, आर्य वाभ्रव्य से कह दे कि नई बहू को प्रमद-वन में चलने को निपुणिका ने सम्मत कर लिया है। वे आ रही हैं।"

* * *

'भावी महादेवी' प्रमद-वन के बाहर से घूमती हुई वृक्ष-वाटिका की ओर चल दीं। वाटिका के बीचोबीच एक विशाल वापी थी। सारी वापी कुमुद-कल्हारों से परिपूर्ण थी। चाँदनी की शुक्लता ने उसकी स्वच्छता को और भी गाढ़ बना दिया था। हम तीनों वहाँ पहुँचकर रुक गए। राजकन्या ने निपुणिका की ओर देखकर कहा, "अब !" और प्रस्तर-निर्मित घाट पर अवसन्न-सी होकर बैठ गई। निपुणिका ने कहा, "आर्ये, महावराह सहायक हैं। भगवान् को साधुवाद दो कि दक्ष भट्ट जैसा साहसी और भद्र पुरुष हमें सहायक मिल गया है। झिझक छोड़ो। उठो।" राजकन्या ने मेरी ओर प्रश्नभरी दृष्टि से देखा। मैंने धीरे-धीरे किन्तु दृढ़ता से कहा, "आर्ये, अभागे दक्ष को एक पुण्य-कार्य करने का अवसर मिला है। साहस करो। यमराज भी तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं कर सकता।" निपुणिका ने एक बार मेरी ओर देखा और राजकन्या के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना मुझसे कहा "भट्ट, नेपथ्य उतार दो। महावराह का प्रसाद-वस्त्र धारण करो और प्रान्त वृक्षों की शाखा के सहारे चहारदीवारी लाँघ जाओ। फाटक पर हमारी प्रतीक्षा करना।" मैं सब समझ गया। वाटिका के एक प्रान्त में जाकर मैंने पुरुष-वस्त्र धारण किया। निपुणिका की सखी का नेपथ्य उसे ही देकर मैं एक नातिदीर्घ शिरीष-वृक्ष पर चढ़ गया और बाहर आकर राजमार्ग पर खड़ा हो गया। नाग उस समय उनींदा था। मैं दूर खड़ा प्रतीक्षा करने लगा। उस समय चन्द्रमा मध्य आकाश में आ गया था, ऐसा जान पड़ता था कि वह शुक्ल-वसन-धारिणी धरित्री के ललाट का चन्दन-तिलक है। क्या आज धरित्री ने भी अपने उद्धारकर्त्ता महावराह की पूजा की है ?

चतुर्थ उच्छवास

थोड़ी देर में सामनेर लौटा। उसके स्वर में इस बार मेरे प्रति थोड़ा आदर-भाव था। उसने आते ही पूछा, "क्या आप मगध के महापण्डित स्वर्गीय जयन्तभट्ट के कनिष्ठ पौत्र हैं ? आचार्यपाद ने आपका नाम सुनकर यह

पूछने का आदेश दिया है।" मैं चौंका। तो आचार्यपाद मुझे जानते हैं ! मेरे समस्त कलुष-जीवन का परिचय उन्हें मिल चुका है ! क्षण-भर में मेरा सिर घूम गया। अपने को बलपूर्वक सँभालकर मैंने कहा, "हाँ, मैं महापण्डित जयन्तभट्ट का ही अभागा पौत्र हूँ।" मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही सामनेर चला गया और शीघ्र ही लौटकर बोला, "आचार्यपाद ने इसी समय आपको दर्शन देने का प्रसाद किया है। आप परम सौभाग्यशाली हैं। आइए।" मैं सामनेर के पीछे इस प्रकार चला, जैसे शूलीविद्ध होने जा रहा हूँ।

दुतल्ले पर उठकर हम नीचे की ओर आए और फिर एक पतले अलिंद मार्ग से होते हुए नीचे के कुट्टिम प्रांगण में उपस्थित हुए। इस आँगन के ठीक केन्द्र में एक अश्वत्थ-वृक्ष था। नए किसलयों से वह लदा हुआ था। उसी की घनी छाया में आचार्य बैठे हुए थे। उनके पास दो-एक शिष्य वर्त्तमान थे। मैं जब वहाँ पहुँचा, उस समय आचार्य किसी शिष्य को कुछ समझा रहे थे। उन्होंने मेरा आना लक्ष्य नहीं किया। यह अच्छा ही हुआ, क्योंकि मैंने इस बीच अपने को सँभाल लिया। आचार्यपाद बहुत वृद्ध थे। उनका मस्तक मुण्डित था; परन्तु कानों के गह्वर में दो-चार शुक्ल केश फिर भी दिखाई देते थे और वे बता रहे थे कि वार्द्धक्य ने आचार्य को किस प्रकार प्रभावित किया है। उनकी आँखें बहुत स्निग्ध और करुणार्द्र थीं। उनकी वाणी दृढ़ और मधुर थी। उनकी स्थापना-शैली युक्तिपूर्ण और प्रत्ययोत्पादिनी थी। मैं उन्हें थोड़ी देर तक एकटक देखता रहा। तपस्या भी कैसी महिमाशालिनी होती है; क्योंकि इसी तपस्या ने उनकी आकृति को तप्त कांचन के समान निर्मल बनाया है। उस कान्ति से एक अद्भुत शान्ति टपक रही थी। थोड़ी देर बाद आचार्य ने मेरी ओर देखा – जैसे हर-जटा से सहस्र-धार होकर पड़ी निर्मल मन्दाकिनीधारा अशेष तापदग्ध धरित्री को शीतल करने चली हो, उसी प्रकार उनकी आँखों से एक अपार करुणा-स्रोतस्विनी बह गई। ग्रीवा को मेरी ओर फिराने में उन्हें थोड़ा आयास करना पड़ा। फिर मुझे देखकर बोले, "आ वत्स, तू जयन्त का कनिष्ठ पौत्र है न ? देखूँ ज़रा। आहा, ठीक जयन्त-जैसा ही दिख रहा है ! जयन्त मेरा गुरुभाई था, बेटा ! हम दोनों में बड़ी प्रीति थी। वह अन्त तक मुझे अपना भाई ही मानता रहा। मैं जब से तक्षशिला की ओर चला गया तब से हम दोनों की देखा-देखी नहीं हुई। चालीस वर्ष बाद जब उधर से नालन्दा गया, तो सबसे पहले जयन्त के बारे में खोज-पूछ की। मुझे उस समय मालूम हुआ कि वह इस लोक को छोड़ गया। उसी समय मैंने सुना था कि तू घरद्वार छोड़कर कहाँ-कहाँ भटकता फिरता है। बहुत अच्छा हुआ वत्स, तू मुझसे मिल गया। क्यों बेटा, अभी घर जाने की रुचि नहीं है ?"

वृद्ध आचार्य की आँखें भर आईं। मैं अपने को कुछ प्रीत, कुछ ग्लान, कुछ आश्वस्त और कुछ गौरवान्वित अनुभव करता रहा। वृद्ध ने जैसे मुझे स्नेह-रस में डुबो दिया। मैं कुछ कातर-भाव से ही बोला, "देश जाने की रुचि तो है आर्य, पर एक विशेष कार्य में उलझ गया हूँ। आर्यपाद से अपने पितामह का सम्बन्ध जानकर आनन्दित हुआ हूँ। परन्तु इस समय जिस जंजाल में फँस गया हूँ, वह महान् होने पर भी मेरे वंश-गौरव के अनुकूल नहीं है, और आर्य, ऐसे ही विषय में आपकी सहायता-प्रार्थना करने आया हूँ जो आपको केवल कष्ट ही देगा। मैं अभागा हूँ, पर जिस कार्य के विषय में आपकी सहायता माँगने आया हूँ, उसे आप अन्यथा न समझें।" आचार्य की आँखें विकच पुण्डरीक के समान खिल गईं। बोले, "बता न बेटा, क्या कार्य है ?"

* * *

आदेश पाकर शिष्य वहाँ से उठ गया और आचार्य ने मेरी ओर जिज्ञासा के साथ देखा। मैं मुग्ध-भाव से आचार्य की प्रेमपूर्ण अध्यापन-शैली को देख रहा था। थोड़ी देर तक भूल ही गया कि मैं किस काम से आया हूँ। फिर बिना किसी भूमिका के ही मैंने कहा, "विषय-समर-विजयी वाह्लीक-विमर्दन प्रत्यन्त-बाड़व देवपुत्र तुवरमिलिन्द की कन्या आपका दर्शन पाना चाहती हैं।"

आचार्य को जैसे विस्मय का एक धक्का लगा, मानो उस धक्के से वे टल गए। ज़रा आगे झुककर आँखें फाड़कर देखते हुए बोले, "क्या कहा वत्स, देवपुत्र तुवरमिलिन्द की एकमात्र कन्या चन्द्रदीधिति अभी जीवित है ? वह कहाँ है, वत्स ? किस अवस्था में तुमने देखा है ? वह कुशल से तो है ? मैंने सुना था, प्रत्यन्त दस्युओं ने उसे हरण किया है। वह कुशल से तो है ? मैंने सुना था, प्रत्यन्त दस्युओं ने उसे हरण किया है। तुमने ठीक देखा है, वत्स ! वह सुकुमारिता की मूर्त्ति है, पवित्रता की उत्स है, शोभा की खानि है, शुचिता की आश्रय-भूमि है, मूर्त्तिमती भक्ति है, कान्तिमती करुणा है ! आहा, वह तुवरमिलिन्द की नयनतारा अभी जीवित है ? बताओ वत्स, मैं उसे देखने को व्याकुल हूँ।"

* * *

शिष्य के चले जाने के बाद उन्होंने मेरी ओर देखकर कहा, "राजदण्ड कठिन होता है, वत्स ! तूने साहस का काम किया है। मैं तुझसे प्रसन्न हूँ, परन्तु अन्तःपुर में रात को प्रवेश करना धर्मतः निषिद्ध है। यहाँ रहने पर तुझे राजकोप का भाजन होना पड़ेगा। शीघ्र ही तू चन्द्रदीधिति और निपुणिका को लेकर मगध की ओर चला जा। मैं व्यवस्था किए देता हूँ। जा, चन्द्रदीधिति को मेरी ओर से आशीर्वाद कह। मैं उसके निरापद प्रस्थान की आयोजना कर रहा हूँ। जब तक कोई व्यवस्था नहीं हो जाती, तब तक उसके देखने की व्याकुलता को मैं दबा रहा हूँ। तू जाकर उसे आश्वस्त कर। मेरी ओर से उसे विश्वास दिला दे कि यहाँ कोई भी उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकेगा। जा, जल्दी कर। पुजारी से सावधान रहना। वह मूर्ख और नीच है।" मैंने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और तेजी से चण्डी-मण्डप की ओर बढ़ा।

पंचम उच्छवास

निपुणिका की आँखों में एक अद्भुत आनन्द खेल रहा था। बोली, "यही तो तुम नहीं समझते कि कौन हारता है। यदि तुम समझ लेते कि कौन हारता है, तो यह भी समझ लेते कि कौन डरता है। भट्ट, तुम भोले हो ! तुम इस पृथ्वी पर शरीरधारी देवता हो।"

मैं और भी चक्कर में पड़ गया। भोला सही, देवता भी सही; पर इसमें डरने की बात क्या हो सकती है ? मैंने सोचा कि अब अगर और कुछ बोलता हूँ, तो यह विदग्धा न जाने उसमें कौन-सी शाखा-प्रशाखा निकालकर मुझे एक बार फिर निरुत्तर कर देगी। बुद्धिमान की नीति मौन होती है। मैं हँसकर चुप हो रहा।

* * *

मैंने प्रणतिपूर्वक विदा ली। सामनेर मुझे एक नातिदीर्घ गृह में ले गया। वहाँ कुमार एक तृणास्तरण पर बैठे मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। आचार्य की बात से मैंने पहली बार जाना कि कुमार महासान्धिविग्रहिक के महत्त्वपूर्ण पद पर अधिष्ठित हैं। मुझे देखते ही वे उठ खड़े हुए और बड़े प्रेम से अपने तृणास्तरण के आधे भाग पर बैठाया। मुझे उस समय कुमार की उदारता, विनय और शील देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ; परन्तु वास्तव में कुमार थे ही ऐसे। वे गुणियों के आश्रय, गुणों की जन्मभूमि, विद्वानों के रक्षक और विद्या के भाण्डागार थे। उनकी आँखें प्रेमरस से परिपूर्ण थीं; पर उनकी भृकुटि में से आतंक झर रहा था।

* * *

कुमार ने उत्तेजित होकर कहा, "दुर्विनीत ब्राह्मण-वटु, भिक्षाजीवी, दम्भी !" मैंने हँस दिया। कुछ कहा नहीं। कुमार और भी उत्तेजित हो गए। बोले, "अन्तःपुर में चोर की तरह प्रवेश करनेवाले, अधार्मिक, तुम्हें लज्जा नहीं है !"

"मुझे स्थाण्वीश्वर के लंपट राजकुल केअन्तःपुर के विषय में श्रद्धा नहीं है। जहाँ चौर्य-लब्ध अत्याचारिता वधुएँ वास करती हैं, उस अन्तःपुर की कोई मर्यादा नहीं होनी चाहिए। ऐसे अन्तःपुरों को प्रश्रय देनेवाले लज्जित होना चाहें तो हो लें, उन्हें शोभा दे सकता है। कुमार, साम्राज्य-गर्व में अन्धे न बनो। स्थाण्वीश्वर ने राजलक्ष्मी का अपमान किया है। और, ब्राह्मण पर तुम्हारा कोप व्यर्थ है। वह न भिखारी होता है, न महासान्धिविग्रहिक। वह धर्म का व्यवस्थापक होता है। मैंने जो कुछ किया है, उससे न मैं लज्जित हूँ, न मेरा ब्राह्मणत्व कलुषित हुआ है। मैं देवपुत्र तुवरमिलिन्द की मर्यादा का पूर्ण जानकार हूँ और निर्भय भाव से फिर कहता हूँ कि स्थाण्वीश्वर के राजवंश ने अपने को पूज्य-पूजन के अयोग्य सिद्ध किया है। देवपुत्र-नन्दिनी इस राजवंश से घृणा करती हैं।"

* * *

मैंने शान्त-भाव से कहा, "आर्य, देवपुत्र तुवरमिलिन्द की कन्या को अपमानित करनेवाले राजकुल को प्रश्रय देनेवाले राजवंश ने अपने को पूज्यपूजन के अयोग्य सिद्ध किया है। मैं देवपुत्र-नन्दिनी को उस राजवंश से सम्बद्ध किसी व्यक्ति के गृह में आश्रय नहीं लेने दे सकता। यह बात मैं उनकी अनुमति पाकर ही कह रहा हूँ। मेरा अविनय क्षमा हो, किन्तु इस समय मैं अकिंचन बाणभट्ट के रूप में नहीं बोल रहा हूँ, बल्कि देवपुत्र तुवरमिलिन्द की प्राणाधिका कन्या की प्रतिष्ठा और मर्यादा के रक्षक के रूप में बोल रहा हूँ। बाणभट्ट कुमार का वशंवद है, पर देवपुत्र तुवरमिलिन्द के आहत अभिमान के प्रतिनिधि के रूप में आप उसके झुकने की आशा नहीं कर सकते।"

* * *

कुमार के प्रभास्वर मुखमण्डल से कभी रोष, कभी क्षोभ, कभी ग्लानि और कभी बेबसी के भाव टपकते रहे। दिनान्तकालीन मेघ-मण्डल के समान उनके आर्द्रार्द्र मुख-मण्डल पर अनेक रंग आए और गए। आचार्यपाद ने

मेरी ओर देखकर कहा, "वत्स, मेरी ओर से कुमारी से अनुरोध पालन करने का प्रतिवेदन करना। मैं नदी-तीर पर उससे मिलूँगा। अब तुम जाओ।"

षष्ठ उच्छवास

भैरवी मुझे टूटी दीर्घिका (तालाब) के घाट पर ले गई। यहाँ पहले से ही तीन व्यक्ति उपस्थित थे। दो तो कोई साधक भैरव और भैरवी थे, पर एक महात्मा उनमें विशेष थे। वे व्याघ्र-चर्म पर अर्द्धशायित अवस्था में लेटे हुए थे। उनके शरीर से एक प्रकार का तेज निकल रहा था। सिर पर केश नहीं के समान थे; पर कान की शष्कुलियाँ श्वेत केशों से आच्छादित थीं। ललाट-मण्डल की सहज वलियाँ कूर्चप्रदेश तक व्याप्त हो गई थीं। आँखों के ऊपर की दोनों भ्रूलताएँ मिल गई थीं और सारा मुख-मण्डल छोटे-छोटे श्मश्रु-लोमों से परिव्याप्त था। उनकी आँखें बहुत ही आकर्षक थीं। उन्हें देखकर बड़ी-बड़ी समुद्री कौड़ियों का भ्रम होता था। ऐसा जान पड़ता था कि वे आँखें पूरी-पूरी कभी खुली ही नहीं थीं। सदा आधी ही खुलती रहने के कारण उनके नीचे मांस-खण्ड फूल उठे थे और कोनों में एक प्रकार की स्थायी सिकुड़न आ गई थी। उनके वेश में कोई विशेष साम्प्रदायिक चिह्न नहीं था; केवल दाहिनी ओर रखा हुआ पान-पात्र देखकर अनुमान होता था कि वे कोई वाममार्गी अवधूत होंगे। उनके पहनावे में एक छोटा-सा वस्त्र-खण्ड था, जो लाल नहीं था और तन ढकने के लिए पर्याप्त तो किसी प्रकार नहीं था। उनकी तोंद कुछ ज्यादा निकली दिखती थी, यद्यपि वह उतनी अधिक निकली हुई थी नहीं। भैरवी ने उनके पास आकर कहा, "बाबा, यह देखो, यह व्यक्ति साधना-गृह को भ्रष्ट कर आया है।" बाबा की आँखें मुँदी हुई थीं। भैरवी की वाणी सुनकर वे ज़रा सचेत हुए और उन्होंने अपनी आधी खुली आँखों से क्षण-भर के लिए मेरी ओर ताका। वह दृष्टि बहुत ही पवित्र जान पड़ी। बाबा ने फिर आँखें बंद कर लीं।

* * *

मुझे लक्ष्य करके बोले, "क्यों रे, डरता है क्या ?"

"मेरा अपराध क्षमा करें, आर्य !"

"तूने कोई अपराध किया है रे ?"

"मैं साधारण मनुष्य हूँ, आर्य ! अपराध करता ही रहता हूँ; किन्तु जान-बूझकर कभी किसी का अनिष्ट नहीं किया है। मैं अमंगल से डरता हूँ।"

"ब्राह्मण है ?"

"हाँ, आर्य !"

"तेरी जाति ही डरपोक है। क्यों रे, महावराह पर तेरा विश्वास नहीं है ?"

"है, आर्य !"

"झूठा ! तेरी जाति ही झूठी है ! क्यों रे, तू आत्मा को नित्य मानता है?"

"मानता हूँ, आर्य !"

"पाखण्डी ! तेरे सब शास्त्र पाखण्ड सिखाते हैं ! क्यों रे, कर्मफल मानता है ?"

बाबा के इस प्रश्न का उत्तर अब सहज ही मैं नहीं दे सका। फिर न जाने मेरी जाति पर कौन-सा विशेषण बैठा दिया जाए। ज़रा-सा वक्रभंगी से कतरा जाने की चेष्टा करते हुए मैंने कहा, "कैसे कहूँ बाबा !"

बाबा हँसे। बोले, "बता न, तू कर्मफल मानता है या नहीं ?"

"मानता हूँ, आर्य !"

"तो अमंगल से क्यों डरता है ? मिथ्याचारी है तू !"

"हाँ, आर्य, सो तो हूँ।"

"तो कुछ सच्ची बात सीख न !"

"क्या आर्य ?"

"यही कि डरना नहीं चाहिए। जिस पर विश्वास करना चाहिए, उस पर पूरा विश्वास करना चाहिए, चाहे परिणाम जो हो। जिसे मानना चाहिए, उसे अन्त तक मानना चाहिए।"

"माया-पंक में डूबा हुआ संसास्कीट हूँ, आर्य ! बहुत-कुछ समझता हूँ, पर कर नहीं पाता।"

"प्रपंची ! तेरी जाति ही प्रपंची है। सौ बात क्यों समझता फिरता है ? एक को समझ और उसी को कर। क्यों रे, उस लड़की पर तेरी ममता है न ?"

यह अजीब प्रश्न है। क्या जवाब दूँ ? चुप रहना ही ठीक समझा। बाबा ने इसी समय उस भैरवी से कहा, "महामाया ! सब ठीक है न ?"

भैरवी ने कहा, "अभी ठीक हो जाता है।" यह कहकर वे और दोनों अन्य साधक भी उठ पड़े। मैं अकेला रह गया। बाबा ने मुझसे फिर पूछा, "क्यों रे, बताता क्यों नहीं ?"

मैंने हाथ जोड़कर कहा, "उस कन्या का सेवक होना गौरव का विषय है, आर्य ! मैं उसके मंगल के लिए प्राण तक दे सकता हूँ।"

बाबा हँसते रहे। बोले, "ना रे पागल, प्राण मैं नहीं माँगता। मैं जानना चाहता हूँ कि उस कन्या पर तेरी ममता है या नहीं। सीधा क्यों नहीं कहता कि है। तेरी जाति ही टेढ़ी है। हाँ रे, और महावराह पर तेरी ममता है ?"

"है आर्य ?"

"मान ले कि एक निशाचर अचानक आकर तुझे धर दबाए और अपने बाएँ हाथ में तेरी स्वामिनी को और दाहिने हाथ में महावराह की मूर्त्ति को लेकर बोले कि तू अपना प्राण देकर किसी एक को बचा सकता है, तो तू किसे बचाने के लिए प्राण देना पसंद करेगा ?"

बाबा बेढब जीव है। ऐसा भी प्रश्न किया जाता है ! मैं चुप हो रहा। थोड़ी देर तक सोचकर बोला, "मैं दोनों को बचाना चाहूँगा।"

बाबा क्रोध से काँप उठे – "फिर झूठ बोलता है, जन्म का पातकी, कर्म का अभागा, मिथ्यावादी, पाषण्ड !! महावराह को बचाएगा तू, दम्भी !"

मैं हतचेष्ट, निर्वाक् स्तब्ध ! बाबा का क्रोध वास्तविक नहीं था। मेरी परीक्षा लेने के लिए ही उन्होंने यह रूप धारण किया था। मैं विचलित हो गया। मेरी इच्छा के विरुद्ध जैसे किसी ने मुझसे कहलवा लिया – "प्राण देकर मैं भट्टिनी को बचाऊँगा।"

बाबा हँसने लगे। उनकी अर्द्धमुद्रित आँखें चमक उठीं। बोले, "अभागा, सारी ज़िंदगी में तूने यही एक बात सच कही है। क्यों रे, लजाता है ? दुत् पगले, उस मायाविनी के जाल में फँस रहा है ? क्या बुरा है रे, त्रिपुर-सुन्दरी ने जिस रूप में तेरे मन को लुभाया है, उसे साहसपूर्वक स्वीकार क्यों नहीं करता ? तू अभागा ही बना रहेगा, भोले ! तेरे मन में महावराह से अधिक पूज्य भावना उस लड़की के प्रति है। है न रे ? फिर झूठ बोलेगा भाग्यहीन ?"

"ना बाबा, झूठ क्या मैं समझ-बूझकर बोल रहा हूँ, कोई बुलवा रहा है। भट्टिनी के प्रति मेरी पूज्य भावना है, यह ठीक बात है।"

"हाँ, तू अब ठीक कह रहा है। भुवनमोहिनी का साक्षात्कार पाकर भी तू भटकता फिर रहा है पागल ! देख रे, तेरे शास्त्र तुझे धोखा देते हैं। जो तेरे भीतर सत्य है, उसे दबाने को कहते हैं; जो तेरे भीतर मोहन है, उसे भुलाने को कहते हैं; जिसे तू पूजता है, उसे छोड़ने को कहते हैं। मायाविनी है यह मायाविनी, तू इसके जाल में न फँस। समस्त पुरुषों को भरमा रही है, स्त्रियों को सता रही है, माया का दर्पण पसारे है। तू उसे नहीं देखता, मैं देख रहा हूँ। तुझे देखकर वह हँस रही है।"

मैं मुग्ध-सा बना बाबा की ओर देख रहा था। उनका प्रत्येक वाक्य मेरे अन्तस्तल में उथल-पुथल मचा देता था जैसे वर्षों की गंदगी साफ हो रही हो।

* * *

बाबा ने ऊपर मुँह करके पुकारा – "मायाविनी, मायाविनी।" और फिर गट-गट करके पी गए। थोड़ी देर तक एक अद्भुत मस्ती की दशा में झूमते रहे और फिर उठ खड़े हुए। हम दोनों भी उठ गए। विरति के साथ वे साधना-गृह में चले गये और मुझे थोड़ी देर बाद आने का आदेश दिया। चलते-चलते कहते गए – "किसी ने न डरना, गुरु से भी नहीं, मन्त्र से भी नहीं, लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं। मन्त्र याद है न ?"

"हाँ, आर्य !"

"थोड़ी देर बाद बिना किसी के बुलाए निडर होकर आ जाना, भला !"

"हाँ, आर्य !"

बाबा के चले जाने के बाद मैंने सोचने का अवसर पाया। यह कहाँ आ फँसा है। बाबा की बातों का मतलब क्या है ? महामाया यदि स्वयं उलझी हुई हैं तो उनके प्रसाद को निष्ठापूर्वक क्यों ग्रहण करूँ ? पर बाबा ने तो ऐसा ही आदेश दिया है। बाबा के प्रभाव से मैंने जो कुछ देखा, वह क्या सत्य है ? भट्टिनी इस समय निरापद हैं न ? निपुणिका की क्या अवस्था है ? क्या मैं भट्टिनी की ही पूजा का अधिकारी हूँ ? कैसा आश्चर्य है ! इतनी सीधी बात मेरे मन में इतनी हलचल क्यों पैदा कर रही है ? मुझे फिर एक बार ऐसा लगा कि चक्कर आ जाएगा। बाबा का मन्त्र थोड़ी देर तक जपते रहने में ही कल्याण था। मैं निष्ठापूर्वक जपने लगा।

* * *

महामाया भैरवी मेरी ओर उत्सुकताभरी दृष्टि से देखती रहीं। मैंने अपने चारों ओर एक बार ध्यान से देखा। महामाया के अतिरिक्त वहाँ और कोई नहीं था, यहाँ तक कि कारण-पात्र और करवीर-पुष्प का एक छोटा दल भी वहाँ नहीं था। मैंने विनीत भाव से पूछा, "मातः, आर्य अघोरभैरव कहाँ गए ? और वे दोनों साधक कहाँ चले गए ?"

महामाया ने संक्षेप में उत्तर दिया – "सब लोग अपने-अपने आश्रमों में चले गए। मैं भी जाऊँगी। बाबा की आज्ञा थी कि तुम्हें प्रसाद दे लूँ, इसीलिए अब तक रुकी हुई थी।"

"वे लोग अब इधर नहीं आएँगे क्या ?"

"वैशाख की अमावस्या से पहले नहीं।"

"बाबा भी नहीं ?"

"बाबा सिद्ध अवधूत हैं, उनका कुछ ठीक-ठिकाना नहीं है। आ भी सकते हैं, नहीं भी आ सकते हैं। उनका पाना तुम्हारे परम पुण्यों का परिणाम है।"

"एक बात पूछूँ, माता ?"

"पूछो।"

"बाबा ने कल मुझसे जो कुछ कहा, उसका क्या अभिप्राय है ?"

"बाबा से अधिक मैं क्या बता सकती हूँ।"

"प्रवृत्तियों की पूजा करने का क्या तात्पर्य हो सकता है ?"

"बाबा ने क्या कहा है ?"

"बाबा ने कहा है कि प्रवृत्तियों से डरना भी गलत है, उन्हें छिपाना भी ठीक नहीं और उनसे लज्जित होना बालिशता है। फिर उन्होंने कहा है कि त्रिभुवन-मोहिनी ने जिस रूप में तुझे मोह लिया है, उसी रूप की पूजा कर, वही तेरा देवता है। फिर विरतिवज्र से उन्होंने कहा – इस मार्ग में शक्ति के बिना साधना नहीं चल सकती। ऐसी बहुत-सी बातें उन्होंने बताईं जो अश्रुतपूर्व थीं। क्यों अम्ब, शक्ति क्या स्त्री को कहते हैं ? और स्त्री में क्या सचमुच त्रिभुवन-मोहिनी का वास होता है ?"

"देख बाबा, तू व्यर्थ की बहस करने जा रहा है। बाबा ने जो कुछ कहा है वह पुरुष का सत्य है। स्त्री का सत्य ठीक वैसा ही नहीं है।

"उसका विरोधी है, मातः ?"

"पूरक है रे ! पूरक अविरोधी हुआ करता है !"

"मैं समझ नहीं सका।"

"समझ जाएगा, तेरे गुरु प्रसन्न हैं, तेरी कुण्डलिनी जाग्रत् है, तुझे कौल-अवधूत का प्रसाद प्राप्त है, उतावला न हो। इतना याद रख कि पुरुष वस्तु-विच्छिन्न भावरूप सत्य में आनन्द का साक्षात्कार करता है, स्त्री वस्तु-परिगृहीत रूप में रस पाती है। पुरुष निःसंग है, स्त्री आसक्त; पुरुष निर्द्वन्द्व है, स्त्री द्वन्द्वोन्मुखी; पुरुष मुक्त है, स्त्री बद्ध। पुरुष स्त्री को शक्ति समझकर ही पूर्ण हो सकता है; पर स्त्री, स्त्री को शक्ति समझकर अधूरी रह जाती है।"

"तो स्त्री की पूर्णता के लिए पुरुष को शक्तिमान मानने की आवश्यकता है न, अम्ब ?"

"ना। उससे स्त्री अपना कोई उपकार नहीं कर सकती, पुरुष का अपकार कर सकती है। स्त्री प्रकृति है। वत्स, उसकी सफलता पुरुष को बाँधने में है, किन्तु सार्थकता पुरुष की मुक्ति में है।" मैं कुछ भी नहीं समझ सका। केवल आँखें फाड़-फाड़कर महामाया की ओर देखता रहा। वे समझ गईं कि मैंने कहीं मूल में ही प्रमाद किया है। बोलीं, "नहीं समझ सका न ? मूल में ही प्रमाद कर रहा है, भोले ! तू क्या अपने को पुरुष समझ रहा है और मुझे स्त्री ? यही प्रमाद है। मुझमें पुरुष की अपेक्षा प्रकृति की अभिव्यक्ति की मात्रा अधिक है, इसलिए मैं स्त्री हूँ। तुझमें प्रकृति की अपेक्षा पुरुष की अभिव्यक्ति अधिक है, इसलिए तू पुरुष है। यह लोक ही प्रज्ञप्तिप्रज्ञा है, वास्तव सत्य नहीं। ऐसी स्त्री प्रकृति नहीं है, प्रकृति का अपेक्षाकृत निकटस्थ प्रतिनिधि है और ऐसा पुरुष प्रकृति का दूरस्थ प्रतिनिधि है। यद्यपि तुझमें तेरे ही भीतर के प्रकृति-तत्त्व की अपेक्षा पुरुष-तत्त्व अधिक है; पर वह पुरुष-तत्त्व मेरे भीतर के पुरुष-तत्त्व की अपेक्षा अधिक नहीं है। मैं तुझसे अधिक निःसंग, अधिक निर्द्वन्द्व और अधिक मुक्त हूँ। मैं अपने भीतर की अधिक मात्रावाली प्रकृति को अपने ही भीतरवाले पुरुष-तत्त्व से अभिभूत नहीं कर सकती। इसलिए मुझे अघोरभैरव की आवश्याकता है। जो कोई भी 'पुरुष' प्रज्ञप्तिवाला मनुष्य मेरे विकास का साधन नहीं हो सकता।"

"और अघोरभैरव को आपकी क्या आवश्यकता है ?"

"मुझे मेरी ही अन्तःस्थिता प्रकृति रूप में सार्थकता देना। वे गुरु हैं, वे महान हैं, वे मुक्त हैं, वे सिद्ध हैं। उनकी बात अलग है।"

सप्तम उच्छवास

आज छोटे राजकुल का अन्तःपुर मौन है। आज उसके क्रीड़ापर्वत पर सुन्दरियाँ अपनी वलय-ध्वनि से उन्मद मयूरों को नहीं नचा रही होंगी। आज उसके क्रीड़ा-सरोवर के मृदंग ने वक्रवाक-दम्पति को अकारण उत्कण्ठित नहीं किया होगा। आज अन्तःपुर की कुट्टिमभूमि पादालक्तकों से लाल नहीं बन सकी होगी। आज 'भित्तियाओं' के अंगहारों ने महोत्सव को मंगलकलश से सुसज्जित-सा नहीं कर दिया होगा। आज चंचल चक्षुओं की किरणों से सारा दिन कृष्ण-सार मृगों से परिपूर्ण की भाँति नहीं दिखेगा, भुज-लताओं के विक्षेप से जीवलोक मृणाल-वलय से वलयित नहीं जान पड़ेगा, शिरीष-कुसुम के स्तवकों के कर्णपूरों से अन्तःपुर की धूप शुक-पिच्छ के रंग में नहीं रँगी होगी, शिथिल धम्मिल्ल से चुए हुए तमाल-पत्रों ने अन्तरिक्ष को कज्जलायमान नहीं किया होगा, आभरणों के रणत्कार ने दिशाओं में किंकणी नहीं बाँध दी होगी। छोटे राजकुल का अन्तःपुर आज न जाने कैसी भीति और आशंका का शिकार बना होगा। नाना देशों की अपहृता, लांछिता अन्तःपुरिकाएँ वर्ष में एक दिन आनन्द का उत्सव मनाती हैं; हाय, आज वह भी बंद होगा। मैंने एक भट्टिनी का उद्धार किया है सही; पर मुझे क्या मालूम है कि इस अन्तःपुर में और कितनी भट्टिनियाँ हैं। और ऐसे अन्तःपुरों की संख्या यहीं तो समाप्त नहीं हो जाती। अभी जो उच्छृंखल नृत्य देख आया हूँ और यहाँ जो भयंकर भीति-भाव लक्ष्य कर रहा हूँ, इन दोनों ही

दशाओं में आपाततः कितना प्रभेद है; पर सत्य यह है कि दोनों ही जगह इस सृष्टि की सबसे बहुमूल्य वस्तु अपमानित हो रही है। क्यों ऐसा हो रहा है ? क्या स्त्रियों ने स्वयं यह जाल बुना है और अब स्वयं उलझ गयी हैं ? मैं जिस रास्ते पर जा रहा हूँ, वहाँ से कोई मदोन्मत्त उत्सवकारी दल निकल गया है। कालिदास ने उज्जयिनी में प्रातःकाल जो दृश्य देखा था, वह मैं स्थाण्वीश्वर में मध्याह्न को देख रहा हूँ। ठीक उसी प्रकार गमन के उत्कम्पवश यहाँ भी सुन्दरियों के केश से मन्दार-पुष्प झड़े हुए हैं, कान से सुनहरे कमल खिसककर भू-लुण्ठित हो रहे हैं; हृदय-देश पर बार-बार आघात करनेवाले हारों से बड़े-बड़े गन्धराज-कुसुम टूटकर गिर गए हैं, परन्तु फिर भी मैं इसे प्रेमाभिसार का मार्ग नहीं समझ रहा हूँ।[8] इस रास्ते से उल्लास और उन्माद चाहे गए हों, अनुराग और औत्सुक्य नहीं गए। यह सब क्यों हो रहा है ? यह क्या धर्म है ? क्या न्याय है ? मेरा चित्त कहता है कि कहीं-न-कहीं मनुष्य-समाज ने अवश्य गलती की है। यह उन्मत्त उत्सव, ये रसिक गान, ये शृंगक-सीत्कार, ये अबीर-गुलाल, ये चर्चरी और पटह मनुष्य की किसी मानसिक दुर्बलता को छिपाने के लिए हैं, ये दुःख भुलानेवाली मदिरा हैं, ये हमारी मानसिक दुर्बलता के पर्दे हैं। इनका अस्तित्व सिद्ध करता है कि मनुष्य का मन रोगी है, उसकी चिन्ताधारा आविल है, उसका पारस्परिक सम्बन्ध दुःखपूर्ण है। मेरा मन इस दुर्वह चिन्ताभार को ढोने में असमर्थ होता जा रहा था। शायद और थोड़ी देर रुकता, तो मैं चिल्ला उठता। चिन्ता के उत्कट वेग ने मेरे पैरों में चंचलता ला दी। मैं क्षिप्र गति से आगे बढ़ने लगा। नगर के राजपथ में उत्सव का वेग मन्द पड़ गया था।

* * *

मैं जब कुमार कृष्णावर्द्धन के द्वार पर पहुँचा, तो मध्याह्न हो चुका था, सूर्यातप तीक्ष्ण हो चुका था और आकाशमण्डल भी थककर शिथिल-गात्र हो चुका था। कुमार मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैंने जब उन्हें अपने आने का संवाद दिया तो वे स्वयं बाहर आ गए और प्रेमपूर्वक भीतर ले गए।

* * *

कुमार ने ज़रा व्यथित स्वर में कहा, "आज सायंकाल तुम्हें यहाँ से चल देना होगा, भट्ट ! राजनीति भुजंग से भी अधिक कुटिल है, असिधारा से भी अधिक दुर्गम है, विद्युत-शिखा से भी अधिक चंचल है। तुम्हारा और भट्टिनी का यहाँ तब तक रहना उचित नहीं है, जब तक अनुकूल अवसर न आ जाए। तुमने कल अपने को देवपुत्र-नन्दिनी का अभिभावक कहा था। तुम निश्चय ही इस महान उत्तरदायित्व के योग्य हो; परन्तु तुम्हें मालूम नहीं कि इस पद को पाकर तुमने अपने को राजनीति के कैसे आवर्त्त-संकुल तरंग में छोड़ दिया है। तुम्हारे मनोविकार बहुत स्पष्ट होते हैं, क्योंकि तुममें अशुचि कूटनीति का लेश भी नहीं है; पर तुम्हें अपने को देवपुत्र-नन्दिनी का उत्तम अभिभावक बनाना है। तुम झूठ से शायद घृणा करते हो, मैं भी करता हूँ; परन्तु जो समाज-व्यवस्था झूठ को प्रश्रय देने के लिए ही तैयार की गई है, उसे मानकर अगर कोई कल्याण-कार्य करना चाहो, तो तुम्हें झूठ का ही आश्रय लेना पड़ेगा। सत्य इस समाज-व्यवस्था में प्रच्छन्न होकर वास कर रहा है। तुम उसे पहचानने में भूल न करना। इतिहास साक्षी है कि देखी-सुनी बात को ज्यों-का-त्यों कह देना या मान लेना सत्य नहीं है। सत्य वह है जिससे लोक का आत्यन्तिक कल्याण होता है। ऊपर से वह जैसा भी झूठ क्यों न दिखाई देता हो, वही सत्य है।[9] तुम्हें

देवपुत्र-नन्दिनी की सेवा इसलिए नहीं करनी है कि देवपुत्र-नन्दिनी तुम्हारी दृष्टि में पूज्य और सेव्य हैं, बल्कि इसलिए कि उनकी सेवा द्वारा तुम लोक का आत्यन्तिक कल्याण करने जा रहे हो। मैं तुमसे आशा रखता हूँ कि उचित अवसर पर तुम न तो झूठ से झल्ला उठोगे और न ऐसे झूठ के बोलने में हिचकोगे ही , जिससे समग्र मनुष्य जाति उपकृत होती हो।" कुमार ने इतना लम्बा उपदेश देने के बाद एक बार खाँसकर गला साफ कर लिया। अपने को इस प्रकार श्रेष्ठ ज्ञानी के रूप में उपस्थित करने के कारण वे स्वयं ही कुछ लज्जित हो गए। मानो अपनी लज्जा को कुछ धो डालने के लिए ही वे फिर बोले, "मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसको ठीक-ठीक समझ रहे हो न, भट्ट ? लोक-कल्याण प्रधान वस्तु है। वह जिससे सधता हो, वही सत्य है। आचार्य आर्यदेव ने सबसे बड़े सत्य को भी सर्वत्र बोलने का निषेध किया है। औषध के समान अनुचित स्थान पर प्रयुक्त होने पर सत्य भी विष हो जाता है।[10] हमारी समाज-व्यवस्था ही ऐसी है कि उसमें सत्य अधिकतर स्थानों में विष का काम करता है। मैंने न 'हाँ' किया, न 'ना' किया। केवल आश्चर्य के साथ उनकी ओर देखता रहा। कुमार को इस बात पर ग्लानि हुई कि वे मुझे अपनी बात ठीक-ठीक नहीं समझा सके। उनका मुख-मण्डल उपरागग्रस्त चन्द्र-मण्डल की भाँति म्लान हो गया। मुझे भी उनका भाव देखकर क्लेश हुआ। मैंने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया – "मैं कुमार की आज्ञा पालन करने का प्रयत्न करूँगा।"

अष्टम उच्छवास

निपुणिका ने एक बार फिर मेरे अभिमान को धक्का मारा। मैं इसके लिए बिलकुल तैयार नहीं था। किसी दुखी मनुष्य को आश्वासन देते समय मनुष्य कुछ बढ़ाकर बोलता ही है। मैं भी शायद मर्यादा अतिक्रम कर गया था; पर निपुणिका को इस प्रकार आघात नहीं पहुँचाना चाहिए था। मैं क्षण-भर के लिए ग्लान हो गया। मैं अपनी ही दृष्टि में कुछ गिर गया। सायंकालीन शिरीषपत्र के समान मेरी आँखें अपने-आप झपक गईं, धक्का खाए हुए शम्बूक (घोंघे) की भाँति मेरा मुख अपने-आपमें ही सिकुड़कर मानो छिप गया। पर यह अवस्था अधिक देर तक नहीं रही। मेरे आहत अभिमान ने मुझे उद्धत बना दिया। मैं कुछ उत्तेजित होकर कहना ही चाहता था कि भट्टिनी बीच ही में बोल उठीं। मेरा ग्लान मुख देखकर उन्हें मेरे ऊपर दया आई होगी। उन्होंने निपुणिका को मृदु भाव से डाँटते हुए कहा, "छिः निउनिया, तू क्यों ऐसा कह रही है ? भट्ट पर मेरा पूर्ण विश्वास है। कवित्व की शक्ति तू नहीं जानती। भट्ट कवि हैं। वे स्वयं नहीं जानते कि वे क्या हैं ! तो क्या हमें भी भूल जाना चाहिए कि वे कितने महान् हैं ? सेवक मेरे पहले भी थे; पर ऐसा देवोपम अभिभावक मुझे पहले नहीं मिला था। तू शायद प्रतिज्ञा के सफल होने को बड़ी चीज समझती है। ना बहिन, प्रतिज्ञा करना ही बड़ी चीज है। और देखो, भट्ट, महावराह की ही मुझे आशा है। महावराह ने ही तुम्हें मेरे पास भेजा है। महावराह ही चाहेंगे, तो वे मेरे पिता से भी मुझे मिला देंगे। उनकी ही इच्छा प्रधान है, हम-तुम तो यन्त्र-मात्र हैं। वे जो चाहेंगे, वही होगा। उदासी और प्रसन्नतता, हँसी और रुलाई, सब उन्हीं का प्रसाद है। मनुष्य क्या कर सकता है !"

* * *

थोड़ी देर चुप रहने के बाद भट्टिनी निपुणिका की ओर फिरीं। उनकी आँखों से आँसू का निर्झर बह रहा था। भट्टिनी बोलीं, "रो मत निउनिया, मैं बहुत रो चुकी हूँ। नगरहार से पुरुषपुर, पुरुषपुर से जालन्धर और फिर और न जाने कहाँ-कहाँ मुझे दस्युओं के साथ घूमना पड़ा और अन्त में स्थाण्वीश्वर के छोटे राजकुल में आश्रय मिला। जिस दिन नगरहार के मार्ग में दस्युओं ने इस अभागे शरीर का स्पर्श किया, उस दिन तक मुझे देवपुत्र की कन्या होने का अभिमान था। मैं एक मास तक अपने पिता का नाम ले-लेकर रोती रही। बाद में मुझमें से वह अभिमान चला गया। आज भगवान् की बनाई और लाखों कन्याओं की भाँति मैं भी एक मनुष्य-कन्या हूँ। उन्हीं की भाँति सुख-दुःख का पात्र मैं भी हूँ। उन्हीं की भाँति मेरा जन्म भी अपनी सार्थकता के लिए नहीं है। मेरा अहंकार मर चुका है। अभिमान नष्ट हो गया है, कौलीन्यगर्व विलुप्त हो चुका है। मैं घर्षिता, अपमानिता, कलंकिनी, सौ-सौ मानवियों की भाँति सामान्य नारी हूँ। जगत् के दुःख प्रवाह में फेन-बुद्बुद् के समान मैं भी नष्ट हो जाऊँगी और प्रवाह अपनी मस्तानी चाल से चलता जाएगा। माता से मैंने बौद्ध दुःखवाद का भाव पाया है और पिता से भागवत अनुकम्पा का। मेरे ऊपर महावराह की करुणा है, यही एकमात्र सुख है, और इसी करुणा ने मुझे तुमसे और भट्ट से मिलाया है। ना निउनिया, रोने से क्या होता है ! मैं आज भी अपनी रुलाई रोक नहीं सकती; परन्तु तू उसे सामयिक आवेग समझ। मैं सबकुछ भूल जाने की साधना कर रही हूँ। पिता से क्या फिर मिलना होगा ? महावराह ही जानें, हम क्यों चिन्ता करें ?"

* * *

मैंने अनुभव किया कि शिराओं में सर्वत्र कुछ कर गुजरने की उमंग है; पर करना क्या है ? संसार में यह विकट घृणित दृश्य पहली बार नहीं दिखाई दिया है, यहीं इसकी समाप्ति भी नहीं है। बाणभट्ट जितना भी चिन्तित और उत्तेजित क्यों न हो, यह घिनौना दृश्य संसार में बार-बार दिखाई देगा। महापुरुषों ने करुणा और मैत्री के अनेक उपदेश दिए हैं, भ्रातृभाव और जीव-दया के बहुत ग्रन्थ लिखे हैं, पर उन्हें सफलता नहीं मिली है। मैं निराशा से कातर हो उठा हूँ। क्या यह कभी बंद नहीं होगा? क्या संसार की सबसे बहुमूल्य वस्तु इसी प्रकार अपमानित होती रहेगी ? मेरा मन कहता था कि जब तक राज्य रहेंगे, सैन्य-संगठन रहेंगे, पौरुष-दर्प का प्राचुर्य रहेगा, तब तक यह होता ही रहेगा। परन्तु क्या कभी यह भी सम्भव है कि मानव-समाज में राज्य न हों, सैन्य-संगठन न हों, सम्पत्ति-मोह न हो ? मैं कोई उत्तर खोज नहीं पा रहा था। इसी समय मैंने पीछे फिरकर देखा, निपुणिका खड़ी है। उस समय वह प्रकृतस्थ हो गई थी।

नवम उच्छवास

ठीक इसी समय धम्म-से आवाज हुई। निपुणिका चिल्ला उठी – "भट्ट, बचाओ, बचाओ।" और वह स्वयं भी नदी में कूद पड़ी। मैं कुछ समझ नहीं सका। नीचे आकर देखता हूँ तो भट्टिनी और निपुणिका पानी में डूब रही हैं। क्षण-भर में मैंने अपना कर्त्तव्य निर्णय कर लिया और पानी में कूद पड़ा। निपुणिका ने चिल्लाकर कहा, "मुझे छोड़ो, भट्टिनी को सँभालो। उधर देखो, उधर।" मैं भट्टिनी की ओर लपका। एक क्षण का विलम्ब हुआ होता, तो भट्टिनी गंगा के तल में होतीं। मुझमें न जाने कहाँ से अद्भुत शक्ति आ गई थी। भट्टिनी को मैंने पकड़

लिया और अपनी पीठ पर डाल लिया। मुझे ऐसा लगा कि भट्टिनी काफी पानी पी चुकी हैं। वे अवश हो गई थीं और बहुत भारी लग रही थीं। फिर भी मैं उन्हें लेकर नाव की ओर लौटने की कोशिश करने लगा। परन्तु नाव पीछे छूट गई थी। मल्लाह और सैनिक मिलकर शत्रुओं से जूझ रहे थे। नाव को देखने की फुरसत किसी को नहीं थी। धारा के विरुद्ध मैं देर तक नहीं जूझ सका। लाचार होकर धारा के अनुकूल बहने लगा। एक बार मुझे लगा कि भट्टिनी को अपने पीठ पर देर तक नहीं ढो सकूँगा। मेरा शरीर क्रमशः क्लान्त होता जा रहा था। कहीं ऐसा न हो कि क्लान्ति के कारण मैं शिथिल हो जाऊँ और भट्टिनी मेरी पीठ से खिसक जाएँ। मैंने अपने उत्तरीय से भट्टिनी को कसकर बाँधना चाहा। जब उत्तरीय भट्टिनी की भुजाओं में लपेटने लगा, तो कुछ कठोर वस्तु का अनुभव हुआ। खींचकर देखता हूँ, तो महावराह की मूर्त्ति है! हाय 'जलौघमग्ना सचराचर धरा' के उद्धारकर्त्ता आज अपने भक्त को ही डुबा रहे हैं, यह कैसी विषम विडम्बना है! भट्टिनी इस मूर्त्ति के कारण ही भारी लग रही थीं, और निरन्तर जो डूबती जा रही थीं, सो भी इसी के कारण। अवधूत का प्रश्न आज मूर्त्तिमान होकर सामने आया, 'किये बचाऊँ – भट्टिनी को या महावराह को?' अवधूत की क्रुद्ध मुद्रा याद आई – 'मूर्ख, तू महावराह को बचाएगा? सचमुच ही तो, इस महामहिमाशाली उद्धारकर्त्ता को बचा लेने का संकल्प क्या स्पर्धा नहीं है? हे 'जलौघमग्ना सचराचरा धरा' के उद्धारकर्त्ता, तुमसे अधिक चिन्ता मुझे तुम्हारे भक्त की है, अविनय क्षमा हो, मैं तुम्हें गंगा की पवित्र धारा में विसर्जन कर रहा हूँ। मेरे सामने अवधूत बाबा अघोरभैरव की प्रसन्न मूर्त्ति खेल गई। ऐसा लगा कि वे प्रेमपूर्वक डाँट रहे हैं। 'फिर झूठ बोलता है जन्म का पातकी, कर्म का अभागा, मिथ्यावादी पाषण्ड! महावराह को बचाएगा तू! दम्भी!' मैं कुछ लज्जित-सा हो रहा। फिर ऐसा लगा कि वे स्नेहपूर्वक कह रहे हैं: 'देख बाबा, इस ब्रह्माण्ड का प्रत्येक अणु देवता है; त्रिपुरसुन्दरी ने जिस रूप में तुझे सबसे अधिक प्रभावित किया है, उसी की पूजा कर!' फिर महावराह की मूर्त्ति मेरे हाथ से खिसक गई। अघोरभैरव की मूर्त्ति आकाश की ओर ऊपर उठने लगी। वह दूर से दूरतर होती गई। मेरी नाड़ी में रक्त का स्रोत क्षीण भाव से बहने लगा, भुजाएँ शिथिल होने लगीं, आँखों के सामने अन्धकार छा गया। सिर्फ दूर से बादलों को चीरकर एक आवाज कानों में प्रवेश करती रही: 'किसी से न डरना, गुरु से भी नहीं, मन्त्र से भी नहीं, लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं।' मेरी सारी चेष्टा अवसन्न हो गई, केवल चेतना पर मृदु आघात-सा करता हुआ वह अदृश्य शब्द आकाश में विलीन होते-होते भी बना रहा। अवधूत की मूर्त्ति और ऊपर उठी – नक्षत्र-मण्डल के भी ऊपर, और भी ऊपर, और भी ....।

एकादश उच्छवास

मायामाया ने मेरे ललाट पर हाथ फेरते हुए कहा, "मुझे आश्चर्य होता है कि भट्ट किस प्रकार सम्मोहन का शिकार हो गया। इसकी कुल-कुण्डलिनी जाग्रत् है, इसे अवधूत गुरु का प्रसाद प्राप्त है। देख बिटिया, भट्ट की मनोगमा पाँचों नाड़ियाँ अब पूर्ण स्वस्थ हैं। यह देख, कल्पिका है, इससे संकल्प होता है; यह विकल्पिका है, इससे मन में विकल्प होते हैं; यह स्थीवा है, इससे जड़ता आती है; यह मूर्च्छना है, इससे मूर्च्छा होती है; और यह मन्या है, इससे मननशक्ति प्राप्त होती है। भट्ट की स्थीवा कमजोर है। अब ठीक हो जाएगी। मगर अद्भुत शक्ति है निपुणिका की नाड़ियों में। एक बात बताऊँ बेटी, निपुणिका महामाया-स्वरूप है, उसे सामान्य नारी न समझ। सम्मोहन का प्रतिप्रसव बड़ा कठिन होता है, बेटी! प्रथम बार मैं दस पल भी नहीं सम्हाल सकी थी। उफ!"

महामाया मानो कुछ भूली हुई बात सोचने लगीं। फिर एकाएक बोलीं, "आज तो मुझे जाना होगा बेटी, अक्षय तृतीया में तो अब अधिक देर नहीं है। यहाँ तुझे कोई भय नहीं है। लोरिकदेव बड़ा धार्मिक सामन्त है। तुझे कोई कष्ट नहीं होगा। क्या कहती है, जाऊँ न ?"

भट्टिनी ने दृढ़ता के साथ संक्षेप में उत्तर दिया – "ना !"

महामाया गुनगुनाती हुई मानो अपने-आपसे ही बोलीं, "फिर माया के कंचुक में कसी जा रही हूँ। त्रिपुरभैरवी, तुम्हारी लीला अपरम्पार है। काल, नियति, राग, विद्या और कला माया के कंचुक है; पर सत्य हैं। इन्हें अतिक्रमण कौन कर सकता है ? त्रिपुरसुन्दरी की लीला है !"

भट्टिनी ने चिन्तित होकर कहा, "मैं तप में विघ्न पैदा कर रही हूँ, माता ?"

महामाया ने स्नेहपूर्वक कहा, "ना रे, ना ! मैं विघ्नों की पूजा का ही तो तप कर रही हूँ। विघ्न ही तो मेरे उपास्य हैं। तेरे शास्त्रों के अनुसार तू भी तो एक विघ्न ही है। विधाता ने विघ्न के रूप में ही तो सुन्दरियों की सृष्टि की थी। क्यों रे, तू अपने को किसी का विघ्न नहीं समझती ?"

भट्टिनी ने सहज भाव से उत्तर दिया, "तुम्हारे ही लिए क्या विघ्न नहीं बन रही हूँ?"

"मेरे लिए ? नहीं, मैं स्वयं विघ्नरूपा हूँ। ना, तू नहीं समझेगी।"

"तो नारी का जन्म विघ्न के लिए हुआ है, माता ?"

"इतिहास तो यही कहता है रे ! पुरुषों के समस्त वैराग्या के आयोजन, तपस्या के विशाल मठ, मुक्ति-साधना के अतुलनीय आश्रय नारी की एक बंकिमदृष्टि में ही तो ढह गए हैं। क्या यह दृष्टि सत्यानाशिनी नहीं है?"

थोड़ी देर तक निस्तब्धता रही। ऐसा जान पड़ा, भट्टिनी हार गई हैं। महामाया के प्रश्न का प्रतिवाद करने के लिए मेरा रोम-रोम उद्बुद्ध हो गया, मेरी सारी सत्ता प्रत्याख्यान के लिए आलोड़ित हो गई; परन्तु मैं वैसे ही अवश पड़ा रहा। भट्टिनी के सामने मेरी धृष्टता प्रकट हो, यह बात मैं सोच भी नहीं सकता था। महामाया ने ही फिर शुरू किया – "तो तू मेरी बात नहीं मानती। हाँ बेटी, नारीहीन तपस्या संसार की भद्दी भूल है। यह धर्म-कर्म का विशाल आयोजन, सैन्य-संगठन और राज्य-व्यवस्थापन सब फेन-बुद्बुद की भाँति विलुप्त हो जाएँगे; क्योंकि नारी का इसमें सहयोग नहीं है। यह सारा ठाठ-बाट संसार में केवल अशान्ति पैदा करेगा।"

भट्टिनी ने चकित की भाँति प्रश्न किया – "तो माता, क्या स्त्रियाँ सेना में भरती होने लगें, या राजगद्दी पाने लगें, तो यह अशान्ति दूर हो जाएगी ?"

महामाया हँसीं। बोलीं, "सरला है तू, मैं दूसरी बात कह रही थी। मैं पिण्डनारी को कोई महत्त्वपूर्ण वस्तु नहीं मानती। तुम्हारे इस भट्ट ने भी मुझसे पहली बार इसी प्रकार प्रश्न किया था। मैं नारी-तत्त्व की बात कह रही हूँ रे! सेना में अगर पिण्ड-नारियों का दल भरती हो भी जाए तो भी जब तक उसमें नारी-तत्त्व की प्रधानता नहीं होती, तब तक अशान्ति बनी ही रहेगी।"

मेरी आँखें बंद थीं, खोलने का साहस मुझमें नहीं था। परन्तु मैं कल्पना के नेत्रों से देख रहा था कि भट्टिनी के विशाल नयन आश्चर्य से आकर्ण विस्फारित हो गए हैं। ज़रा आगे झु ककर उन्होंने कहा, "मैं नहीं समझी।"

महामाया ने दीर्घ निःश्वास लिया। फिर थोड़ा सम्हलकर बोलीं, "परम शिव से दो तत्त्व एक ही साथ प्रकट हुए थे – शिव और शक्ति। शिव विधिरूप है और शक्ति निषेधरूपा। इन्हीं दो तत्त्वों के प्रस्पन्द-विस्पन्द से यह संसार आभासित हो रहा है। पिण्ड में शिव का प्राधान्य ही पुरुष है और शक्ति का प्राधान्य नारी है। तू क्या इस मांस-पिण्ड को स्त्री या पुरुष समझती है? ना सरले, यह जड़ मांस-पिण्ड न नारी है, न पुरुष! वह निषेधरूप तत्त्व ही नारी है। निषेधरूप तत्त्व, याद रख। जहाँ कहीं अपने-आपको उत्सर्ग करने की, अपने-आपको खपा देने की भावना प्रधान है, वहीं नारी है। जहाँ कहीं दुःख-सुख की लाख-लाख धाराओं में अपने को दलित द्राक्षा के समान निचोड़कर दूसरे को तृप्त करने की भावना प्रबल है, वहीं 'नारी-तत्त्व' है, या शास्त्रीय भाषा में कहना हो, तो 'शक्ति-तत्त्व' है। हाँ रे, नारी निषेधरूपा है। वह आनन्द-भोग के लिए नहीं आती, आनन्द लुटाने के लिए आती है। आज के धर्म-कर्म के आयोजन, सैन्य-संगठन और राज्य-विस्तार विधि-रूप हैं। उनमें अपने-आपको दूसरों के लिए गला देने की भावना नहीं है, इसीलिए वे एक कटाक्ष पर ढह जाते हैं, एक स्मित पर बिक जाते हैं। वे फेन-बुद्बुद की भाँति अनित्य हैं। वे सैकतसेतु की भाँति अस्थिर हैं। वे जल-रेखा की भाँति नश्वर हैं। उनमें अपने-आपको दूसरों के लिए मिटा देने की भावना जब तक नहीं आती, तब तक वे ऐसे ही रहेंगे। उन्हें जब तक पूजाहीन दिवस और सेवाहीन रात्रियाँ अनुतप्त नहीं करतीं और जब तक निष्फल अर्घ्यदान उन्हें कुरेद नहीं देता, तब तक उनमें निषेधरूपा नारी तत्त्व का अभाव रहेगा और तब तक वे केवल दूसरों को दुःख दे सकते हैं।" महामाया थोड़ा रुकीं। वे कुछ भावाविष्ट की अवस्था में थीं। तनिक विश्राम करने के बाद वे सम्हल गईं। उन्हें रोगी के सिरहाने बैठकर देर तक बोलते रहने से कुछ ग्लानि हुई। मेरी आँखों पर अंगुली फेरते हुए उन्होंने मानो झेंप मिटाने के लिए ही कहा, "भट्ट अब स्वस्थ है। अभी जगेगा।"

त्रयोदश उच्छवास

सुचरिता नीचे से ऊपर तक एक शुभ्र कौशेय वस्त्र से समावृत थी। उसका मुख गुरु की ओर था, इसलिए दूर से मैं ठीक-ठीक नहीं देख सका। उसका शरीर बहुत पतला था और श्वेत वस्त्र से आच्छादित होने के कारण नारायण की स्मितरेखा के समान दिखाई दे रहा था। उसकी प्रत्येक क्रिया में एक प्रकार का गौरव था। प्रदीपन्यास संकल्प पठित हो जाने के बाद उसने कलश पर उसे सहज ही नहीं रख दिया। उसने बड़ी सुकुमार भंगी से प्रदीप को उठाया, वाम करतल को त्रिपताक मुद्रा से मुद्रित किया और प्रदीप के ऊपर उसे दक्षिणामुख घुमाया। सबकुछ उसने अत्यन्त सहज भाव से किया। स्पष्ट ही जान पड़ता था कि दीर्घकाल के अभ्यास के कारण उसके हाथ स्वयं

घूम रहे थे। बाएँ हाथ से उसने आँचल खींचकर गले से लपेट लिया और भक्तिभाव से जानुओं के बल खड़ी हुई। गुरु की पूजा ही उसकी क्रिया का प्रधान अंग जान पड़ता था। गुरु के सामने कई बार प्रदीप घुमाने के बाद वह खड़ी हो गई और एक बार प्रदक्षिणा करके फिर उसी प्रकार जानुओं पर खड़ी हुई। प्रदक्षिणा के समय उसके हाथ बराबर प्रदीप को भी दक्षिणामुख घुमा रहे थे।

इसी समय मैं उसे अच्छी तरह देख सका। उसका रंग मैला था; परन्तु आँखों में अपूर्व माधुर्य था। अधरों पर स्वाभाविक हँसी खिलानेवाला वह धर्म, जिसे सौन्दर्यशास्त्री 'राग' कहते हैं, इस गम्भीर मुख-श्री में भी प्रत्यक्ष हो रहा था। उसकी प्रत्येक अंग-भंगिमा से भक्ति की लहर तरंगित हो रही थी; पर अनाड़ी भी समझ सकता था कि वह 'छायावती' रही होगी, क्योंकि उसकी प्रत्येक गति से वक्रिमता और परिपाटी-विहित शिष्टाचार प्रकट हो रहे थे। सहृदय लोग जिस रंजक गुण को 'सौभाग्य' कहते हैं, जो पुष्प-स्थित परिमल के समान रसिक भ्रमरों का आन्तरिक और प्राकृतिक वशीकरण धर्म है, वह सुचरिता के अपने हिस्से पड़ा था। शोभा और कान्ति उसके प्रत्येक अंग से निखर रही थी और प्रत्येक पदविक्षेप में औदार्य बिखर रहा था। मुझे तनिक भी सन्देह नहीं रहा कि वर्ण और प्रभा में कंजूसी करने पर भी अन्यान्य शोभा-विधायी धर्मों में विधाता का पक्षपात इस नारीरत्न के ऊपर ही रहा है। इधर की स्त्रियों में प्रक्षेप्य और आवेध्य अलंकारों का बड़ा प्रचलन है। परन्तु सुचरिता के कानों में एक चक्राकृति कुण्डल के सिवा और कोई भी आवेध्य अलंकार नहीं था और प्रक्षेप्य अलंकार तो उसने पहने ही नहीं थे – मंजीर, नूपुर या कनकमेखला, कुछ भी नहीं। आरोप्य अलंकारों पर उसकी विशेष रुचि जान पड़ती थी; परन्तु उनमें भी एक सुवर्ण-हार और एक मालतीमाला के सिवा कुछ नहीं दिखते थे। मालती-माला के लिए सम्भवतः सुचरिता का रंग ही उचित अलंकार था। मैंने कभी मालतीमाला को इतना मनोहर नहीं देखा। मुझे बार-बार वराहमिहिर की बात याद आती रही और मैं उनकी सहृदयता पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहा। उन्होंने ठीक ही कहा है, स्त्रियाँ ही रत्नों को भूषित करती हैं, रत्न स्त्रियों को क्या भूषित करेंगे! स्त्रियाँ तो रत्न के बिना भी मनोहारिणी होती हैं; परन्तु स्त्री का अंग-संग पाए बिना रत्न किसी का मन हरण नहीं करते।[11] आज यदि आचार्य वराहमिहिर यहाँ उपस्थित होते, तो और भी आगे बढ़कर कहते – धर्म-कर्म, भक्ति-ज्ञान, शान्ति-सौमनस्य कुछ भी नारी का संस्पर्श पाए बिना मनोहर नहीं होते – नारी-देह वह स्पर्श-मणि है, जो प्रत्येक ईंट-पत्थर को सोना बना देती है।

* * *

सुचरिता ने जब पाद्यअर्घ्य देकर मुझे आसन पर बैठाया, तो मैंने विनीत भाव से पूछा, "शुभे, मन में कुछ अन्यथा न समझो, तो एक बात जानना चाहूँगा।" सुचरिता ने प्रीति और उत्साह के साथ कहा, "मैं अज्ञ हूँ आर्य, पर कुछ सेवा करने योग्य हो तो उठा नहीं रखूँगी। क्या आज्ञा है ?" सुचरिता की बड़ी-बड़ी काली आँखें उत्सुकता से भर गईं। मैंने विनीत भाव से पूछा, "इस वासुदेव की मूर्त्ति के पूजन-आराधन के विषय में जानना चाहता हूँ। मैं आज संध्या से ही इस रहस्य को समझना चाहता हूँ देवि, पर मेरे मन में सन्देह-पर-सन्देह जमा होते जा रहे हैं, समाधान कुछ नहीं सूझता।" सुचरिता की आँखें एक विचित्र आनन्द-ज्योति से प्रदीप्त हो उठीं। बोली, "मैं भी नहीं समझती आर्य, परन्तु इतना जानती हूँ कि आज से तीन महीने पूर्व तक मैं अपने को पापलिप्त समझती थी। अब मेरे चित्त का वह विकल्प दूर हो गया है। आप मेरे गुरुदेव से इसका अर्थ पूछें, वे ठीक-ठीक बता सकेंगे।" सुचरिता

की बात का मैंने कोई उत्तर नहीं दिया, केवल आश्चर्य से उसकी ओर देखता रहा। थोड़ी देर तक वह अभिभूत-सी बैठी रही। फिर धीरे-धीरे बोली, "मानव-देह केवल दण्ड भोगने के लिए नहीं बनी है, आर्य ! यह विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि है। यह नारायण का पवित्र मन्दिर है। पहले इस बात को समझ गई होती, तो इतना परिताप नहीं भोगना पड़ता। गुरु ने मुझे अब यह रहस्य समझा दिया है। मैं जिसे अपने जीवन का सबसे बड़ा कलुष समझती थी, वही मेरा सबसे बड़ा सत्य है। क्यों नहीं मनुष्य अपने सत्य को अपना देवता समझ लेता, आर्य ?"

सुचरिता की आँखें नीचें झुकी हुई थीं। वह मेरे लिए आसन और आचमनीय आदि सजा रही थी। उसकी झुकी हुई आँखें और भी मनोरम मालूम हो रही थीं। सिर्फ एक बार उसने मेरी ओर आँख उठाकर देखा। मैं और भी सुनने को उत्सुक था। उसकी बातें मेरी समझ में एकदम नहीं आ रही थीं; परन्तु उसके प्रत्येक शब्द में एक ऐसी गुरुता थी कि मैं उसे गहन शास्त्रवाक्य की मर्यादा के साथ सुन रहा था। अपने प्रश्न का उत्तर वह नहीं चाहती थी। उत्तर उसे मिल चुका था। "यह प्रमाद है आर्य, कि यह शरीर नरक का साधन है। यही वैकुण्ठ है। इसी को आश्रय करके नारायण अपनी आनन्दलीला प्रकट कर रहे हैं। आनन्द से ही यह भुवन-मण्डल उद्भासित है। आनन्द से ही विधाता ने सृष्टि उत्पन्न की है। आनन्द ही उसका उद्गम है, आनन्द ही उसका लक्ष्य है। लीला के सिवा इस सृष्टि का और क्या प्रयोजन हो सकता है, आर्य ? हाय गुरो, पहले यह बात मुझे क्यों नहीं मालूम हुई !" – सुचरिता का प्रदीप्त मुख और भी उज्ज्वल हो गया। उसे कहने में आनन्द मिल रहा था; परन्तु उसका प्रत्येक शब्द मेरे लिए दुर्बोध्य था। मुझे ऐसा लग रहा था कि उसके शब्दों के अन्तराल में कुछ और है जो उसे गद्गद् बनाए हुए है।

चतुर्दश उच्छवास

महामाया ने क्षण-भर रुककर सभा की ओर देखा। उनकी आँखों से स्फुल्लिंग झड़ रहे थे। सभा उत्कर्ण होकर सुन रही थी। महामाया ने फिर सिंहिनी की भाँति गरजकर कहा, "अमृत के पुत्रो, मृत्यु का भय माया है, राजा से भय दुर्बल-चित्त का विकल्प है। प्रजा ने राजा की सृष्टि की है। संघटित होकर म्लेच्छवाहिनी का सामना करो। देवपुत्रों और महाराजाधिराजों की आशा छोड़ो। समस्त उत्तरापथ की लाज तुम्हारे हाथों में है। अमृत के पुत्रो, आर्य विरतिवज्र और आयुष्मती सुचरिता को बंदी बनाना, लाख-लाख निरीह ब्राह्मणों और श्रमणों की रक्षा के लिए नहीं हुआ है, वह महाराजाधिराज या उनके किसी आश्रित सामन्त की नाक बचाने के लिए हुआ है। यह पहला अन्याय नहीं है, अन्तिम भी नहीं होगा। यह दुर्वह सम्पत्तिमद का चिराचरित रूप है। इसके लिए न्याय की प्रार्थना व्यर्थ है। अमृत के पुत्रो, धर्म की रक्षा अनुनय-विनय से नहीं होती, शास्त्रवाक्यों की संगति लगाने से नहीं होती; वह होती है अपने को मिटा देने से। न्याय के लिए प्राण देना सीखो, सत्य के लिए प्राण देना सीखो, धर्म के लिए प्राण देना सीखो। अमृत के पुत्रो, मृत्यु का भय माया है !"

* * *

महामाया भीड़ को चीरती हुई तेजी से एक ऊँचे स्थान पर आकर खड़ी हो गई। विद्युच्छटा की भाँति उनका प्रकाश भीड़ में वक्ररेखा के रूप में उद्भासित हो उठा। उन्हें देखकर भीड़ ने जय-निनाद किया। त्रिशूल

उठाकर महामाया ने आज्ञा देने के स्वर में कहा, "अमृत के पुत्रो, शान्त होओ।" सारा जन-सम्मर्द मन्त्रमुग्ध-सा, अभिभूत-सा, यन्त्रित-सा, शान्त हो गया। महामाया ने फिर कहा, "अमृत के पुत्रो, संयम से काम लो। तुम्हारे विद्वान् नागरिकों ने महाराजाधिराज से न्याय पाने की आशा से प्रार्थी होने का संकल्प किया है। आज उन्हें अवसर दो। परन्तु अमृत के पुत्रो, न्याय पा जाने से समस्या समाहित नहीं हो जाती। दुर्द्धर्ष मलेच्छवाहिनी का सामना राजपुत्रों की वेतनभोगी सेना नहीं कर सकेगी। क्या ब्राह्मण और क्या चाण्डाल, सबको अपनी बहू-बेटियों की मान-मर्यादा के लिए तैयार होना होगा। मैं भविष्य देख रही हूँ। अमृत के पुत्रो, बड़ा दुर्घट काल उपस्थित है। राजाओं, राजपुत्रों और देवपुत्रों की आशा पर निश्चेष्ट बने रहने का निश्चित परिणाम पराभव है। प्रजा में मृत्यु का भय छा गया है, यह अशुभ लक्षण है। अगर तुम आर्यावर्त्त को बचाना चाहते हो, तो प्राण देने के लिए तत्पर हो जाओ। धर्म के लिए प्राण देना किसी जाति का पेशा नहीं है, वह मनुष्य-मात्र का उत्तम लक्ष्य है। अमृत के पुत्रो, न्याय जहाँ से भी मिले, वहाँ से बलपूर्वक खींच लाओ। यदि तुम नहीं समझते कि न्याय पाना मनुष्य का धर्मसिद्ध अधिकार है और उसे न पाना अधर्म है, तो भारतवर्ष का भविष्य अन्धकार से आच्छन्न है। अमृत के पुत्रो, म्लेच्छवाहिनी पहली बार नहीं आ रही है, अन्तिम बार भी नहीं आ रही है। तुम यदि आज तुवरमिलिन्द और श्रीहर्षदेव की आशा पर बैठे रहोगे, तो सम्भवतः आज यह विपत्ति टल जाए; परन्तु कल नहीं टलेगी। तुवरमिलिन्द और श्रीहर्षदेव सदा नहीं रहेंगे; परन्तु तुम्हें सदा रहना है। अमृत के पुत्रो, मैं भविष्य देख रही हूँ। राजा, महाराजा और सामन्त स्वार्थ के गुलाम बनते जा रहे हैं। प्रजा भीरु और कायर होती जा रही है। विद्वान् और शीलवान् नागरिकों की बुद्धि कुण्ठित होती जा रही है। धर्माचरण में इसीलिए व्याघात उपस्थित हुआ है कि राजा अन्धा है, प्रजा अन्धी है और विद्वान् अन्धे हैं। यह बड़ा अशुभ लक्षण है। अमृत के पुत्रो, मैं ऊर्ध्वबाहु होकर चिल्ला रही हूँ, यह अशुभ लक्षण है। अपने-आपको बचाओ, धर्म पर दृढ़ रहो, न्याय के लिए मरना सीखो, ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक एक हो जाओ – चट्टान की तरह दुर्भेद्य एक। यही बचने का उपाय है। अमृत के पुत्रो , राजपुत्रों की वेतनभोगी सेना भी आशा छोड़ो, मृत्यु का भय माया है।" – भीड़ मन्त्र-मुग्ध की भाँति सुनती रही।

* * *

सुचरिता अपनी कहानी सहज भाव से कहती जा रही थी; परन्तु यहाँ आकर उसके कण्ठ में थोड़ी-सी जड़िमा आ गई। चन्द्रमा की धवल ज्योतिर्धारा सीधे उसके मुख पर पड़ रही थी। उसका मुख उस श्वेत आवरण से जितना ही उद्भासित था, उतना ही आवृत भी। परन्तु इस बार जो लालिमा उसके मनोहर मुख पर अनायास ही खेल गई, उसे यह श्वेत आवरण भी नहीं छिपा सका। जाह्नवी की धारा में प्रतिफलित रक्तोत्पल की भाँति जल-चादर के भीतर से परिदृश्यमान दीपशिखा की भाँति, शरत्कालीन मेघों में अन्तरित बाल-सूर्य की प्रभा के समान वह लालिमा अधिकतर रमणीय होकर प्रकट हुई। केवल एक क्षण के लिए उसकी दृष्टि नीचे की ओर झुकी और दूसरे ही क्षण वह सजग हो गई। बोली, "क्यों ऐसा होता है, आर्य ? क्या पूर्व-जन्म का बन्धन है यह, या परजन्म का निमित्त है ? जिस प्रचण्ड दुर्वार शक्ति के इंगितमात्र से लज्जा का आजन्म-लालित बन्धन इस प्रकार शिथिल हो जाता है, वह क्या पाप है ? उसे राक्षसी शक्ति क्यों समझा जाता है, आर्य ? मैंने जितने लोगों को यह कहानी सुनाई है, उन सबने ही बुद्धिमान् की भाँति सिर हिलाकर मुझे पापकारिणी बताया है। दीर्घकाल तक मैं स्वयं अपने इस

अकारण आरोपित पाप-भावना की चिताग्नि में जलती रही हूँ। वैराग्य क्या इतनी बड़ी चीज है कि प्रेम के देवता को उसकी नयनाग्नि में भस्म कराके कवि गौरव अनुभव करें ?" वह देर तक मेरी ओर उत्तर की आशा से देखती रही। मैंने संक्षेप में उत्तर दिया – "प्रश्न विभज्यवचनीय है, देवि ! आप दो बातों को एक करके पूछ रही हैं। कालिदास ने प्रेम के देवता को वैराग्य की नयनाग्नि से भस्म नहीं कराया है, बल्कि उसे तपस्या के भीतर से सौन्दर्य के हाथों प्रतिष्ठित कराया है। पार्वती की तपस्या से सच्चे प्रेम के देवता आविर्भूत हुए थे। जो भस्म हुआ, वह आहार-निद्रा के समान जड़ शरीर का विकार्य धर्म-मात्र था। वह दुर्वार था; परन्तु देवता नहीं था। देवता दुर्वार नहीं होता देवि, विभज्य वचनीय है तुम्हारा प्रश्न। मैं पूरी कथा सुनना चाहता हूँ।" सुचरिता चकित मृगशावक की भाँति आश्चर्य-विस्फारित नयनों से मुझे देखती हुई बोली, "क्या कहा आर्य, पार्वती ने शिव की क्या एकमात्र देवता के रूप में आराधना नहीं की थी ? क्या उनका व्रत जड़ शरीर-धर्मों का पाप आकर्षण-मात्र था ? ब्रज-सुन्दरियों ने निखिलानन्द-सन्दोह मुकुन्द की विग्रहमाधुरी के प्रति जो आकर्षण दिखाया, वह क्या प्रेम नहीं था ? फिर क्यों कहा गया है आर्य, कि ब्रज-सुन्दरियों का प्रेम ही काम है और काम ही प्रेम है ?[12] क्या पार्वती की वह आसक्ति एक बाह्य जड़ धर्म थी ?" क्षण-भर में मेरे सामने पार्वती का तपोनिरत वेश विद्युच्छटा की भाँति खेल गया और कालिदास के अपूर्व वर्णनानैपुण्य से प्रतिफलित वह मूर्त्ति याद आ गई, जो शिला पर शयन करती थी, अनिकेत-वासिनी थी, धूप-वर्षा-आँधी-तूफान में स्थिर खड़ी रहती थी। केवल महारात्रि ही अपनी विद्युन्मयी दृष्टि से बीच-बीच में झाँककर उस महातपस्या की साक्षी बनी रही।[13] पार्वती की उस अवस्थाह से सुचरिता की इस अवस्था में कितना साम्य है और फिर भी कितना वैषम्य है ! मैंने स्नेह-तरल स्वर में कहा, "पार्वती ने ठीक ही शिव को अपना सर्वस्व समझा था, देवि ! किन्तु दोष शिव की ओर से हुआ था। उन्होंने अपने चित्त-विकार के हेतु को दिशाओं के उपान्त भाग में खोजा था। चित्त जड़ प्रकृति का चेतन के संसर्ग से उत्पन्न विकारमात्र है, शुभे ![14] परन्तु मुझे पूरी कथा सुनने का आग्रह है।"

सुचरिता बोली, "चतुर हो आर्य, प्रियभाषी हो आर्य, आधी बात सुनकर निर्णय करना बुद्धिमांद्य का लक्षण है। सबने मेरी कहानी आधी ही सुनी है, और यह आधी कहानी इस नगर में नाना भाव से विकृत हुई है। पर तुम पूरी सुनना चाहते हो। निपुणिका आधी ही जानती है; परन्तु उसने सन्देह नहीं किया और मेरे आचरण को पाप नहीं बताया। वह सहृदया थी। मैं तुम्हें पूरी सुना रही हूँ, आर्य ! जिस समय मैं इस प्रकार अपने-आपको संयम की रश्मियों से खींचने का प्रयत्न कर रही थी, उसी समय मेरी सास देर तक मुझे लौटती न देख खोजती हुई उधर ही आईं। उन्होंने उस रक्त चीवरधारी मुनिकुमार को देखते ही कातर चीत्कार किया – 'अरे मेरा लाल, मेरा अमितकान्ति !' और अर्द्धमूर्च्छित-सी होकर तपस्वी के पास गिर गईं। मुनिकुमार के वैराग्य कठोर मुख पर करुण भाव की रेखाएँ दिखाई देने लगीं। उन्होंने कमण्डलु एक तरफ रख दिया और धीर भाव से माता के सिर को गोद में लेकर दबाना शुरू किया। अत्यन्त मृदु-कोमल कण्ठ से बोले, 'आर्ये, संयत होओ, वृथा उद्विग्न क्यों हो रही हो ?'

माता ने करुण नेत्रों से पुत्र की ओर देखा, बोलीं, 'बेटा, तू मुझ अभागी को रोती-कलपती छोड़ कौन-सा धर्म कमा रहा है ? यह देख, यह तेरी ब्याहता बहू है। अभागे, स्वर्ग में ऐसी कौन-सी अप्सराएँ मिलती होंगी, जिनके लिए तू इस मणिकांचनप्रतिमा को छोड़कर तपस्या कर रहा है ? माता की इस बात से मैं जितनी ही

हतबुद्धि बन गई, उतनी ही लज्जित भी। यह भी कोई बात की बात है ! तपस्वी किन्तु गम्भीर बने रहे। उनके तेजोमण्डित मुख-मण्डल पर निर्विकार भाव ज्यों-का-त्यों बना रहा। माता ने कातर कण्ठ से अपना दुखड़ा सुनाना शुरू किया। पुत्र ने धीरभाव से सुनकर कहा, 'संसार दुःख है, आर्ये !' विचित्र दशा थी। समस्त जीवन के नैराश्यों और कष्टों की साक्षात् प्रतिमा माता फफफ-फफककर अपनी करुण कहानी सुना रही थी, उसकी आँखों में अश्रु-धारा श्रावण मास की वारिधारा के समान झड़ रही थी और पुत्र निर्विकार भाव से उपदेश देता जा रहा था, मानो वह अपनी माता को पहचानता ही नहीं, मानो उसकी अपनी माता भी सौ-पचास अन्यान्य आर्याओं की भाँति एक सामान्य आर्या हो ! मेरा स्त्रीत्व इस ढोंग को बर्दाश्त नहीं कर सका; परन्तु कुछ बोल न सकी। लज्जा से कण्ठ रुद्ध हो गया। अन्त में माता ने ही दूसरा रूप धारण किया – 'अरे ओ मूढ़, रटी हुई बोली बोल रहा है तू ! भण्ड है वह धर्माचार, जो अपनी माता को भी पहचानने में लज्जा अनुभव कराता है। इस दुःखमय संसार को और भी दुःखमय बनाकर ही क्या तेरा सुख का राजमार्ग तैयार होगा ? स्वार्थी है तेरा मार्ग, धिक्कार है तेरे पौरुष को !' तपस्वी का चित्त गला। उन्होंने एक बार मेरी ओर देखा, एक बार अपनी माता की ओर। माता ने मेरी ओर देख डाँटकर कहा, 'ताकती क्या है अभागी, यही तेरा पति है, यही तेरा देवता है। आ, इसके चरणों में अपने को समाप्त कर दे। मरती क्यों नहीं भाग्यहीना, मैं मरकर तुझे सिखा दूँगी कि मरना क्या होता है ? इसने तेरा हाथ पकड़ा था, यही तेरा निबाहनेवाला है। आ, तू इसी की शरण आ। मैं चलती हूँ। बहुत रो चुकी हूँ। आज मैंने अपना खोया धन पा लिया है। मैं इस बार नहीं चूकूँगी। यहीं मेरी समाप्ति है।' इतना कहकर माता ने ज़ोर से वक्षःस्थल पर कराघात किया और कटे रूख की तरह तपस्वी की गोद में लुढ़क गई। क्षण-भर में मेरे सामने अन्धकार छा गया। 'हाय अम्मा', कहकर मैं भी माता के अवश शरीर पर गिर पड़ी।

थोड़ी देर बाद मैं जब होश में आई, तो क्या देखती हूँ कि तपस्वी के तेजोमण्डित मुख-मण्डल में विकास का धूम छा गया है। उनके बड़े-बड़े नयन कोशों से मुक्ताफल की धारा के समान अश्रु झर रहे हैं। मैं लज्जित, शोकार्त्ता, हतबुद्धि और कर्त्तव्य-ज्ञानविरहिता होकर जड़वत् बनी रही। तपस्वी अपने चीवर से माता के सिर पर हवा कर रहे थे। उनका कण्ठ वाष्पपूर्ण था। मेरी ओर देखकर ईषत् लज्जित-से होकर वे बोले, 'शुभे, धैर्य से काम लो, इस कमण्डलु में थोड़ा-सा जल ले आओ।' मेरा जन्म कृतार्थ-सा मालूम हुआ। बिना कोई उत्तर दिए मैं सरोवर से जल ले आई। माता के नेत्रों और मस्तिष्क को पानी से आर्द्र करने के बाद उन्होंने फिर चीवर से हवा करना शुरू किया। थोड़ी देर बाद फिर मेरी ओर देखकर आँखें नीची कर लीं और बोले, 'देवि, माता के तलवों को करतल से अच्छी तरह रगड़ो।' मैंने आज्ञा पालन की। थोड़ी देर की सुश्रुषा के बाद माता की आँखें खुल गईं। तपस्वी का व्रत इस बार भंग हुआ, संयम का बाँध टूट गया, दीर्घकाल की रटी हुई भाषा लुप्त हो गई। वाष्पगद्गद् कण्ठ से बोले, 'माँ, ऐ माँ !' माता का स्नेहोद्वेल हृदय इस बार उफ़न पड़ा। तपस्वी की गर्दन को अपनी क्षीण भुज-लताओं से बाँध वे फफककर रो पड़ीं। बोली, 'हाँ बेटा, माँ कहकर पुकार। मेरा लाल, मेरी खोई निधि, मेरा अमितकान्ति ! तेरे पिता स्वर्ग में तेरे इस रूक्ष जटिल रूप को देखकर मुझे बुरी तरह डाँटेंगे, मेरे लाल ! मैं अब अधिक नहीं बचूँगी। बोल, एक बार माँ कहकर पुकार। मैं तेरी गोदी में सुख की नींद सो जाना चाहती हूँ, मेरे प्राण ! तपस्वी इस बार सम्हल न सके। फूट-फूटकर रो पड़े – 'ना माँ, मैं तेरी गोदी में लौट चलूँगा, मुझे एक बार गुरु से आज्ञा ले लेने दो।' माता का चेहरा लाल हो गया। एक बार फिर करुणा में वीर रस का अचानक प्रादुर्भाव

हुआ। गरजकर बोलीं, 'पाषण्ड है वह ढोंगी, जो माता से बढ़कर अपने को गुरु मानता है। तू मेरा है, मेरे रक्त-मांस का टुकड़ा है, दूसरा कौन तेरा गुरु है ?' माता का दुर्बल शरीर इस उत्तेजना को बर्दाश्त नहीं कर सका। वे फिर संज्ञाहीन हो गईं। अबकी बार मैं अपने को सम्हाल न सकी। चिल्लाकर रो पड़ी – 'हा अम्मा, अब मेरा सहारा कौन होगा ?' तपस्वी ने वाष्परुद्ध कण्ठ से फिर कहा, 'घबराओ मत भद्रे, माता को जिलाना मेरे हाथ में है।' वे कुछ सन्नद्ध-से होकर सेवा करने लगे। मुझे भी नाना भाव से सेवा करने का आदेश करने लगे। थोड़ी देर बाद माता जब सचेत हुईं, तो उन्होंने अकम्पित स्वर में कहा, "माँ, तू जो कहेगी, वही करूँगा।' माता ने स्नेह-गद्गद् हो उनका सिर चूम लिया। उनके वक्षःस्थल से दूध की धारा बह निकली। वे तपस्वी को दो वर्ष के शिशु के समान गोदी में लेकर दुलराने लगीं। फिर बोलीं, 'तू सत्य कहता है, मेरा लाल ! मैं जो कहूँगी, वही करेगा ?' तपस्वी ने सहज स्वर में कहा, 'निश्चय करूँगा, माँ।' माता ने कहा, 'तो पकड़ इसका हाथ ! एक बार झूठा बन चुका है, दूसरी बार फिर झूठा न बन।' तपस्वी ने एक बार आकाश की ओर देखा, एक बार पृथ्वी की ओर। फिर मेरी ओर देखकर बोले, 'शुभे, माता की आज्ञा तुमने सुनी है न!' मैंने सिर हिलाकर स्वीकृति बताई। तपस्वी ने कहा, 'मैं माता की आज्ञा से तुम्हारा हाथ पकड़ना चाहता हूँ। क्या तुम जीवन में मेरे लक्ष्य की ओर बढ़ने में मुझे सहायता पहुँचाने को तैयार हो ?' मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया। लज्जा के भार से मेरी ग्रीवा जो झुकी, सो मानो टूट ही गई, उठने का नाम ही नहीं। माता ने स्नेहपूर्वक कहा, 'हाथ बढ़ा दे, बेटी !' और मेरा पाणिग्रहण हो गया ! माता ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया और पुत्र से कहा, 'अब चल बेटा, मेरे साथ।' पुत्र ने माता के चरणों पर सिर रख दिया और गिड़गिड़ाकर कहा, 'एक-बार गुरु की अनुमति लेने की आज्ञा दे दो, माता।' आज्ञा मिल गई। वे चले गए। फिर क्या हुआ, सो मुझे नहीं मालूम। पर फागुन की पुनों को वे मेरे यहाँ लौट आए और मुझे अवधूत अघोरभैरव के पास ले गए। अवधूतपाद के आदेश से ही हम दोनों ने अपने वर्त्तमान गुरु से दीक्षा ली है। परन्तु आर्य, मेरे पति जब लौटकर आए, तो माता को नहीं देख सके। माता पहले ही स्वर्ग-यात्रा कर चुकी थीं। मैं दुनिया को आधी कहानी ही बता सकी हूँ। माता के अभाव में आधी बाकी रह गई थी। कल अचानक इस आधी कहानी की सचाई का प्रमाण मिल गया है। श्रेष्ठी धनदत्त ने मेरे पति को पहिचान लिया है। यह व्यवहार सिद्ध करता है कि आधी कहानी भी गोपन नहीं रहेगी।"

सुचरिता अपनी कहानी कहकर मेरी ओर एक दीर्घ-स्थायी दृष्टि से देखती रही, मानो कुछ सुनने की प्रतीक्षा में हो। परन्तु मैं दूसरी ही चिन्ता में था। मैं अवधूत अघोरभैरव के पास प्रथम समागत विरतिवज्र को स्मरण कर रहा था।

* * *

सुचरिता ने प्रसन्न होकर कहा, "समझ गई हूँ, आर्य ! मेरे और मेरे पति के निर्दोष-निरीह आचरण से जिस प्रकार राजकार्य में बाधा पड़ी है, उसी प्रकार प्रजा की शान्ति में भी बाधा पड़ी है। यह दो प्रतिद्वन्द्वी स्वार्थों का संघात है, आर्य, हम लोग तो निमित्त बने हैं। धनदत्त के गुरु भदन्त वसुभूति बौद्धधर्म को जिताकर ही छोड़ेंगे और वसुभूति के प्रतिभट परमस्मार्त्त आचार्य मेधातिथि जो आज की सभा के गुप्त सूत्रधार थे – सनातन धर्म को पुनः प्रतिष्ठित करके ही दम लेंगे। मनुष्य जाए चूल्हे-भाड़ में, इन्हें अपने धर्ममत का डिम्डिम् पीटना है। एक की पीठ पर

राज्य-शक्ति है और दूसरे की हथेली में प्रजा का विद्रोह ! विरतिवज्र का बौद्ध से वैष्णव होना ही मानो संसार की सबसे बड़ी घटना है ! इस जय-पराजय की प्रतिद्वन्द्विता में मनुष्य का चाहे सत्यानाश ही क्यों न हो जाए। परन्तु मैं पूछती हूँ आर्य, इसमें किसका पक्ष ग्रहणीय है ? महाराजाधिराज की ओर से ही क्या इस वह्नि-शिखा में ईंधन डालने का कार्य पहले नहीं हुआ है ? आप नहीं जानते आर्य, इसका सूत्रपात बहुत पहले से हो चुका है। अब आर्य विरतिवज्र ने नए धर्म-मत में दीक्षा ली, तो सहसा स्थाण्वीश्वर में धार्मिक उत्तेजना प्रबल हो गई। विद्वानों के अनुरोध से और नगर-सेठों के प्रसाद से विशाल पटवास बनाया गया और वहाँ मेरे गुरु को निमन्त्रित किया गया। गुरु का सिद्धान्त है कि वे पापी से पापी को भी अपनी बात सुनाने में नहीं हिचकते। वे सहज ही मान गए। परन्तु आर्य विरतिवज्र ने बाहर आना पसंद नहीं किया। गुरु के अनुरोध पर उन्होंने सिर्फ मुझे वहाँ रहने की अनुमति दी। यह बराबर चेष्टा की गई कि बौद्ध आचार्य वसुभूति से मेरे गुरु का संघर्ष करा दिया जाए, परन्तु वे महादेव के अवतार हैं, आर्य ! उनको अपने भजन-पूजन से मतलब था। अपना काम समाप्त करने के पश्चात् वे एक क्षण भी नहीं रुकते थे और भजन आरम्भ होने के एक क्षण पूर्व वहाँ पधारते थे। यह सब थोड़े-से पण्डितमानी व्यक्तियों की ईर्ष्याग्नि है, जिसमें राजा जल रहा है, प्रजा जल रही है और वह समय भी आ गया है, जब समूचा आर्यावर्त्त अपने तरुण बालकों, अनाथों और वृद्धों के साथ जलकर भस्म हो जाएगा। जिस प्रजा ने विद्रोह किया है, वह अज्ञ है, अन्ध है, अभाजन है !" सुचरिता ने दीर्घ निःश्वास लिया।

पंचदश उच्छवास

आँगन में आकर भट्टिनी ने हँसने का प्रयत्न किया। वे दिखाना चाहती थीं कि उनके मन में कोई दुःख नहीं है, ग्लानि नहीं है, लज्जा नहीं है। उनके प्रफुल्ल कमल के समान मुख पर वह प्रयत्न-साधित हँसी बहुत मनोहर लगती थी। मेरा हृदय इस हँसी से और भी फटने लगा। आहा, इस देवदुर्लभ महिमा को मैंने लांछित होने दिया है ! मैंने इस कमल-कोमल हृदय पर आघात पहुँचने दिया है ! मेरा हृदय गलकर इस देवी के चरणों पर ढरक जाने को व्याकुल हो गया। मेरा गला रुँध गया, वाक्-शक्ति लोप हो गई, अविरल अश्रु-धारा से दृष्टि आच्छादित हो गई, लज्जा और अनुताप से सारा शरीर दग्ध होने लगा। मुझे दिशाएँ शून्य-सी लगने लगीं। मैं स्थिर खड़ा नहीं रह सका, सिर घूम गया और मैं बैठ गया। भट्टिनी मेरे निकट आयीं; बड़े स्नेह से उन्होंने मेरे ललाट पर हाथ दिया, फिर आवेगभरी भाषा में बोल उठीं – " तुम भी उत्तेजित होते हो, भट्ट ? निपुणिका की बात से तुम इतने विचलित हो गए ? उठो, देखो, तुम इस अपनी अभागी भट्टिनी की ओर देखो। तुमने कोई अपराध नहीं किया है। अगर तुम कान्यकुब्जेश्वर के सभासद हो गए तो इसमें मेरा अपमान कहाँ हुआ ? क्यों व्यर्थ विचलित होते है ?" मेरी संज्ञा धीरे-धीरे लौट आई। घुटनों के बल बैठकर मैं केवल इतना ही कह सका – "देवि, तुम सब क्षमा कर सकती हो, तुम सब भुला सकती हो, पर अभागा बाण कैसे शान्ति पा सकेगा ?"

भट्टिनी के चेहरे पर एक विचित्र कातरता दिखाई दी। उनका वचन रुद्ध हो गया था, किन्तु आँखें बहुत कुछ कह रही थीं। उनका मुँह पीला पड़ गया था और फिर भी रह-रहकर उसमें इस प्रकार रोमांच हो आता था मानो भीगा हुआ कदम्ब-कोरक सूर्यातप में उभरता जा रहा हो। मैंने फिर व्याकुल होकर कहा, "देवि, मैं अनुताप के समुद्र में डूब रहा हूँ, लज्जा के महापंक में निमग्न हूँ कर्त्तव्य मुझे नहीं सूझ रहा है। निपुणिका ठीक कहती है।

मौखरियों का निमन्त्रण मुझे उसी समय पैर से कुचल देना चाहिए था। जिसे भट्टिनी का सेवक होने का गौरव प्राप्त हो उसे सम्राटों का सभासद्पद नहीं शोभता। परन्तु देवि, मैं न जाने किस शक्ति के दुर्वार आक्रमण से हतबुद्धि हो गया था। मैं किस मुँह से अपना अपराध क्षमा कराऊँ ?"

भट्टिनी अब अपने को रोक नहीं सकीं। उनका मुखमण्डल उदयगिरि के तटान्त-लग्न चन्द्र-मण्डल के समान लाल हो गया।

* * *

भट्टिनी के आते ही लोरिकदेव ने तलवार खींचकर अभिवादन किया। साथ ही पुरोहित ने शंख-ध्वनि की। देखते-देखते देवपुत्र-नन्दिनी के जय-निनाद से दिशाएँ काँपने लगीं, भद्रेश्वर दुर्ग के सौध-कुहरों से प्रत्यावर्त्तित होकर वह ध्वनि और भी दीर्घायित हो गई। इसी समय लोरिकदेव ने अपनी बत्तीस अंगुलों की विकराल असि को ऊपर उठाया, देखते-देखते मल्लों की लाठियाँ खड़खड़ा उठीं। वह एक विकट व्यापार था। उल्काएँ उस यष्टि-संघट्ट से काँप उठीं। ऐसा जान पड़ा कि प्रत्येक व्यक्ति उस विचित्र संघट्ट का आखेट हो गया है परन्तु आश्चर्य यह था कि यद्यपि लाठियाँ अनवरत वेग के साथ घूम रही थीं; पर किसी को कोई आघात नहीं लगा, कोई भी विचलित नहीं हुआ, कोई भी स्थान-भ्रष्ट नहीं हुआ। यष्टिका-वर्तुल सिमटता गया, एक बार तो वह इतना छोटा हो गया कि लाठियों के सिवा और कुछ दिखाई ही नहीं देता था। एक क्षण में लाठियाँ तड़तड़ा उठीं और सारा जन-समूह भट्टिनी की जय-ध्वनि से मुखरित हो गया। मैंने आश्चर्य के साथ देखा कि लाठियों के दो मंच बन गए हैं। मुहूर्त्तभर में कुमारियों ने शृंगार-रस से सराबोर द्विवदी-खण्ड का गान गाया, छोटे-छोटे काष्ठ-खण्ड खटखटा उठे, उस कर्कशता की पृष्ठभूमि में कुमारी-कण्ठ की सुरीली तान बहुत मीठी लग रही थी। कब मल्ल लोग फिर वर्त्तुलाकार खड़े हो गए और कब मध्यवर्ती वर्त्तुल की कुमारियाँ सिमटकर एक हो गईं, यह निपुण भाव से निरीक्षण करनेवालों की भी समझ में नहीं आया। यह नृत्यकौशल विचित्र था। जितना ही उत्ताल उतना ही तालानुग। कुमारियों ने विचित्र सुकुमार भंगिमा से भट्टिनी को घेर लिया, अत्यन्त लघु आयास से उन्हें उठाया और आगेवाले यष्टि-मंच पर बैठा दिया। फिर विकट रासक-नृत्य चलने लगा। ऐसा जान पड़ता था कि भूतों के उत्सव में पार्वती बैठी हुई हैं। भट्टिनी का मुख सहज गम्भीर बना रहा। एक क्षण के लिए भी उसमें कोई विकार नहीं आया। कण्टकी वृक्षों में खिली हुई चन्द्रमल्लिका की भाँति वह प्रफुल्ल-मनोहर वदन अपने में आप ही परिपूर्ण था। वह उद्दाम-मनोहर नृत्य चलता रहा, कांस्य-कोशी झनझनाते रहे और मुखर नूपुर-विराव के साथ काष्ठ-खण्डों की टंकार विचित्र ध्वनि से दिगन्तराल को मुखरित करती रही।

भट्टिनी के पीछेवाले मंच पर लोरिकदेवी और उनकी रानी समासीन हुईं। एक बार फिर वह नृत्य रुका। पुरोहित ने शंख-ध्वनि की और मन्त्री ने धूप-दीप-नैवेद्य के साथ भट्टिनी को अर्घ्य दिया। लोरिकदेव ने रजत के मनोरम थाल में नारिकेल, पूगीफल और ताम्बूल-पत्र भट्टिनी को निवेदन किए। अत्यन्त गद्गद् कण्ठ से उन्होंने कहा, "अनजान में जो उपेक्षा हुई है उसे क्षमा करना देवि, हमारा अहोभाग्य है कि अज्ञात-प्रतिस्पर्द्धिविकट,

प्रत्यंबाड़व, आर्यमानरक्षक तत्रभवान् दवपुत्र तुवरमिलिन्द की नयनतारा अत्रभवति ने मेरे इस गृह को पवित्र किया है। मेरे दश सहस्र मल्ल आपके ही सेवक हैं।

* * *

जिस समय यह उत्सव समाप्त हुआ उस समय रात प्रायः आधी बीत चुकी थी।

* * *

मैं इन्हीं विचारों में उलझा हुआ था कि सामने भट्टिनी आकर खड़ी हो गईं। उनकी बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू भरे हुए थे, कण्ठ वाष्प-गद्गद् था और मुखमण्डल लाल आभा से आभासित था। तो क्या यही त्रिपुरसुन्दरी का दक्षिण मुख है! दक्षिण मुख – जिसमें करुणा की धारा प्रवाहित हो रही है, अनुराग की आभा उल्लसित हो रही है, स्नेह की स्निग्धता चमक रही है! आहा, भुवनमोहिनी का यही क्या वह रूप है जिसकी पूजा करने के लिए अवधूत गुरु ने मुझे इतना सिखाया था। यह कुरंग के समान भीतचपल नेत्र, शरच्चंद्र के समान आह्लादकारक मुख, बिम्बफलों के समान आताम्र अधरोष्ठ, चन्दन-गन्ध से आमोद-मुदिर अंग, करुणा के अश्रु से सिक्त मनोहर दृष्टि जो अन्तःकरण को मोहित कर डालती है – यही तो भुवनमोहिनी का रूप है। गुरु ने ही मुझे वह ध्यान-मन्त्र सिखा दिया था –

कुरंगनेत्रां शरदिन्दुवक्त्रां बिम्बाधरां चन्दनगन्धलिप्ताम्।
दृशा गलत्कारुणिकास्रयान्तः सम्मोहयन्तीं त्रिजगन्मनोज्ञाम्॥

हाय, इससे बढ़कर 'त्रिजगन्मनोज्ञा' शोभा क्या हो सकती है? कितनी अन्तःशामक दृष्टि है, कितनी अमृत-स्रावी वाग्धारा है, कैसा उदार चारित्र्य है, कैसी निर्मल आभा है! भुवनमोहिनी के इस रूप को जिसने देखा है उसके लिए कुछ भी देखना बाकी नहीं रह गया। मैं गद्गद् भाव से भट्टिनी की ओर देखता ही रह गया।

षोडश उच्छवास

निपुणिका यद्यपि गम्भीर हो गई थी, पर अब भी उसकी कपोलपालि विकच पुण्डरीक की शोभा धारण किए हुई थी, अब भी उसके चंचल नयनों में सरसता छलक रही थी, अब भी उसका आँचल मुख पर छाया हुआ था, अब भी उसके उत्तरोष्ठ थोड़ा-थोड़ा काँप रहे थे। उसकी मधुर मूर्ति बड़ी मोहक जान पड़ती थी, मानो शरच्चन्द्रिका का जमा हुआ रूप हो, दुग्ध-समुद्र की सिमटी हुई आभा हो, सुधाभाण्ड का संयमित वैशद्य हो। उसने आँखें झुका लीं और इस प्रकार धीरे-धीरे बोलने लगी मानो अपने प्रत्येक शब्द को तौल-तौलकर देख लेती जा रही हो। मेरी ओर उसने देर तक नहीं देखा। बोली, "भट्टिनी स्थाण्वीश्वर जाएँगी; परन्तु वे वहाँ किसी की अतिथि नहीं होंगी। उनका अपना स्वाधीन राज्य उनके साथ-साथ रहेगा। लोरिकदेव को तुम इस बात पर राजी कर लो कि उनकी कम-से-कम एक सहस्र मल्ल-सेना भट्टिनी की सेवा में नियुक्त रहे। स्थाण्वीश्वर में भट्टिनी उसी प्रकार रहेंगी जिस प्रकार स्वतन्त्र देश की रानी अपने राज्य में रहती है। यह भाग्यहीना भी साथ रहेगी। स्थाण्वीश्वर के

महाराजाधिराज को भी यह अधिकार नहीं होगा कि भट्टिनी की सेविका की छाया भी छू सकें। अगर निउनिया को स्थाण्वीश्वर के व्यवहार में घसीटा गया तो वहाँ रक्त की नदी बह जाएगी । पहली बलि कान्यकुब्जश्वर के सभापण्डित बाणभट्ट की हो होगी। तुम तैयार हो भट्ट, एक सामान्य दासी के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देने का साहस तुममें है ?" इस बार उसने मेरी ओर आँख उठाई । स्वर कुछ और ऊँचा करके बोली, 'भट्ट, किस अपराध पर कान्यकुब्ज का लंपट-शरण्य राजा मुझे फाँसी देना चाहता है ? मेरे उसी अपराध के बल पर वह देवपुत्र तुवरमिलिन्द से मित्रता करना चाहता है ? मेरी-जैसी असहाय अबलाओं को दण्ड देनेवाला उसका कठोर भुजदण्ड क्या म्लेच्छावाहिनी से अपनी प्रजाओं को नहीं बचा सकता ? सचमुच तुम विश्वास करते हो, आर्य, कि इस निर्वीर्य शासन-तन्त्र से देवपुत्र की सेना का मिलाप होते ही आर्यवर्त्त रक्त-स्नान से बच जाएगा ? आर्यावर्त्त के समाज के मूल में घुन लग गया है, उसे महानाश से कोई नहीं बचा सकता। मैं पूछती हूँ, आर्य, क्या छोटा सत्य बड़े सत्य का विरोधी होता है ?" निपुणिका ने उत्तर पाने की आशा से मेरी ओर देखा। मैं इस प्रश्न का कोई प्रयोजन नहीं समझ सका, सहज भाव से उत्तर दिया – "सत्य अविरोधी होता है, ऐसा ही तो सुना है।" निपुणिका ने आश्वस्त होकर कहा, "आर्य, तुम्हीं मेरे देवता हो, तुम्हीं मेरे सत्य हो। तुम्हारे साथ दीर्घकाल तक रहने का सौभाग्य मुझे मिला है, मेरी ही शपथ करके तुम सत्य-सत्य कहो, मेरा कौन-सा ऐसा पापचरित्र है जिसके कारण मैं निदारुण दुःख की भट्ठी में आजीवन जलती रही ? क्या स्त्री होना ही मेरे सारे अनर्थों की जड़ नहीं है ? तुम इस छोटे-से सत्य के साथ राष्ट्र-जीवन के बड़े सत्य को अविरोधी पा रहे हो ? क्या बृहत्तर सत्य के नाम पर मिथ्या का ताण्डव नहीं चल रहा है ? कैसे आशा करते हो, आर्य, कि देवपुत्र का प्रबल भुज-दण्ड इस समाज को नाश के गर्त्त से बचा लेगा ? महाकालिका खुलकर इस देवभूमि पर नृत्य करेंगी, और करेंगी; महानाश के बवण्डर में यह सबकुछ तूलखण्ड की भाँति उड़ जाएगा, विच्छिन्न अदृश्य खण्ड-पापों का प्रायश्चित असम्भव है। निपुणिका सामान्य अपमानिता नारी है। समाज की कुत्सित रुचि पर तिल-तिल करके उसने अपने को होमा है, उसकी यह वाणी हृदयाग्नि के अतल गह्वर से निकल रही है। तुम लोग आँधी को रोकने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहे हो। पर आर्य, मेरी इच्छा है कि एक बार तुम सम्राटों की भृकुटियों की उपेक्षा करके इस महासत्य को ऊँचे सिंहासनों तक पहुँचा दो। यदि थोड़ा भी वह स्वर वहाँ तक पहुँच जाएगा तो सम्भव है महाकाल की क्रोधाग्नि प्रशमित हो जाए। बड़ा दुःख है आर्य, इसी विराट् दैन्य के अन्तःस्पन्दनहीन ढूह पर यह साम्राज्य की नयनहारी रथयात्रा चली जा रही है। मैं इस ढूह की एक नगण्य कणिकामात्र हूँ। मुझे इस योग्य बना दो कि आप अपनी अग्नि से धधककर समूचे जंजाल को भस्म कर दूँ। मैं तुम्हारा करावलम्ब चाहती हूँ। नारी का जन्म पाकर केवल लांछना पाना ही सार नहीं है। तुमने ही मुझे आनन्द की ज्योतिष्कणिका दी थी। तुम्हीं मुझे तेज की चिनगारी दो, आर्य !"

अष्टादश उच्छ्वास

भट्टिनी का मन प्रसन्न था। उनकी दुग्ध-मुग्धु मधुरच्छवि इस सहज आनन्द की आभा से उत्फुल्ल मालती-लता की भाँति अभिराम हो गई थी। मानसिक आनन्द भी कैसा अद्भुत रसायन है ! भट्टिनी की शोभा आज सौगुनी बढ़ गई है – अधरों की बन्धूक-बन्धुता और भी निखर आई है, आँखों की वह स्निग्ध शोभा जो तरुण केतक-पत्रों को भी लज्जित करती थी, कई गुना बढ़ गई है। कपोलों की मधूक पुष्प की कली के समान मोहक-

कान्ति और भी मधुर हो उठी है, ग्रीवा का कम्बु-विडम्बन उल्लास और भी उत्तरंग हो उठा है। आहा, वातुल कवि व्यर्थ ही कल्पना के जाल में उलझकर छटपटाया करते हैं। उन्होंने रामणीयक निधि की अधिदेवता को, सौन्दर्य के मुग्ध निकेतन को, शोभा के उद्वेल समुद्र को देखा ही कहाँ ! भट्टिनी को प्रसन्न देखकर मेरा रोम-रोम उच्छ्वसित हो उठा। उन्हें भी शायद मेरी प्रसन्नता का आनन्द मिला था। उस समय बाहर कोई गान कर रहा था। भट्टिनी ने मुझे बुलाया और निर्व्याज-मनोहर स्मित के साथ कहा, "आज बहुत प्रसन्न दिख रहे हो, भट्ट !" प्रसन्न ही तो हूँ ! यदि शक्ति होती तो भट्टिनी की इस शोभा की प्रतिमूर्त्ति अपना हृदय गलाकर गढ़ लेता। अंगुली से संकेत करते हुए उन्होंने कहा, "देखो तो बाहर कौन गा रहा है !" आनन्द के तरंग में डूबता-उतराता मैं बाहर आया। देखता हूँ तो दो गैरिकधारिणी भैरवियाँ मधुर उदात्त कण्ठ से गान गा रही हैं और आभीर सैनिक मन्त्रमुग्ध से बने सुन रहे हैं। गान अपभ्रंश भाषा में था। भैरवियों ने गाया–

"अमृत के पुत्रो, नगाधिराज हिमालय की शीतल छाती में आज हलचल दिखाई दे रही है। कोई जानता है कि पार्वती-गुरु के हृदय में आज इतनी व्याकुलता क्यों है? जवानो, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं !"

"समुद्रगुप्त के प्रताप ने क्या किया, चन्द्रगुप्त के रण-हुंकार ने क्या किया, मौखरियों की दुर्दान्त वाहिनी ने क्या किया ? म्लेच्छ अब भी जीवित हैं। अमृत के पुत्रो, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं !"

"आर्यावर्त्त के तरुणो, जीना सीखो, मरना सीखो, इतिहास से सीखना सीखो। आर्यावर्त्त नाश के कगार पर खड़ा है। जवानो, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं !"

"राजाओं का भरोसा करना प्रमाद है, राजपुत्रों की सेना का मुँह ताकना कायरता है। आत्म-रक्षा का भार किसी एक जाति पर छोड़ना मूर्खता है। जवानो, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं !"

"समस्त आर्यावर्त्त एक है – एक समाज, एक प्राण, एक धर्म। देश-रक्षा सबका समान धर्म है। जवानों, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं !"

"उन देवपुत्रों की आशा छोड़ो जो सामान्य शोक के आघात से छुई-मुई की भाँति मुरझा जाते हैं। जिस आधार पर खड़े होने जा रहे हो, वह दुर्बल है। सम्हल जाओ जवानो, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं !"

"अरे ओ अमृत के पुत्रो, इन राजाओं में लंपटता बढ़ गई है, इनके अन्तःपुर निर्यातित वधुओं के क्रन्दन से भरे हुए हैं। राजशक्ति के मूल में घुन लग गया है। जवानो, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं !"

"अमृत के पुत्रो, आँधी की भाँति बहो, तिनके की भाँति म्लेच्छ-वाहिनी को उड़ा ले जाओ। संकट के भय से कातर होना तरुणाई का अपमान है। जवानो, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं !"

"वह देखो, कुल-वधुएँ आँखों में आँसू भरकर तुम्हारी ओर देख रही हैं। उनका सुहाग तुम्हारे हाथों है। जवानो, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं !"

"वह देखो, माताएँ तुम्हारी ओर ताक रही हैं, अरे वह देखो, दुधमुँहे बच्चे तुम्हारी ओर ताक रहे हैं। रुको मत, जवानो, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं!"

"तुम्हें माता के दूध की शपथ है, कुल-वधुओं के सुहाग की शपथ है, दुधमुँहे बच्चों के दुलार की शपथ है। उठो, भेद-भाव भूल जाओ, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं!"

"कौन है जो आर्यावर्त्त को हाहाकार के बवण्डर से बचाएगा? – कोई देवपुत्र नहीं, कोई राजाधिराज नहीं, कोई महासामन्त नहीं। जवानो, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं!"

"तो फिर कौन है जो आर्यावर्त्त को हाहाकार के बवण्डर से बचाएगा? – आर्यावर्त्त के जवान, आर्यावर्त्त के जवान! जवानो, प्रत्यन्त दस्यु आ रहे हैं!"

"अमृत के पुत्रो, मरण-यज्ञ की आहुति बनो। माताओं के लिए, बहिनों के लिए, कुल-ललनाओं के लिए प्राण देना सीखो। उठो जवानो, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं!"

"अमृत के पुत्रो, मृत्यु का भय मिथ्या है, जीने के लिए मरो, मरने के लिए जिओ, नगाधिराज तुम्हारी ओर ताक रहे हैं! जवानो, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं!"

"महामाया तुम्हें पुकार रही है। महामाया तुम्हारी माता है, माता की लाज रखो। अमृत के पुत्रो, प्रत्यन्त दस्यु आ रहे हैं!"

"वीरो, महामाया के त्रिशूल की शपथ है, म्लेच्छ-वाहिनी की छाया भी इस देश पर न पड़ने पावे। जवानो, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं!"

"अमृत के पुत्रो, मृत्यु का भय मिथ्या है, कर्त्तव्य में प्रमाद करना पाप है, संकोच और दुविधा अभिशाप है। जवानो, प्रत्यन्त-दस्यु आ रहे हैं!"

गान समाप्त हुआ। भैरवियों ने उल्लास के साथ अपने त्रिशुलों को शून्य में उछालते हुए कहा, "जय! आर्यावर्त्त के तरुणों की जय! महामाया माता की जय!" एक सहस्र गम्भीर कण्ठों से आभीर-सेना ने प्रतिध्वनि की – "महामाया माता की जय!" भैरवियों ने फिर गाया –

"वह सहस्रफण अजगर के फूत्कार के समान कौन गरज रहा है? – यह उत्ताल समुद्र नहीं है, विद्युद्गर्भ मेघ नहीं है – यह है आर्यावर्त्त के तरुणों की दुरंगम वाहिनी!"

"कौन है जो इसकी गति रोक सके, कौन है जो इसके तरंगावर्त्त में न डूब जाए, कौन है जो इसके भीमवेग में न बह जाए – यह है आर्यावर्त्त के तरुणों की दुरंगम वाहिनी!"

"अमृत के पुत्रो, कुल-वधुओं का सुहाग तुम्हारे हाथ में है, बालिकाओं की लाज तुम्हारे हाथ में है, वृद्धों का मान तुम्हारे हाथ में है – यह है आर्यावर्त्त के तरुणों की दुर्गम वाहिनी !"

एक बार फिर महामाया माता की जयध्वनि हुई और भैरवियाँ चुपचाप चली गईं। आभीर-सेना ने अपने-आप जय-ध्वनि करते हुए कहा, "म्लेच्छवाहिनी इस देश की छाया भी न छू सकेगी।"

मेरे रक्त में एक विचित्र आलोड़न हुआ। आर्यावर्त्त के नौजवानों के ऊपर एक अपूर्व विश्वास से वक्षःस्थल स्फीत हो उठा। रणचण्डिका विकट नृत्य करनेवाली हैं; पर आर्यावर्त्त का कुछ भी नहीं बिगड़ेगा। महामाया की इन शिष्याओं ने आर्यावर्त्त को महानाश से उद्धार करने का रास्ता दिखा दिया है। नारी के कोमल कण्ठ में कैसी अद्भुत शक्ति है, यह ओजपूर्ण संगीत भी इस कोमल कण्ठ से निकलकर सौ गुना प्रभावोत्पादक हो गया है।

* * *

भट्टिनी ने किसलय के समान लाल अंगुलियों से अपने उत्तरीय प्रान्त को सीमन्त-रेखा पर खींच लिया और धीरे-धीरे कहने लगीं, "एक बात बताऊँ भट्ट, मेरा जन्म रोमकपत्तन के उत्तरवर्त्ती अस्त्रीय वर्ष में हुआ था, मैं वहाँ से पुरुषपुर तक पिता की गोद में बड़ी हुई हूँ। मैंने अनेक देश देखे हैं, अनेक समाज देखे हैं, अनेक जातियाँ देखी हैं, बाल्यभाव के कारण सबका रहस्य नहीं समझ सकी हूँ; परन्तु आर्यावर्त्त-जैसी विचित्र समाज-व्यवस्था मैंने कहीं नहीं देखी है। यहाँ इतना स्तर-भेद है कि मुझे आश्चर्य होता है कि यहाँ के लोग कैसे जीते हैं। फिर यहाँ एक से बढ़कर एक ऐसे सत्पुरुष और सती स्त्रियाँ देखी हैं कि मुझे कभी-कभी यह भी आश्चर्य होता है कि ये देवता-समान लोग क्यों मर जाते हैं ! यहाँ का जीवन और मृत्यु दोनों ही मेरे लिए पहेली हैं !" भट्टिनी ने अपने चेहरे पर निर्विकार भाव बनाए रखने का थोड़ा-सा प्रयत्न किया और फिर बोलीं, "यही देखो, तुम यदि किसी यवन-कन्या से विवाह करो तो इस देश में यह एक भयंकर सामाजिक विद्रोह माना जाएगा। परन्तु यह क्या, सत्य नहीं है कि यवन-कन्या भी मनुष्य है और ब्राह्मण युवा भी मनुष्य है ! महामाया जिन्हें म्लेच्छ कह रही हैं वे भी मनुष्य हैं। भेद इतना ही है कि उनमें सामाजिक ऊँच-नीच का ऐसा भेद नहीं है। जहाँ भारतवर्ष के समाज में एक सहस्र स्तर हैं वहाँ उनके समाज में कठिनाई से दो-तीन होंगे। बहुत कुछ इन आभीरों के समान समझो। भारतवर्ष में जो ऊँचे हैं वे बहुत ऊँचे हैं, जो नीचे हैं उनकी निचाई का कोई आर-पार नहीं; परन्तु उनमें सब समान हैं। उनकी स्त्रियों में रानी से लेकर परिचारिका तक के और गणिका से लेकर वार-विलासिनी तक के सैकड़ों भेद नहीं हैं। वे सब रानी हैं, सब परिचारिका हैं। तुम उनके दुर्धर्ष रूप को ही जानते हो, उनके कोमल हृदय को एकदम नहीं जानते। क्यों भट्ट ऐसा क्या नहीं हो सकता कि ऊँची भारतीय साधना उन तक पहुँचायी जा सके और निकृष्ट सामाजिक जटिलता यहाँ से हटाई जा सके ? जब तक ये दोनों बातें साथ-साथ नहीं हो जातीं तब तक शाश्वत शान्ति असम्भव है। महामाया आधा ही देख रही हैं। बौद्ध-संन्यासियों ने भी आधा ही देखा था। भट्ट, तुम यदि इस पूर्ण सत्य का प्रचार करो तो कैसा हो !"

"मैंने विनीत भाव से उत्तर दिया, "मैं नया सुन रहा हूँ, देवि ! तुम जो भी आदेश दोगी, वह मेरे सिर-माथे होगा।"

भट्टिनी के बंकिम अपांग विकसित हो गए, चेहरा मध्याह्नकालीन तरुमल्लिका कुसुम के समान खिल गया। बोलीं, "मुझे भागवत धर्म में यह पूर्णता दिखाई देती है, भट्ट !" मेरी उत्सुकता और बढ़ गई। मैंने अधिक सुनने की आशा से पूछा, "मैं किस काम आ सकता हूँ, देवि ?" भट्टिनी ने दीप्त कण्ठ से कहा, "तुम ? तुम इस आर्यावर्त्त के द्वितीय कालिदास हो, तुम्हारे मुख से निर्मल वाग्धारा झरती रहती है, तुम्हारा अन्तःकरण पर-कल्याण कामना से परिशुद्ध है, तुम्हारी प्रतिभा हिम-निर्झरिणी की भाँति शीतल और धवल है, तुम्हारे मुख में सरस्वती का निवास है। तुम इस म्लेच्छ कही जानेवाली निर्दय जाति के चित्त में समवेदना का संचार कर सकते हो, उन्हें स्त्रियों का सम्मान करना सिखा सकते हो, बालकों को प्यार करना सिखा सकते हो। भट्ट, तुम इस भव-कानन के पारिजात हो, तुम इस मरुभूमि के निर्झर हो। तुम्हारी वाणी मेरी-जैसी अबलाओं में भी आत्मशक्ति का संचार करती है। तुम्हारी छाया पाकर अबलाएँ भी इस देश की सामाजिक जटिलता को कुछ शिथिल कर सकती हैं।"

भट्टिनी की वाग्धारा आज बाँध तोड़ देना चाहती है।

* * *

मैंने विनय-गद्गद् स्वर में कहा, "देवि, आपके अनुग्रह ने मुझे कुछ अविनीत बना दिया है, मेरी मानव-सुलभ लघिमा मुझे कुछ पूछने को बाध्य कर रही है, प्रभुओं के प्रसाद का लेशमात्र पाकर भी अधीर-प्रकृति मनुष्य चंचल हो उठता है, एक स्थान पर थोड़ी भी अवस्थिति होने से चपल व्यक्ति प्रगल्भ हो जाता है, सद्व्यवहार का कण-मात्र भी मनुष्य को प्रणय-जड़ बना देता है; सो देवि, यदि प्रसाद हो तो मैं जानना चाहता हूँ कि आपके सारे वक्तव्य का फलितार्थ क्या है ? यह कुसुम-कोमल शरीर, यह नवनीत-मृदुल हृदय, यह वज्रसार दृढ़ व्रत, यह अपूर्व भक्ति-भाव, ये देवलोक में भी दुर्लभ है। एक क्षण के लिए भी मैंने इसे गलत नहीं समझा है। मैं भली-भाँति जानता हूँ कि जाह्नवी की निर्मल धारा का उत्स कितना मनोरम होगा, पार्वती की उत्पत्ति-भूमि कितनी पवित्र होगी, पद्मा की जन्मदात्री कितनी गम्भीर होगी। जिस कुल ने इस देव-दुर्लभ सौन्दर्य को, इस ऋषि-दुर्गम सत्य व्रत को, इस कुसुम-कमनीय चारुता को उत्पन्न किया है – वह धन्य है, वह कुल पवित्र है, वह जननी कृतार्थ है, वह पिता सफलकाम है। देवि, तुममें निश्चय ही वह शक्ति है जिससे म्लेच्छ जाति का हृदय संवेदनशील बनेगा, उनमें उच्चतर साधना का संचार होगा, वे सम्मानित-भूमि का सम्मान सीखेंगे। परन्तु मैं चाहूँ भी तो अपनी काव्य-शक्ति कैसे तुम्हारे भीतर संचारित कर सकूँगा ? फिर भी इस आर्यावर्त्त के जटिल स्तर-भेद को दूर करने के लिए तो मेरे पास कोई शक्ति है ही नहीं। मैं स्पष्ट सुनना चाहता हूँ देवि, यह सम्भव कैसे होगा !"

भट्टिनी के अधरों पर मन्द स्मित दिखाई दिया, बोलीं, "अद्भुत है भट्ट, आश्चर्य है, अपूर्व है यह तुम्हारी निर्मल वाग्धारा। मेरा जन्म सार्थक है, मेरा भाग्यहीन जीवन भी आज कृतार्थ है, तुम्हारी इन स्तुतियों ने मेरे अन्तर में अपूर्व आत्मगरिमा संचरित की है। तुम क्या समझते हो कि मैं रानी की मर्यादा पाने से संतुष्ट हो गई हूँ? ना भट्ट,

तुम्हारी इस पवित्र वाक्-स्रोतस्विनी में स्नान करके ही मैं पवित्र हुई हूँ। इसी से मुझमें आत्मबल आया है। तुम्हारे निष्कलुष हृदय को देखकर ही मुझे सेवा का प्रशस्त पथ दिखा है। तुम जो कहते हो वह कठिन क्या है भला !"

भट्टिनी ने मुझे बहुत सोचने का अवसर नहीं दिया। बोलीं, "लेकिन छोड़ो अभी इस बात को। आचार्य भर्वुपाद एक सप्ताह के भीतर ही आ जाएँगे। कौन जाने, मेरे भाग्य में कहाँ जाना बदा है; इस बीच कुमार कृष्णवर्द्धन महाराजाधिराज को यहाँ ले आनेवाले हैं। मेरे मन में आज किसी के प्रति कोई कल्मष नहीं है। मेरे पास ऐसा क्या है जो उन लोगों के अनुग्रह के प्रतिपादन में दे सकूँ। मेरे एक तुम हो, सब प्रकार से तुम्हारे ऊपर ही मुझे निर्भर रहना है। कुछ ऐसा करना कि महाराजाधिराज के अनुकूल उनका स्वागत हो सके। सुना है, आज हमारे स्वागत के लिए नगर के श्रेष्ठ कलाविद् जुटाए गए हैं, हमारे तो सर्वस्व तुम्हीं हो।" इतना कहकर भट्टिनी ने मेरी ओर विश्वास के साथ देखा। उनकी आँखों में कृतज्ञता के आँसू थे।

इसी समय द्वारी ने आकर समाचार दिया कि कोई सज्जन मुझसे मिलने आए हैं। बाहर आकर देखता हूँ तो धावक है।

* * *

धावक ने उल्लसित भाव से कहा, "हे भगवान्, मिला है मगध देश का भकुआ ! अरे गुरु, यह उत्सव क्या तुम्हारी भट्टिनी के लिए हो रहा है? यह तो कान्यकुब्ज की विद्रोही जनता को राजशक्ति की ओर से मदिरा पिलाई जा रही है। भट्टिनी का स्वागत तो उपलक्ष्य है। यहाँ की भोंड़ी जनता को अनुप्रास से क्या मतलब। चारुस्मिता और विद्युदपांगा का नृत्य जो भी हो और जैसा भी हो, यहाँ धूम मच जाएगी। मेधातिथि और वसुभूति सिर पटकके मर जाएँगे, कान्यकुब्ज की जनता महाराजाधिराज का यश गाएगी। गुरु, तुम इतना भी नहीं समझते और देवपुत्र-नन्दिनी के मन्त्री बने हो !" धावक ने बिलकुल परवा न की कि उसके इस कथन का मेरे ऊपर क्या प्रभाव पड़ा।

* * *

मुझे चिन्तित देखकर निपुणिका फिर बोली, "घबराने की बात नहीं, मैं बताए देती हूँ। तुम्हें फिर से अभिनय का अभ्यास करना पड़ेगा और मुझे भी। मेरे मुँह से भट्टिनी ने तुम्हारे अभिनय-कौशल की अनेक बातें सुनी हैं। उनकी प्रच्छिन्न अभिलाषा है कि तुम्हारा मनोहर अभिनय देखें। तुम्हारा यह कविमित्र कहता था कि महाराजाधिराज ने कोई नई नाटिका लिखी है। उसी को उस दिन क्यों नहीं रंगभूमि पर उतार देते ?" निपुणिका ने मुझे एकदम नई उलझन में डाल दिया। मैंने तो यह अभिनय का व्यापार बहुत दिनों से छोड़ दिया है। भट्टिनी के सामने अभिनय करना तो एकदम असम्भव-सा ही लग रहा है। पर उनकी अभिलाषा है तो असाध्य में भी कूदना ही पड़ेगा। मैंने अधिक जानने के उद्देश्य से पूछा, "तुझे रंगभूमि पर अब भी उतरने का साहस है निउनिया !" निपुणिका ने आँखें नीची कर लीं। उसकी हँसी क्षण-भर में लुप्त हो गई, एक दीर्घ निःश्वास ने उसके पाण्डुर मुख-मण्डल को धूमिल बना डाला, बोली, "अभिनय ही तो कर रही हूँ। जो वास्तव है उसको दबाना और जो अवास्तव है उसका आचरण करना – यही तो अभिनय है। सारे जीवन यही अभिनय किया है। एक दिन रंगमंच

पर उतर जाने से क्या बन या बिगड़ जाएगा।" निपुणिका की बातों ने मेरा हृदय कुरेद डाला। सचमुच ही क्या यह जीवन अभिनय है ? यह पग-पग का बन्धन, श्वास-श्वास का दमन अभिनय ही तो है ! निपुणिका इसके लिए दुःख है, परन्तु यह छूटेगा कैसे ! एक क्षण में मेरा मन जीवन की इस बन्धन-जड़िमा की ओर चला गया। परन्तु दूसरे ही क्षण मुझे इसकी उत्तम कोटि भी समझ में आ गई। यह बन्धन ही चारुता है, संयम है। निपुणिका व्यर्थ परेशान हो रही है। इस बाधा के कगारों से बँधी हुई जीवन-सरिता ही गतिशील होती है, सरस होती है, मधुर होती है। "न निउनिया, बन्धन ही सौन्दर्य है, आत्म-दमन ही सुरुचि है, बाधाएँ ही माधुर्य हैं। नहीं तो यह जीवन व्यर्थ का बोझ हो जाता। वास्तविकताएँ नग्न रूप में प्रकट होकर कुत्सित बन जाती हैं।" उद्दीपित दीपशिखा जिस प्रकार अन्धकार को दूर कर देती है उसी प्रकार इस छोटी-सी बात ने मेरे हृदय को प्रकाशित कर दिया। म्लेच्छ जाति में इसी संयम का अभाव है, आत्म-नियन्त्रण की कमी है। उन्हें यही चाहिए। भारतीय समाज ने बन्धन को सत्य मानकर संसार को बहुत बड़ी चीज दी है। हम दोनों देर तक मौन बैठे रहे। बाहर घनघोर वर्षा हो रही थी और भीतर विचार-प्रवाह तीव्र वेग से बह रहे थे। ऐसे ही समय मधुर-कोमल कण्ठ से समस्त शून्यता को भरती हुई भट्टिनी ने महावराह की स्तुति पढ़ी –

जलौघमग्ना सचराचरा धरा विषाणकोट्याऽखिलविश्वमूर्त्तिना।
समुद्धृता येन वराहरूपिणा स मे स्वयंभूर्भगवान् प्रसीदतु॥

हमारा ध्यान भंग हुआ। भट्टिनी की पूजा समाप्त हो गई है। निपुणिका जैसे नींद से उठी। बोली, "हाँ भट्ट, बन्धन ही माधुर्य है !" और भट्टिनी के पास चली गई !

उन्नीसवाँ उच्छवास

वृद्ध वाभ्रव्य ने दीर्घ निःश्वास लिया। भट्टिनी की ओर देखकर बोला, "बेटी, यद्यपि मैंने महाराज के सामने अपना अपराध स्वीकार कर लिया तथापि मेरे भीतर से बराबर यही ध्वनि निकलती रही कि मैंने उचित ही किया है। आज मालूम हो रहा है कि मेरा दूसरा प्रमाद भी अच्छा ही हुआ था।" इतना कहकर वृद्ध चुप हो गया। बड़े स्नेह के साथ वह भट्टिनी के ललाट पर हाथ फेरने लगा। बड़ी देर तक वहाँ सभी निस्तब्ध बैठे रहे। अन्त में उस वृद्ध ने ही उपसंहार किया। बोला, "आर्यावर्त्त नाश से बच जाएगा। देवपुत्र-नन्दिनी और महामाया भैरवी उसे बचा लेंगी। योगी की भविष्यवाणी व्यर्थ नहीं जाएगी। सिद्धवाक् पुरुषों की वाणी मृषा नहीं होती।" फिर निपुणिका की ओर देखकर वह बोला, "बेटी, तू धन्य है ! मैंने तुझे अनेक अभिशाप दिए हैं। आज मैं अपने सभी अभिशापों को वरदान समझ रहा हूँ। मैं आज स्पष्ट देख रहा हूँ कि जितने बँधे-बँधाए नियम और आचार हैं उनमें धर्म अँटता नहीं। वह नियमों से बड़ा है, आचारों से बड़ा है। मैं जिनको धर्म समझता रहा वे सब समय और सभी अवस्था में धर्म ही नहीं थे, जिन्हें अधर्म समझता रहा वे सभी सब समय और सभी अवस्था में अधर्म ही नहीं कहे जा सकते। योगी ने मुझे बताया था कि जिस दिन तू धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म समझ लेगा उसी दिन त्रिपुरसुन्दरी का साक्षात्कार पा सकेगा। आश्चर्य है !"

निपुणिका के कृतज्ञतापूर्वक वृद्ध को देखा, बोली, "एक बात पूछने की इच्छा होती है, आर्य, मौखरि-नरेश को योगी ने दूसरा विवाह करने को क्यों कहा था, उससे क्या आर्या राज्यश्री जैसी साध्वी का जीवन व्यर्थ नहीं हो गया ? वैधव्य से बड़ी व्यर्थता स्त्री के लिए और क्या हो सकती है, आर्य ?" वृद्ध ने डाँटा – "छिः निउनिया, ऐसा भी कहते हैं ! राज्यश्री का जीवन व्यर्थ हुआ है ? भोली लड़की, सार्थकता क्या है ? योगी ने ठीक ही कहा था, अपने को निःशेष भाव से दे देने को ही वशीकरण कहते हैं। अन्तिम जीवन में मौखरि-नरेश को यह सिद्धि मिल गई थी। देख बिटिया, मनुष्य जितना देता है उतना ही पाता है। प्राण देने से प्राण मिलता है, मन देने से मन मिलता है। आत्मदान ऐसी वस्तु है जो दाता और गृहीता दोनों को सार्थक करती है। राज्यश्री ने वह दान दिया भी था और पाया भी था। लौकिक मानदण्ड से आनन्द नामक वस्तु को नहीं मापा जा सकता। दुःख तो केवल मन का विकल्प ही है, मनुष्य तो नीचे से ऊपर तक केवल परमानन्दस्वरूप है। अपने को निःशेष भाव से देने से ही दुःख जाता रहता है, परमानन्द प्राप्त होता है। मुझे उस योगी की बात भावपूर्ण लगी थी। मैं एक बार और उसके पास गया था, परन्तु उस भलेमानस ने मुझे डाँटकर भगा दिया था। केवल एक वाक्य उसने कहा था – 'मूर्ख – तू यदि दुःख को सुख मान सकता !' कहाँ मान सका हूँ, बिटिया !"

थोड़ी देर तक फिर सन्नाटा रहा। मैंने पूछा, "आर्य, युवा तापस का नाम क्या अघोरभैरव था ?"

वृद्ध ने आश्चर्ययुक्त आनन्द के साथ कहा, "हाँ भट्ट ! विकट नाम है।"

निपुणिका ने भट्टिनी की ओर देखा। भट्टिनी के हरिणी के समान नेत्र फैलकर कान तक पहुँच गए। बोलीं, "आश्चर्य है, अद्भुत है !" और मेरी ओर देर तक आविष्ट भाव से देखती रहीं। निपुणिका खोई-सी खड़ी रही। थोड़ी देर तक उसमें स्पन्दन का लेश भी अनुभूत नहीं हुआ। फिर जैसे स्वप्नोत्थिता की भाँति बोल उठी – "अपने को निःशेष भाव से दे देना ही वशीकरण है !"

बीसवाँ उच्छवास

भट्टिनी के स्कन्धावार में उस समय शान्ति थी। मैं मन-ही-मन डर रहा था कि शोकतप्त भट्टिनी को एकाकी छोड़ने से कहीं कोई और अनर्थ न हो जाए, परन्तु उस शान्ति से मेरा चित्त कुछ आश्वस्त हुआ। भीतर जाकर देखता हूँ तो भट्टिनी का सिर गोद में लेकर सुचरिता बैठी है। इधर सुचरिता नित्य ही पहर रात बीतने पर आया करती थी। सायंकाल की पूजा तथा पति और गुरु की परिचर्या यथाविधि समाप्त कर लेने के बाद ही उसे समय मिलता था। आज आते ही उसने निपुणिका की मृत्यु का संवाद सुना। वह चिता पर फूल चढ़ाने के उद्देश्य से जाना चाहती थी; परन्तु भट्टिनी की शोक-व्याकुल अवस्था देखकर रुक गई थी। यह अच्छा ही हुआ, नहीं तो भट्टिनी की उस समय जो अवस्था थी उससे अनर्थ हो जाने की आशंका थी। सुचरिता शान्त-निस्पन्द प्रतिमा की भाँति बैठी थी और भट्टिनी अर्द्धशायित भाव से उसकी गोद में लेटी हुई स्थित दृष्टि से आकाश की ओर देख रही थीं। मुझे उन्होंने नहीं देखा। सुचरिता ने संकेत से चुपचाप बैठ जाने को कहा। दीर्घकाल तक वहाँ उसी प्रकार की शान्ति रही। भट्टिनी की आँखों में अश्रु नहीं थे, अन्तर्वर्त्ती शोकाग्नि ने उन्हें एकदम सुखा दिया था। उनकी आँखें न जाने

किस अनन्त की ओर उड़ जाने को व्याकुल थीं। अवश भुजलताएँ सुचरिता की गोद में झूल पड़ी थीं और शिथिल धम्मिल्ल उसके वाम स्कन्ध पर विलुलित हो रहा था। भट्टिनी की इस दारुण अवस्था से मेरा हृदय फटा जा रहा था। निपुणिका, तूने यह क्या किया! सारे जीवन को तूने तिल-तिल देकर जिस पाषाण को प्रसन्न करना चाहा था वह अन्त तक पाषाण-पिण्ड ही बना रहा, पर जिस नवनीत-पुत्तलिका को तूने वल्कल की भाँति आच्छादित कर रखा था वह कैसी हो गई है! हाय, अभागे बाणभट्ट को यह दिन भी देखने थे! आर्य वाभ्रव्य ने जबसे कहा था कि अपने को निःशेष भाव से दे देना ही वशीकरण है उसी दिन से निपुणिका में परिवर्त्तन शुरू हो गया। रत्नावली की वासवदत्ता में उसने वही वैशिष्ट्य देखा था। छिः सरले, वशीकरण के लिए यह कैसा आत्मदान है! मैंने आँख मूँदकर स्पष्ट ही देखा कि निपुणिका स्वर्ग में प्रसन्न भाव से विचरण कर रही है। वह मुस्कराकर कह रही है – 'मैंने कुछ भी नहीं रखा; अपना सबकुछ तुम्हें दे दिया और भट्टिनी को भी दे दिया। दोनों दानों में कोई विरोध नहीं है। प्रेम की दो परस्पर विरुद्ध दिशाएँ एकसूत्र हो गई है!' हाय, क्या सचमुच ये एकसूत्र हो गई हैं।

* * *

सुचरिता के चले जाने के बाद धावक और चारुस्मिता भी विदा हुई। मैं अकेला भट्टिनी के पास रह गया। आज मेरा हृदय टूक-टूक हो जाना चाहता था। निपुणिका-विहीन भट्टिनी की कल्पना मैंने कभी नहीं की थी। भट्टिनी तब भी सोई हुई थीं; परन्तु उनके अंग-अंग में अवसन्न चैतन्य काँप रहा था। वस्तुतः वह निद्रा की कम और समाधि की अवस्था में अधिक थीं, केवल उनकी चित्तवृत्तियाँ अपनी अदृश्य सहचरी में विलीन हो गई थीं। धीरे-धीरे प्रातःकाल हो आया। भट्टिनी उठीं, उनकी खिन्न आँखें कोने-कोने में घूम गईं; मानो जो खो गई है उसके खोने में कितनी रिक्तता आ गई है इसका हिसाब कर रही हों। शय्या से उठीं तो ऐसा लगा कि किसी का करावलम्ब खोज रही हों। मैंने निकट जाकर कहा, "क्या आज्ञा है, देवि!" भट्टिनी ने मेरे हाथों का सहारा लिया और स्नान करने की इच्छा प्रकट की। मैंने उन्हें स्नान-गृह तक पहुँचा दिया। मैं चुपचाप शय्या के पास आकर बैठ गया। थोड़ी देर बाद भट्टिनी का पदसंचार सुनाई दिया। वे महावराह की मूर्त्ति की ओर चली गईं। एक क्षण बाद उन्होंने पुकारा। उनका गला भरा हुआ था। बोलीं, "आज महावराह की स्तुति तुम्हीं पढ़ दो भट्ट, मैं नहीं पढ़ सकती।"

गला तो मेरा भी रुँधा हुआ था; पर भट्टिनी की आज्ञा पालन करना ही चाहिए, यही सोचकर मैंने व्याकुल कण्ठ से वह स्तुति पढ़ी। हे जलौघमग्ना सचराचरा धरा के समुद्धर्त्ता, यह कैसा परिहास है तुम्हारा! दीनानाथ, इसमें कौन-सी कल्याण-कामना छिपी है तुम्हारी? निपुणिका चली गई, भट्टिनी परकटी कोकिला की भाँति अवसन्न हैं। तुम्हारी स्तुति कौन गावे? जैसे-तैसे मैंने पढ़ा –

जलौघमग्ना सचराचरा धरा विषाणकोट्याऽखिलविश्वमूर्त्तिना।
समुद्धृता येन वराहरूपिणा स मे स्वयंभूर्भगवान् प्रसीदतु॥

भट्टिनी अवसन्नव होकर महावराह के पाद-प्रान्त में लुढ़क गईं, हाय, यह क्या दूसरा अनर्थ हुआ ? उनका मुख-मण्डल प्रभातकालीन चन्द्र-मण्डल के समान निष्प्रभ हो गया। मैंने भट्टिनी का सिर गोद में ले लिया। महावराह के लिए निवेदित पवित्र जल के दो-चार बूँद मुख में दिए और कातर भाव से प्रार्थना की – "हे भगवान्, मेरे पापों का प्रायश्चित क्या अभी नहीं हुआ है ? अखिल ब्रह्माण्डगुरो, यहाँ तक घसीटकर तुम मुझे नरक द्वारा पर छोड़ना चाहते हो ? हे त्रिभुवन-मोहिनी, भट्टिनी को बचाओ।" मेरी प्रार्थना व्यर्थ नहीं गई भट्टिनी की आँखें खुल गईं। वे अवश भाव से शून्य दृष्टि से ताक रही थीं। मैंने उत्साह देने के लिए कहा, "देवि, उठो, तुम्हें कातर होना नहीं शोभता। नरलोक से किन्नरलोक तक व्याप्त एक ही रागात्मक हृदय का सन्धान पाना बाकी है। अपने सेवक को उचित मार्ग-प्रदर्शन करो। निपुणिका शोच्य नहीं है। शोच्य मैं हूँ। मुझे और भी अनाथ मत बनने दो। उठो देवि, आर्यावर्त्त को बचाना है, म्लेच्छ से देश को बचाना है, मनुष्य जाति को बचाना है। देवपुत्र-नन्दिनी की यह अवशता उचित नहीं है।" भट्टिनी की शिराओं में चैतन्यधारा प्रवाहित हुई। उन्होंने गोद में से सिर उठाने का प्रयत्न नहीं किया। क्षीण कण्ठ से बोलीं, "नीचे से ऊपर तक एक ही रागात्मक हृदय व्याप्त है। निपुणिका ने उसे स्पष्ट कर दिया है। क्या कहते हो भट्ट, तुम मेरी सहायता करने का वचन देते हो ?" मैंने अविचलित कण्ठ से कहा, " हाँ देवि, सेवक प्रत्येक आज्ञा के लिए तैयार है।"

भट्टिनी उठकर बैठ गईं। धीरे-धीरे बोलीं, "आर्यावर्त्त की विपत्ति इस बार कट गई है, भट्ट। आचार्य भर्वुपाद ने बताया है कि इस अल्पकाल में ही महामाया के लाखों शिष्य पुरुषपुर के आगे एकत्र हो गए हैं। इनमें अधिकांश अशिक्षित और असंघटित थे। मेरे पिता ने उनको संघटित करने का काम आरम्भ कर दिया है। कुभा के उस पार दस्युओं का कोई सन्धान नहीं पाया गया है। सम्भवतः वे लौट गए हैं। परन्तु म्लेच्छ कहे जानेवालों का हृदय अभी परिवर्त्तित नहीं हुआ है। तुम मेरे साथ चलकर उनमें काम करने को तैयार हो जाओ। हाय भट्ट, निपुणिका को मेरी बात कभी जँची ही नहीं। मैं उसे कभी इस सत्य की ओर उन्मुख नहीं कर सकी, वह अपने रास्ते चली गई।"

मैंने भट्टिनी के साथ चलने का वचन दे दिया। उल्लसित होकर भट्टिनी ने और उनकी आज्ञा से मैंने साथ-ही-साथ महावराह को प्रणाम किया। महावराह ने गोपन हास्य से हमारे उल्लास का तिरस्कार किया होगा, क्योंकि निपुणिका का श्राद्ध समाप्त होते ही आचार्य भर्वुपाद ने मुझे पुरुषपुर जाने की आज्ञा दी। उन्होंने स्पष्ट रूप में आदेश दिया कि भट्टिनी तब तक स्थाण्वीश्वर में ही रहेंगी। भट्टिनी ने सुना तो उनका मुख विवर्ण हो गया। झुकी हुई आँखों को और भी झुकाकर बोलीं, "जल्दी ही लौटना।"

मैंने कातर कण्ठ के वाष्प-रुद्ध वाक्य को प्रयत्नपूर्वक दबा लिया। लेकिन अन्तरात्मा के अतल गह्वर से कोई चिल्ला उठा – 'फिर क्या मिलना होगा ?'

उपसंहार

'बाणभट्ट की आत्मकथा' का इतना ही अंश मिला था। स्पष्ट ही यह कथा अपूर्ण है। मेरा विचार था कि कथा की जाँच केवल 'बाणभट्ट' की उपलब्ध पुस्तकों से सादृश्य रखनेवाले अंशों के साथ तुलना करने तक ही सीमित न रखी जाए बल्कि उसकी भीतरी साहित्यिक जाँच भी की जाए। कादम्बरी शैली के साथ कथा की शैली में ऊपर-ऊपर से बहुत साम्य दिखता है, आँखों का प्राधान्य इसमें भी अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा अधिक है – रूप का, रंग का, शोभा का, सौन्दर्य का, इसमें भी जमकर वर्णन किया गया है; पर इतने ही से साहित्यिक जाँच समाप्त नहीं हो जाती। कथा को ध्यान से पढ़नेवाला प्रत्येक सहृदय अनुभव करेगा कि कथा-लेखक जिस समय कथा लिखना शुरू करता है उस समय उसे समूची घटना ज्ञात नहीं है। कथा बहुत-कुछ आजकल की 'डायरी' शैली पर लिखी गई है। ऐसा जान पड़ता है कि जैसे-जैसे घटनाएँ अग्रसर होती जाती हैं वैसे-वैसे लेखक उन्हें लिपिबद्ध करता जा रहा है। जहाँ उसके भावावेग की गति तीव्र होती है वहाँ वह जमकर लिखता है; परन्तु जहाँ दुःख का आवेग बढ़ जाता है वहाँ उसकी लेखनी-शिथिल हो जाती है। अन्तिम उच्छवासों में तो वह जैसे अपने ही में धीरे-धीरे डूब रहा है। मुझे यह बात विचित्र लगी। संस्कृतसाहित्य में यह शैली एकदम अपरिचित है। मुझे यह बात सन्देहजनक भी मालूम हुई। एक बात और है। कादम्बरी में प्रेम की अभिव्यक्ति में एक प्रकार की दृप्त भावना है; परन्तु इस कथा में सर्वत्र प्रेम की व्यंजना गूढ़ और अदृप्त भाव से प्रकट हुई है। ऐसा जान पड़ता है कि एक स्त्री-जनोचित लज्जा सर्वत्र उस अभिव्यक्ति में बाधा दे रही है। सारी कथा में स्त्री-महिमा का बड़ा तर्कपूर्ण और जोरदार समर्थन है। कथा का जिस ढंग से आरम्भ हुआ है उसकी स्वाभाविक परिणति गूढ़ और अदृप्त प्रेम ही हो सकती है। मुझे कथा के स्वाभाविक विकास की दृष्टि से इसमें कोई विरोध या दोष नहीं दिखता; पर बाणभट्ट की लेखनी से सम्भवतः अधिक स्पष्ट और अधिक दृप्त अभिव्यक्ति की आशा की जा सकती है। फिर कादम्बरी में प्रेम के जिन शारीरिक विकारों का – अनुभावों का, हावों का, अयत्नज अलंकारों का – प्राचुर्य है उनके स्थान में कथा में मानसविकारों का – लज्जा का, अवहित्था का, जड़िमा का – अधिक प्राचुर्य है। यह बात भी मुझे खटकनेवाली लगी। मैं उदाहरण देकर बातों को समझाने का संकल्प कर रहा था।

ऐतिहासिक दृष्टि से तुवरमिलिन्द एक समस्या है। बाणभट्ट ने कादम्बरी के आरम्भ में भर्वुशर्मा की स्तुति की है। ये बाणभट्ट के गुरु थे। इस कथा में अवधूत अघोरभैरव के प्रति बाणभट्ट की आस्था अधिक प्रकट हुई है, भर्वुशर्मा के प्रति कम। 'धावक' के शब्दार्थ को देखकर कुछ यूरोपियन पण्डितों ने अनुमान भिड़ाया है कि यह कवि जाति का धोबी था। कथा ये यह बात समर्थित नहीं होती। इतिहास की दृष्टि से छोटी-मोटी कुछ असंगतियाँ चाहे निकल आवें पर अधिकांश में उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री से कथा की सामग्री का कोई विरोध नहीं है। विशेष लक्ष्य करने की बात है इस कथा के भौगोलिक स्थान। स्थाण्वीश्वर और चरणाद्रि दुर्ग (चुनार) का नाममात्र का उल्लेख है, परन्तु भद्रेश्वर दुर्ग और उसके समीपवर्त्ती स्थानों का कुछ अधिक वर्णन है, जो काफी संकेतपूर्ण है।

कथा से 'रत्नावली' की 'जितमुडुपतिना' श्लोकवाली समस्या का पूर्ण समाधान हो जाता है। यह श्लोक बहुत दिनों से पण्डितों के वाग्विलास का विषय बना हुआ है। अभी तक इसकी कोई अच्छी व्याख्या नहीं की जा सकी है। तरह-तरह के अटकल लगाए गए हैं। कथा अगर प्रामाणिक है तो इस समस्या का सुन्दर समाधान हो

जाता है। मैंने सोचा था कि इन महत्त्वपूर्ण सूचनाओं को देनेवाली कथा की परीक्षा सावधानी से की जानी चाहिए। इसी समय दीदी का यह पत्र मिला है। कथा का रहस्य इस पत्र के कितना खुलता है, यह सहृदयों के विचार के लिए ही छोड़ देता हूँ। अपना मत संक्षेप में ही कहकर समाप्त कर दूँगा।

'प्रिय व्योम,

छह वर्षों से आस्ट्रिया के दक्षिणी भाग में निराशा और पस्तहिम्मती की ज़िंदगी बिता रही हूँ। तुमने युद्ध के घिनौने समाचार पढ़े होंगे, लेकिन उसके असली निर्घृण क्रूर रूप को तुम लोगों ने नहीं देखा। देखते तो मेरी ही तरह तुम लोग भी मनुष्य-जाति की जययात्रा के प्रति शंकालु हो जाते। यह अच्छा ही हुआ कि तुमने यह घृणित नर-संहार नहीं देखा। यह मनुष्य का नहीं, मनुष्यता के वध का दृश्य था। मैं छह वर्षों तक साँस रोककर इस वृद्धावस्था में यह बीभत्स दृश्य देखती रही। लाखों युवक और युवतियाँ, बच्चे और बच्चियाँ मर गईं और दुर्भाग्य ने न जाने मुझ वृद्धा को क्यों बचा लिया। तूने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' छपवा दी, यह अच्छा ही किया। पुस्तक रूप में न सही, पत्रिका रूप में छपी कथा को देख सकी हूँ, यही क्या कम है। अब मेरे दिन गिने-चुने ही रह गए हैं। इसके पहले 'कथा' के बारे में जो पत्र लिखा था उसे मत छपाना। मैं अब फिर तुम लोगों के बीच नहीं आ सकूँगी। मैं सचमुच संन्यास ले रही हूँ। मैंने अपने निर्जन वास का स्थान चुन लिया है । यह मेरा अन्तिम पत्र है। 'आत्मकथा' के बारे में तूने एक बड़ी गलती की है। तूने उसे अपने 'कथामुख' में इस प्रकार प्रदर्शित किया है मानो वह 'ऑटो-बॉयोग्राफी' हो। ले भला ! तूने संस्कृत पढ़ी है ऐसी ही मेरी धारणा थी, पर यह क्या अनर्थ कर दिया तूने। बाणभट्ट की आत्मा शोण नद के प्रत्येक बालुका-कण में वर्त्तमान है। छिः, कैसा निर्बोध है तू, उस आत्मा की आवाज तुझे नहीं सुनाई देती? देख रे, तू पुरुष है, तू युवक है, तुझे इतना प्रमाद नहीं शोभता।

'उस भाग्यहीन बिल्ली ने बच्चों की एक पल्टन खड़ी कर दी है। युद्ध में इतने बम गिरे लेकिन इन शैतानों में से एक भी नहीं मरा। मैं कहाँ तक सम्हालूँ। जीवन में एक बार जो चूक हो जाती है वह हो ही जाती है। इस बिल्ली का पोसना भी एक भूल ही थी। तुमसे मेरी एक शिकायत बराबर रही है। तू बात नहीं समझता। भोले, 'बाणभट्ट' केवल भारत में ही नहीं होते। इस नरलोक से किन्नरलोक तक एक ही रागात्मक हृदय व्याप्त है। तूने अपनी दीदी को कभी समझने की चेष्टा भी की ! प्रमाद, आलस्य और क्षिप्रकारिता – तीन दोषों से बच। अब रोज-रोज तेरी दीदी इन बातों को समझाने नहीं आएगी। जीवन की एक भूल – एक प्रमाद – एक असमंजस न जाने कब तक दग्ध करता रहता है। मेरा आशीर्वाद है कि तू इन बातों से बचा रहे। दीदी का स्नेह। – कै.'

तो 'आत्मकथा' का अर्थ 'ऑटो-बायोग्राफी' समझकर दीदी की दृष्टि में मैंने अनर्थ कर दिया है ! जहाँ तक मेरे प्रमाद, आलस्य और अज्ञान का प्रश्न है वहाँ तक तो मेरा अपना ही अधिकार है। परन्तु इस पत्र में सिर्फ इतना ही नहीं है। कुछ सहृदयों का भी प्राप्य है। मुझे याद आया कि दीदी उस दिन बहुत भाव-विह्वल थीं। उन्होंने एक शृगाल की कथा सुनानी चाही थी। उनका विश्वास था कि शृंगाल बुद्धदेव का समसामयिक था। क्या बाणभट्ट का कोई समसामयिक जन्तु भी उन्हें मिल गया था? शोण नद के अनन्त बालुका-कणों में से न जाने किस कण ने बाणभट्ट की आत्मा की यह मर्मभेदी पुकार दीदी को सुना दी थी। हाय, उस वृद्ध हृदय में कितना परिताप संचित

है ! अस्त्रियवर्ष की यवनकुमारी देवपुत्रनन्दिनी क्या आस्ट्रिया-देशवासिनी दीदी ही हैं ! उनके इस वाक्य का क्या अर्थ है कि 'बाणभट्ट केवल भारत में ही नहीं होते।' आस्ट्रिया में जिस नवीन 'बाणभट्ट' का आविर्भाव हुआ था वह कौन था। हाय, दीदी ने क्या हम लोगों के अज्ञात अपने उसी कवि प्रेमी की आँखों से अपने को देखने का प्रयत्न किया था ! यह कैसा रहस्य है ! दीदी के सिवा और कौन है जो इस रहस्य को समझा दे ? मेरा मन उस 'बाणभट्ट' का सन्धान पाने को व्याकुल है। मैंने क्यों नहीं दीदी से पहले ही पूछ लिया। मुझे कुछ तो समझना चाहिए था। लेकिन 'जीवन में जो भूल एक बार हो जाती है वह हो ही जाती है !'

पत्र पढ़ने के बाद मेरे चित्त में यही प्रतिक्रिया हुई है। यदि मेरा अनुमान ठीक है तो साहित्य में यह अभिनव प्रयोग है। मध्ययुग के किसी कवि ने राधिका की इस उत्कट अभिलाषा का वर्णन किया है कि वे समझ सकतीं कि कृष्ण उनमें क्या रस पाते हैं। श्रीकृष्ण ने भी, कहते हैं कि, राधिका की दृष्टि से अपने को देखना चाहा था और इसीलिए नवद्वीप में चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए थे। काव्य की और धर्म-साधना की दुनिया में जो कल्पना थी उसे दीदी ने अपने जीवन में सत्य करके दिखा दिया। मुझे इस बात से एक अपूर्व आनन्द अनुभूत हो रहा है। परन्तु सहृदयों के मार्ग में इस व्याख्या को मैं बाधक नहीं बनाना चाहता। इसीलिए मैं साहित्यिक समीक्षा के संकल्प से विरत हो रहा हूँ। कथा जैसी है वैसी सहृदयों के सामने है। – व्यो.

.....

1. तुलनीय – 'कादम्बरी', कथामुख 2
2. तुलनीय – 'कादम्बरी', कथामुख 12
3. तुलनीय – 'कादम्बरी', 19 : 'हर्षचरित', द्वितीय उच्छ्वास, पृ. 33
4. 'हर्षचरित' में बाण के एक पितृव्य-पुत्र का नाम तारापति लिखा है। उडुपति शायद वे ही हों।
5. तुलनीय – 'हर्षचरित', प्रथम उच्छ्वास।
6. यह वर्णन 'कादम्बरी' में शुकनास के पुत्रोत्सवकालीन यात्रा के वर्णन से मिलता है।
7. तुलनीय – 'हर्षचरित', द्वितीय उच्छ्वास, पृ. 40
8. कालिदास के निम्नलिखित श्लोक से तुलनीय –

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दरा-पुष्पैः
पत्रच्छेद्यैः कनककमलैः कर्ण-विभ्रम् शिभिश्च।
मुक्ताजालैः स्तनपरिचितच्छिन्नसूत्रैश्च हारैः
नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम्॥

– ('मेघदूत', 68)

9. तुलनीय –

सत्यस्य वचनं श्रेयः सतयादपि हितं वदेत्।
यद् भूतहितमप्यन्तमेतत्सत्यं मतं मम॥

– ('महाभारत', शान्तिपर्व, 229-13)

10. तुलनीय –

शून्यता पुण्यकामेन वक्तव्या नैव सर्वदा।
औषधम् युक्तामस्थाने गरलं ननु जायते॥

– (चतुःशतक, 8-18)

11. तुलनीय –

रत्नानि विभूषयन्ति योषा भूषयन्ते वनिता न रत्नकान्त्या।
चेतो वनिता हरन्त्यरत्ना नो रत्नानि विनांगनांगसंगात्॥

– ('बृहत्संहिता' 74-2, वराहमिहिर)

12. बहुत परवर्ती ग्रन्थ 'भक्तिरसामृतसिंधु' के इस वचन से तुलना की जा सकती है –

'प्रेमैव ब्रजरामाणां काम इत्यभिधीयते।'

13. तुलनीय –

शिलाशयां तामनिकेतवासिनी निरन्तरास्वन्तरवाष्पवृष्टिसु।
व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्त डिन्मयैर्महातपः साक्ष्य इव स्थिताः क्षपाः॥

– (कुमारसम्भव, 5-25)

14. तुलनीय –

हेतु स्वचेतोविकृतेर्दिदृक्षुर्दिशामुपान्तेषु ससर्ज दृष्टिम्।

– (कुमारसम्भव, 3-69)

❖❖❖

उसने कहा था

– चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी'

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ीवालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है, और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बंबूकार्टवालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ चाबुक से धुनते हुए, इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट-सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पोरों को चींथ कर अपने-ही को सताया हुआ बताते हैं, और संसार-भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने, नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरीवाले तंग चक्करदार गलियों में, हर-एक लड्ढीवाले के लिए ठहर कर सब्र का समुद्र उमड़ा कर बचो खालसाजी। हटो भाईजी। ठहरना भाई। आने दो लालाजी। हटो बाछा, कहते हुए सफेद फेंटों, खच्चरों और बत्तकों, गन्ने और खोमचे और भारेवालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि जी और साहब बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती नहीं; पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती, तो उनकी बचनावली के ये नमूने हैं – हट जा जीणे जोगिए; हट जा करमाँवालिए; हट जा पुत्तां प्यारिए; बच जा लंबी वालिए। समष्टि में इनके अर्थ हैं, कि तू जीने योग्य है, तू भाग्योंवाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहिए के नीचे आना चाहती है? बच जा।

ऐसे बंबूकार्टवालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दुकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था, और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दुकानदार एक परदेसी से गुथ रहा था, जो सेर-भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

'तेरे घर कहाँ हैं?'

'मगरे में; और तेरे?'

'माँझे में; यहाँ कहाँ रहती है?'

'अतरसिंह की बैठक में; वे मेरे मामा होते हैं।'

'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरु बजार में हैं।'

इतने में दुकानदार निबटा, और इनका सौदा देने लगा। सौदा ले कर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जा कर लड़के ने मुसकरा कर पूछा, – 'तेरी कुड़माई हो गई?' इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ा कर धत् कह कर दौड़ गई, और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जीवाले के यहाँ, दूधवाले के यहाँ अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीना-भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा, तेरी कुड़माई हो गई? और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की संभावना के विरुद्ध बोली– 'हाँ हो गई।'

'कब?'

'कल, देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।' लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छावड़ीवाले की दिन-भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उँड़ेल दिया। सामने नहा कर आती हुई किसी वैष्णवी से टकरा कर अन्धे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।

2

'राम-राम, यह भी कोई लड़ाई है। दिन-रात खंदकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गईं। लुधियाना से दस गुना जाड़ा और मेंह और बरफ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं। जमीन कहीं दिखती नहीं; – घण्टे-दो-घण्टे में कान के परदे फाड़नेवाले धमाके के साथ सारी खंदक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का जलजला सुना था, यहाँ दिन में पच्चीस जलजले होते हैं। जो कहीं खंदक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई, तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।'

'लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खंदक में बिता ही दिए। परसों रिलीफ आ जाएगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट-भर खा कर सो रहेंगे। उसी फिरंगी मेम के बाग में – मखमल का-सा हरा घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो।'

'चार दिन तक एक पलक नींद नहीं मिली। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ा कर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जरमनों को अकेला मार कर न लौटूँ, तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े-संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं, और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अँधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था – चार मील तक एक जर्मन नहीं छोडा था। पीछे जनरल ने हट जाने का कमान दिया, नहीं तो –'

'नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते! क्यों?' सूबेदार हजारासिंह ने मुसकरा कर कहा– 'लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाए नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गए तो क्या होगा?'

'सूबेदारजी, सच है,' लहनसिंह बोला – 'पर करें क्या ? हड्डियों-हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं, और खाईं में दोनों तरफ से चंबे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय, तो गरमी आ जाय।'

'उदमी, उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा, तुम चार जने बालटियाँ ले कर खाईं का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाईं के दरवाजे का पहरा बदल ले।' – यह कहते हुए सूबेदार सारी खंदक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भर कर खाईं के बाहर फेंकता हुआ बोला – 'मैं पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण !' इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गए।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भर कर उसके हाथ में दे कर कहा – 'अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब-भर में नहीं मिलेगा।'

'हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमा जमीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा।'

'लाड़ी होराँ को भी यहाँ बुला लोगे ? या वही दूध पिलानेवाली फरंगी मेम –'

'चुप कर। यहाँवालों को शरम नहीं।'

'देश-देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तंबाखू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है,और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुल्क के लिए लड़ेगा नहीं।'

'अच्छा, अब बोधासिंह कैसा है?'

'अच्छा है।'

'जैसे मैं जानता ही न होऊँ ! रात-भर तुम अपने कंबल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है, और निमोनिया से मरनेवालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।'

'मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाए हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।'

वजीरासिंह ने त्योरी चढ़ा कर कहा – 'क्या मरने-मारने की बात लगाई है ? मरें जर्मनी और तुरक ! हाँ भाइयों, कैसे –

दिल्ली शहर तें पिशोर नुं जांदिए
कर लेणा लौंगां दा बपार मड़िए;
कर लेणा नाड़ेदा सौदा अड़िए –
(ओय) लाणा चटाका कदुए नुँ।
कद्दू बणया वे मजेदार गोरिए,
हुण लाणा चटाका कदुए नुँ॥

कौन जानता था कि दाढ़ियोंवाले, घरबारी सिख ऐसा लुच्चों का गीत गाएँगे, पर सारी खंदक इस गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गए, मानो चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

3

दो पहर रात गई है। अँधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली बिसकुटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कंबल बिछा कर और लहनासिंह के दो कंबल और एक बरानकोट ओढ़ कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

'क्यों बोधा भाई, क्या है ?'

'पानी पिला दो।'

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगा कर पूछा – 'कहो कैसे हो ?' पानी पी कर बोधा बोला – 'कँपनी छुट रही है। रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।'

'अच्छा, मेरी जरसी पहन लो !'

'और तुम ?'

'मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है। पसीना आ रहा है।'

'ना, मैं नहीं पहनता। चार दिन से तुम मेरे लिए –'

'हाँ, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही आई है। विलायत से बुन-बुन कर भेज रही हैं मेमें, गुरु उनका भला करें।' यों कह कर लहना अपना कोट उतार कर जरसी उतारने लगा।

'सच कहते हो ?'

'और नहीं झूठ ?' यों कह कर नाँहीं करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता भर पहन-कर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घण्टा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज आई – 'सूबेदार हजारासिंह।'

'कौन लपटन साहब ? हुक्म हुजूर !' – कह कर सूबेदार तन कर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

'देखो, इसी दम धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज्यादा जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काट कर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़ कर सब को साथ ले उनसे जा मिलो। खंदक छीन कर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।'

'जो हुक्म।'

चुपचाप सब तैयार हो गए। बोधा भी कंबल उतार कर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझ कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझा कर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेर कर खड़े हो गए और जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ा कर कहा – 'लो तुम भी पीयो।'

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का भाव छिपा कर बोला – 'लाओ साहब।' हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में ही कहाँ उड़ गए और उनकी जगह कैदियों से कटे बाल कहाँ से आ गए ? शायद साहब शराब पीये हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है ? लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे।

'क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जाएँगे ?'

'लड़ाई खत्म होने पर। क्यों, क्या यह देश पसंद नहीं ?'

'नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी जिले में शिकार करने गए थे –'

'हाँ, हाँ –'

'वहीं जब आप खोते पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था ? बेशक पाजी कहीं का – सामने से वह नील गाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थीं। और आपकी एक गोली कन्धे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नील गाय का सिर आ गया था न ? आपने कहा था कि रेजमेंट की मैस में लगाएँगे।'

'हाँ पर मैंने वह विलायत भेज दिया –'

'ऐसे बड़े-बड़े सींग ! दो-दो फुट के तो होंगे ?'

'हाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पीया ?'

'पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ' – कह कर लहनासिंह खंदक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अँधेरे में किसी सोनेवाले से वह टकराया।

'कौन ? वजीरासिंह ?'

'हाँ, क्यों लहना ? क्या कयामत आ गई ? ज़रा तो आँख लगने दी होती ?'

4

'होश में आओ। कयामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आई है।'

'क्या ?'

'लपटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गए हैं। उनकी वर्दी पहन कर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा। मैंने देखा और बातें की है। सौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीने को सिगरेट दिया है ?'

'तो अब !'

'अब मारे गए। धोखा है। सूबेदार होराँ, कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उठो, एक काम करो। पल्टन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गए होंगे।

सूबेदार से कहो एकदम लौट आएँ। खंदक की बात झूठ है। चले जाओ, खंदक के पीछे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।'

'हुकुम तो यह है कि यहीं –'

'ऐसी तैसी हुकुम की ! मेरा हुकुम – जमादार लहनासिंह जो इस वक्त यहाँ सब से बड़ा अफसर है, उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूँ।'

'पर यहाँ तो तुम आठ हो।'

'आठ नहीं, दस लाख। एक-एक अकालिया सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।'

लौट कर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह-जगह खंदक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ जा कर एक दियासलाई जला कर गुत्थी पर रखने –

इतने में बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बंदूक को उठा कर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तान कर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुंदा साहब की गर्दन पर मारा और साहब 'ऑख! मीन गौट्ट' कहते हुए चित्त हो गए। लहनासिंह ने तीनों गोले बीन कर खंदक के बाहर फेंके और साहब को घसीट कर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकाल कर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँस कर बोला – 'क्यों लपटन साहब ? मिजाज कैसा है ? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नील गायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहाँ से सीख आए ? हमारे लपटन साहब तो बिना डेम के पाँच लफ्ज भी नहीं बोला करते थे।'

लहना ने पतलून के जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया – 'चालाक तो बड़े हो पर माँझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिए। तीन महीने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव आया था। औरतों को बच्चे होने के ताबीज बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा बिछा कर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनीवाले बड़े पण्डित हैं। वेद पढ़-पढ़ कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गए हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जाएँगे तो गोहत्या बंद कर देंगे। मंडी के बनियों को बहकाता कि डाकखाने से रुपया निकाल लो। सरकार का राज्य जानेवाला है। डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्लाजी की दाढ़ी मूड़ दी थी। और गाँव से बाहर निकाल कर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रक्खा तो –'

साहब की जेब में से पिस्तौल चली और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरी मार्टिन के दो फायरों ने साहब की कपाल-क्रिया कर दी। धड़ाका सुन कर सब दौड़ आए।

बोधा चिल्लाया – 'क्या है ?'

लहनासिंह ने उसे यह कह कर सुला दिया कि एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया और, औरों से सब हाल कह दिया। सब बंदूकें ले कर तैयार हो गए। लहना ने साफा फाड़ कर घाव के दोनों तरफ पट्टियाँ कस कर बाँधी। घाव मांस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बंद हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्ला कर खाई में घुस पड़े। सिखों की बंदूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक-तक कर मार रहा था – वह खड़ा था और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़ कर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े से मिनटों में वे –

अचानक आवाज आई, 'वाह गुरुजी की फतह ? वाह गुरुजी का खालसा !!' और धड़ाधड़ बंदूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गए। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछेवालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और – अकाल सिक्खाँ दी फौज आई ! वाह गुरुजी दी फतह ! वाह गुरुजी दा खालसा ! सत श्री अकालपुरुख !!! और लड़ाई खतम हो गई। तिरेसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिखों में पन्द्रह के प्राण गए। सूबेदार के दाहिने कन्धे में से गोली आरपार निकल गई। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खंदक की गीली मट्टी से पूर लिया और बाकी का साफा कस कर कमरबंद की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना को दूसरा घाव – भारी घाव लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ क्षयी नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी, जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार

के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और कागजात पा कर वे उसकी तुरत्-बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर की खाईंवालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो डॉक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घण्टे के अंदर-अंदर आ पहुँची। फील्ड अस्पताल नजदीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जाएँगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँध कर एक गाड़ी में घायल लिटाए गए और दूसरी में लाशें रक्खी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही। पर उसने यह कह कर टाल दिया कि थोड़ा घाव है सबेरे देखा जाएगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़ कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा – 'तुम्हें बोधा की कसम है, और सूबेदारनीजी की सौगन्ध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।'

'और तुम?'

'मेरे लिए वहाँ पहुँच कर गाड़ी भेज देना, और जर्मन मुरदों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ? वजीरासिंह मेरे पास है ही।'

'अच्छा, पर –'

'बोधा गाड़ी पर लेट गया? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो, तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैंने कर दिया।'

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़ कर कहा – 'तैने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखना कैसा? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था?'

'अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना, और कह भी देना।'

गाड़ी के जाते लहना लेट गया। 'वजीरा पानी पिला दे, और मेरा कमरबंद खोल दे। तर हो रहा है।'

5

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म-भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं। समय की धुंध बिल्कुल उन पर से हट जाती है।

*** *** ***

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दहीवाले के यहाँ, सब्जीवाले के यहाँ, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है, तेरी कुड़माई हो गई? तब धत् कह

कर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा, तो उसने कहा – 'हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलोंवाला सालू? सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ?

'वजीरासिंह, पानी पिला दे।'

*** *** ***

पच्चीस वर्ष बीत गए। अब लहनासिंह नं 77 रैफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न-मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी ले कर जमीन के मुकदमें की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजिमेंट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है, फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ ही चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार बेडे में से निकल कर आया। बोला – 'लहना, सूबेदारनी तुमको जानती हैं, बुलाती हैं। जा मिल आ।' लहनासिंह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती हैं? कब से? रेजिमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाजे पर जा कर मत्था टेकना कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

'मुझे पहचाना?'

'नहीं।'

'तेरी कुड़माई हो गई' – 'धत्' – 'कल हो गई' – 'देखते नहीं, रेशमी बूटोंवाला सालू' – 'अमृतसर में' –

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

'वजीरा, पानी पिला' – 'उसने कहा था।'

*** *** ***

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है – 'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमक-हलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों की एक घँघरिया पल्टन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदारजी के साथ चली जाती? एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जीया। सूबेदारनी रोने लगी। अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है, एक दिन ताँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे, आप घोड़े की लातों में चले गए थे, और मुझे उठा कर

दुकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे आँचल पसारती हूँ।'

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता हुआ बाहर आया।

'वजीरासिंह, पानी पिला' – 'उसने कहा था।'

*** *** ***

लहना का सिर अपनी गोद में लिटाए वजीरासिंह बैठा है। जब माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला – 'कौन ! कीरतसिंह?'

वजीरा ने कुछ समझ कर कहा – 'हाँ।'

'भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।' वजीरा ने वैसे ही किया।

'हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस, अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चचा-भतीजा दोनों यहीं बैठ कर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।' वजीरासिंह के आँसू टफ्टप टपक रहे थे।

*** *** ***

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा –

फ्रांस और बेल्जियम – 68 वीं सूची – मैदान में घावों से मरा – नं 77 सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

❖❖❖

कफ़न

– प्रेमचंद

झोपड़े के द्वार पर बाप और बेटा दोनों एक बुझे हुए अलाव के सामने चुपचाप बैठे हुए हैं और अन्दर बेटे की जवान बीवी बुधिया प्रसव-वेदना में पछाड़ खा रही थी। रह-रहकर उसके मुँह से ऐसी दिल हिला देने वाली आवाज़ निकलती थी, कि दोनों कलेजा थाम लेते थे। जाड़ों की रात थी, प्रकृति सन्नाटे में डूबी हुई, सारा गाँव अन्धकार में लय हो गया था।

घीसू ने कहा – मालूम होता है, बचेगी नहीं। सारा दिन दौड़ते हो गया, जा देख तो आ।

माधव चिढ़कर बोला – मरना ही तो है जल्दी मर क्यों नहीं जाती ? देखकर क्या करूँ ?

'तू बड़ा बेदर्द है बे ! साल-भर जिसके साथ सुख-चैन से रहा, उसी के साथ इतनी बेवफाई !'

'तो मुझसे तो उसका तड़पना और हाथ-पाँव पटकना नहीं देखा जाता।'

चमारों का कुनबा था और सारे गाँव में बदनाम। घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम करता। माधव इतना काम-चोर था कि आध घण्टे काम करता तो घण्टे भर चिलम पीता। इसलिए उन्हें कहीं मजदूरी नहीं मिलती थी। घर में मुट्ठी-भर भी अनाज मौजूद हो, तो उनके लिए काम करने की कसम थी। जब दो-चार फाके हो जाते तो घीसू पेड़ पर चढ़कर लकड़ियाँ तोड़ लाता और माधव बाजार से बेच लाता और जब तक वह पैसे रहते, दोनों इधर-उधर मारे-मारे फिरते। गाँव में काम की कमी न थी। किसानों का गाँव था, मेहनती आदमी के लिए पचास काम थे। मगर इन दोनों को उसी वक्त बुलाते, जब दो आदमियों से एक का काम पाकर भी सन्तोष कर लेने के सिवा और कोई चारा न होता। अगर दोनों साधु होते, तो उन्हें सन्तोष और धैर्य के लिए, संयम और नियम की बिलकुल जरूरत न होती। यह तो इनकी प्रकृति थी। विचित्र जीवन था इनका ! घर में मिट्टी के दो-चार बर्तन के सिवा कोई सम्पत्ति नहीं। फटे चीथड़ों से अपनी नग्नता को ढाँके हुए जीये जाते थे। संसार की चिन्ताओं से मुक्त कर्ज से लदे हुए। गालियाँ भी खाते, मार भी खाते, मगर कोई गम नहीं। दीन इतने कि वसूली की बिलकुल आशा न रहने पर भी लोग इन्हें कुछ-न-कुछ कर्ज दे देते थे। मटर, आलू की फसल में दूसरों के खेतों से मटर या आलू उखाड़ लाते और भून-भानकर खा लेते या दस-पाँच ऊख उखाड़ लाते और रात को चूसते। घीसू ने इसी आकाश-वृत्ति से साठ साल की उम्र काट दी और माधव भी सपूत बेटे की तरह बाप ही के पद-चिह्नों पर चल रहा था, बल्कि उसका नाम और भी उजागर कर रहा था। इस वक्त भी दोनों अलाव के सामने बैठकर आलू भून रहे थे, जो कि किसी खेत से खोद लाये थे। घीसू की स्त्री का तो बहुत दिन हुए, देहान्त हो गया था। माधव का ब्याह पिछले साल हुआ था। जब से यह औरत आयी थी, उसने इस खानदान में व्यवस्था की नींव डाली थी और इन दोनों बे-गैरतों का दोजख भरती रहती थी। जब से वह आयी, यह दोनों और भी आरामतलब हो गए थे। बल्कि कुछ

अकड़ने भी लगे थे। कोई कार्य करने को बुलाता, तो निर्व्याज भाव से दुगुनी मजदूरी माँगते। वही औरत आज प्रसव-वेदना से मर रही थी और यह दोनों इसी इन्तजार में थे कि वह मर जाए, तो आराम से सोयें।

घीसू ने आलू निकालकर छीलते हुए कहा – जाकर देख तो, क्या दशा है उसकी ? चुड़ैल का फिसाद होगा, और क्या ? यहाँ तो ओझा भी एक रुपया माँगता है !

माधव को भय था, कि वह कोठरी में गया, तो घीसू आलुओं का बड़ा भाग साफ कर देगा। बोला – मुझे वहाँ जाते डर लगता है।

'डर किस बात का है, मैं तो यहाँ हूँ ही।'

'तो तुम्हीं जाकर देखो न ?'

'मेरी औरत जब मरी थी, तो मैं तीन दिन तक उसके पास से हिला तक नहीं; और फिर मुझसे लजाएगी कि नहीं ? जिसका कभी मुँह नहीं देखा, आज उसका उघड़ा हुआ बदन देखूँ ! उसे तन की सुध भी तो न होगी ? मुझे देख लेगी तो खुलकर हाथ-पाँव भी न पटक सकेगी !'

'मैं सोचता हूँ कोई बाल-बच्चा हुआ, तो क्या होगा ? सोंठ, गुड़, तेल, कुछ भी तो नहीं है घर में !'

'सब कुछ आ जाएगा। भगवान् दें तो ! जो लोग अभी एक पैसा नहीं दे रहे हैं, वे ही कल बुलाकर रुपये देंगे। मेरे नौ लड़के हुए, घर में कभी कुछ न था; मगर भगवान् ने किसी-न-किसी तरह बेड़ा पार ही लगाया।'

जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी, और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा सम्पन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। हम तो कहेंगे, घीसू किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान् था और किसानों के विचार-शून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाजों की कुत्सित मण्डली में जा मिला था। हाँ, उसमें यह शक्ति न थी, कि बैठकबाजों के नियम और नीति का पालन करता। इसलिए जहाँ उसकी मण्डली के और लोग गाँव के सरगना और मुखिया बने हुए थे, उस पर सारा गाँव उँगली उठाता था। फिर भी उसे यह तसकीन तो थी ही कि अगर वह फटेहाल है तो कम-से-कम उसे किसानों की-सी जी-तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती, और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेजा फायदा तो नहीं उठाते ! दोनों आलू निकाल-निकालकर जलते-जलते खाने लगे। कल से कुछ नहीं खाया था। इतना सब्र न था कि ठंडा हो जाने दें। कई बार दोनों की जबानें जल गयीं। छिल जाने पर आलू का बाहरी हिस्सा जबान, हलक और तालू को जला देता था और उस अंगारे को मुँह में रखने से ज्यादा खैरियत इसी में थी कि वह अन्दर पहुँच जाए। वहाँ उसे ठंडा करने के लिए काफी सामान थे। इसलिए दोनों जल्द-जल्द निगल जाते। हालाँकि इस कोशिश में उनकी आँखों से आँसू निकल आते।

घीसू को उस वक्त ठाकुर की बरात याद आयी, जिसमें बीस साल पहले वह गया था। उस दावत में उसे जो तृप्ति मिली थी, वह उसके जीवन में एक याद रखने लायक बात थी, और आज भी उसकी याद ताजी थी, बोला – वह भोज नहीं भूलता। तब से फिर उस तरह का खाना और भरपेट नहीं मिला। लड़की वालों ने सबको भर पेट पूड़ियाँ खिलाई थीं, सबको ! छोटे-बड़े सबने पूड़ियाँ खायीं और असली घी की ! चटनी, रायता, तीन तरह के सूखे साग, एक रसेदार तरकारी, दही, चटनी, मिठाई, अब क्या बताऊँ कि उस भोज में क्या स्वाद मिला, कोई रोक-टोक नहीं थी, जो चीज चाहो, माँगो, जितना चाहो, खाओ। लोगों ने ऐसा खाया, ऐसा खाया, कि किसी से पानी न पिया गया। मगर परोसने वाले हैं कि पत्तल में गर्म-गर्म, गोल-गोल सुवासित कचौड़ियाँ डाल देते हैं। मना करते हैं कि नहीं चाहिए, पत्तल पर हाथ रोके हुए हैं, मगर वह हैं कि दिये जाते हैं। और जब सबने मुँह धो लिया, तो पान-इलायची भी मिली। मगर मुझे पान लेने की कहाँ सुध थी? खड़ा हुआ न जाता था। चटपट जाकर अपने कम्बल पर लेट गया। ऐसा दिल-दरियाव था वह ठाकुर !

माधव ने इन पदार्थों का मन-ही-मन मजा लेते हुए कहा – अब हमें कोई ऐसा भोज नहीं खिलाता।

'अब कोई क्या खिलाएगा ? वह जमाना दूसरा था। अब तो सबको किफायत सूझती है। सादी-ब्याह में मत खर्च करो, क्रिया-कर्म में मत खर्च करो। पूछो, गरीबों का माल बटोर-बटोरकर कहाँ रखोगे ? बटोरने में तो कमी नहीं है। हाँ, खर्च में किफायत सूझती है!'

'तुमने एक बीस पूरियाँ खायी होंगी?'

'बीस से ज्यादा खायी थीं !'

'मैं पचास खा जाता !'

'पचास से कम मैंने न खायी होंगी। अच्छा पका था। तू तो मेरा आधा भी नहीं है।'

आलू खाकर दोनों ने पानी पिया और वहीं अलाव के सामने अपनी धोतियाँ ओढ़कर पाँव पेट में डाले सो रहे। जैसे दो बड़े-बड़े अजगर गेंडुलिया मारे पड़े हों।

और बुधिया अभी तक कराह रही थी।

2

सबेरे माधव ने कोठरी में जाकर देखा, तो उसकी स्त्री ठंडी हो गयी थी। उसके मुँह पर मक्खियाँ भिनक रही थीं। पथराई हुई आँखें ऊपर टँगी हुई थीं। सारी देह धूल से लथपथ हो रही थी। उसके पेट में बच्चा मर गया था।

माधव भागा हुआ घीसू के पास आया। फिर दोनों जोर-जोर से हाय-हाय करने और छाती पीटने लगे। पड़ोस वालों ने यह रोना-धोना सुना, तो दौड़े हुए आये और पुरानी मर्यादा के अनुसार इन अभागों को समझाने लगे।

मगर ज्यादा रोने-पीटने का अवसर न था। कफ़न की और लकड़ी की फिक्र करनी थी। घर में तो पैसा इस तरह गायब था, जैसे चील के घोंसले में माँस।

बाप-बेटे रोते हुए गाँव के ज़मींदार के पास गये। वह इन दोनों की सूरत से नफ़रत करते थे। कई बार इन्हें अपने हाथों से पीट चुके थे। चोरी करने के लिए, वादे पर काम पर न आने के लिए। पूछा – क्या है बे घिसुआ, रोता क्यों है ? अब तो तू कहीं दिखलाई भी नहीं देता ! मालूम होता है, इस गाँव में रहना नहीं चाहता।

घीसू ने जमीन पर सिर रखकर आँखों में आँसू भरे हुए कहा – सरकार ! बड़ी विपत्ति में हूँ। माधव की घरवाली रात को गुजर गयी। रात-भर तड़पती रही सरकार ! हम दोनों उसके सिरहाने बैठे रहे। दवा-दारू जो कुछ हो सका, सब कुछ किया, मुदा वह हमें दगा दे गयी। अब कोई एक रोटी देने वाला भी न रहा मालिक ! तबाह हो गये। घर उजड़ गया। आपका गुलाम हूँ, अब आपके सिवा कौन उसकी मिट्टी पार लगाएगा। हमारे हाथ में तो जो कुछ था, वह सब तो दवा-दारू में उठ गया। सरकार ही की दया होगी, तो उसकी मिट्टी उठेगी। आपके सिवा किसके द्वार पर जाऊँ।

ज़मींदार साहब दयालु थे। मगर घीसू पर दया करना काले कम्बल पर रंग चढ़ाना था। जी में तो आया, कह दें, चल, दूर हो यहाँ से। यों तो बुलाने से भी नहीं आता, आज जब गरज पड़ी तो आकर खुशामद कर रहा है। हरामखोर कहीं का, बदमाश ! लेकिन यह क्रोध या दण्ड देने का अवसर न था। जी में कुढ़ते हुए दो रुपये निकालकर फेंक दिए। मगर सान्त्वना का एक शब्द भी मुँह से न निकला। उसकी तरफ ताका तक नहीं। जैसे सिर का बोझ उतारा हो।

जब ज़मींदार साहब ने दो रुपये दिये, तो गाँव के बनिये-महाजनों को इनकार का साहस कैसे होता ? घीसू ज़मींदार के नाम का ढिंढोरा भी पीटना जानता था। किसी ने दो आने दिये, किसी ने चारे आने। एक घण्टे में घीसू के पास पाँच रुपये की अच्छी रकम जमा हो गयी। कहीं से अनाज मिल गया, कहीं से लकड़ी। और दोपहर को घीसू और माधव बाज़ार से कफ़न लाने चले। इधर लोग बाँस-वाँस काटने लगे।

गाँव की नर्मदिल स्त्रियाँ आ-आकर लाश देखती थीं और उसकी बेकसी पर दो बूँद आँसू गिराकर चली जाती थीं।

3

बाज़ार में पहुँचकर घीसू बोला – लकड़ी तो उसे जलाने-भर को मिल गयी है, क्यों माधव !

माधव बोला – हाँ, लकड़ी तो बहुत है, अब कफ़न चाहिए।

'तो चलो, कोई हलका-सा कफ़न ले लें।'

'हाँ, और क्या ! लाश उठते-उठते रात हो जाएगी। रात को कफ़न कौन देखता है ?'

'कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफ़न चाहिए।'

'कफ़न लाश के साथ जल ही तो जाता है।'

'और क्या रखा रहता है ? यही पाँच रुपये पहले मिलते, तो कुछ दवा-दारू कर लेते।'

दोनों एक-दूसरे के मन की बात ताड़ रहे थे। बाजार में इधर-उधर घूमते रहे। कभी इस बजाज की दूकान पर गये, कभी उसकी दूकान पर ! तरह-तरह के कपड़े, रेशमी और सूती देखे, मगर कुछ जँचा नहीं। यहाँ तक कि शाम हो गयी। तब दोनों न जाने किस दैवी प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने जा पहुँचे। और जैसे किसी पूर्व निश्चित व्यवस्था से अन्दर चले गये। वहाँ ज़रा देर तक दोनों असमंजस में खड़े रहे। फिर घीसू ने गद्दी के सामने जाकर कहा – साहूजी, एक बोतल हमें भी देना।

उसके बाद कुछ चिखौना आया, तली हुई मछली आयी और दोनों बरामदे में बैठकर शान्तिपूर्वक पीने लगे।

कई कुज्जियाँ ताबड़तोड़ पीने के बाद दोनों सरूर में आ गये।

घीसू बोला – कफ़न लगाने से क्या मिलता ? आखिर जल ही तो जाता। कुछ बहू के साथ तो न जाता।

माधव आसमान की तरफ देखकर बोला, मानो देवताओं को अपनी निष्पापता का साक्षी बना रहा हो – दुनिया का दस्तूर है, नहीं लोग बाँभनों को हजारों रुपये क्यों दे देते हैं ? कौन देखता है, परलोक में मिलता है या नहीं !

'बड़े आदमियों के पास धन है, फ़ूँके। हमारे पास फूँकने को क्या है ?'

'लेकिन लोगों को जवाब क्या दोगे ? लोग पूछेंगे नहीं, कफ़न कहाँ है ?'

घीसू हँसा – अबे, कह देंगे कि रुपये कमर से खिसक गये। बहुत ढूँढ़ा, मिले नहीं। लोगों को विश्वास न आएगा, लेकिन फिर वही रुपये देंगे।

माधव भी हँसा – इस अनपेक्षित सौभाग्य पर। बोला – बड़ी अच्छी थी बेचारी ! मरी तो खूब खिला-पिलाकर !

आधी बोतल से ज्यादा उड़ गयी। घीसू ने दो सेर पूड़ियाँ मँगाई। चटनी, अचार, कलेजियाँ। शराबखाने के सामने ही दूकान थी। माधव लपककर दो पत्तलों में सारे सामान ले आया। पूरा डेढ़ रुपया खर्च हो गया। सिर्फ थोड़े से पैसे बच रहे।

दोनों इस वक्त इस शान में बैठे पूड़ियाँ खा रहे थे जैसे जंगल में कोई शेर अपना शिकार उड़ा रहा हो। न जवाबदेही का खौफ था, न बदनामी की फ़िक्र। इन सब भावनाओं को उन्होंने बहुत पहले ही जीत लिया था।

घीसू दार्शनिक भाव से बोला – हमारी आत्मा प्रसन्न हो रही है तो क्या उसे पुन्न न होगा ?

माधव ने श्रद्धा से सिर झुकाकर तसदीक़ की – जरूर-से-जरूर होगा। भगवान्, तुम अन्तर्यामी हो। उसे बैकुण्ठ ले जाना। हम दोनों हृदय से आशीर्वाद दे रहे हैं। आज जो भोजन मिला वह कभी उम्र-भर न मिला था।

एक क्षण के बाद माधव के मन में एक शंका जागी। बोला – क्यों दादा, हम लोग भी एक-न-एक दिन वहाँ जाएँगे ही ?

घीसू ने इस भोले-भाले सवाल का कुछ उत्तर न दिया। वह परलोक की बातें सोचकर इस आनन्द में बाधा न डालना चाहता था।

'जो वहाँ हम लोगों से पूछे कि तुमने हमें कफ़न क्यों नहीं दिया तो क्या कहोगे?'

'कहेंगे तुम्हारा सिर!'

'पूछेगी तो जरूर !'

'तू कैसे जानता है कि उसे कफ़न न मिलेगा ? तू मुझे ऐसा गधा समझता है ? साठ साल क्या दुनिया में घास खोदता रहा हूँ ? उसको कफ़न मिलेगा और बहुत अच्छा मिलेगा !'

माधव को विश्वास न आया। बोला – कौन देगा ? रुपये तो तुमने चट कर दिये। वह तो मुझसे पूछेगी। उसकी माँग में तो सेंदुर मैंने डाला था।

'कौन देगा, बताते क्यों नहीं ?'

'वही लोग देंगे, जिन्होंने अबकी दिया। हाँ, अबकी रुपये हमारे हाथ न आएँगे।'

'ज्यों-ज्यों अँधेरा बढ़ता था और सितारों की चमक तेज होती थी, मधुशाला की रौनक भी बढ़ती जाती थी। कोई गाता था, कोई डींग मारता था, कोई अपने संगी के गले लिपटा जाता था। कोई अपने दोस्त के मुँह में कुल्हड़ लगाये देता था।

वहाँ के वातावरण में सरूर था, हवा में नशा। कितने तो यहाँ आकर एक चुल्लू में मस्त हो जाते थे। शराब से ज्यादा यहाँ की हवा उन पर नशा करती थी। जीवन की बाधाएँ यहाँ खींच लाती थीं और कुछ देर के लिए यह भूल जाते थे कि वे जीते हैं या मरते हैं। या न जीते हैं, न मरते हैं।

और यह दोनों बाप-बेटे अब भी मजे ले-लेकर चुसकियाँ ले रहे थे। सबकी निगाहें इनकी ओर जमी हुई थीं। दोनों कितने भाग्य के बली हैं ! पूरी बोतल बीच में है।

भरपेट खाकर माधव ने बची हुई पूड़ियों का पत्तल उठाकर एक भिखारी को दे दिया, जो खड़ा इनकी ओर भूखी आँखों से देख रहा था। और देने के गौरव, आनन्द और उल्लास का अपने जीवन में पहली बार अनुभव किया।

घीसू ने कहा – ले जा, खूब खा और आशीर्वाद दे ! जिसकी कमाई है, वह तो मर गयी। मगर तेरा आशीर्वाद उसे जरूर पहुँचेगा। रोयें-रोयें से आशीर्वाद दो, बड़ी गाढ़ी कमाई के पैसे हैं !

माधव ने फिर आसमान की तरफ देखकर कहा – वह बैकुण्ठ में जाएगी दादा, बैकुण्ठ की रानी बनेगी।

घीसू खड़ा हो गया और जैसे उल्लास की लहरों में तैरता हुआ बोला – हाँ, बेटा बैकुण्ठ में जाएगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते-मरते हमारी ज़िंदगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गयी। वह न बैकुण्ठ जाएगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जाएँगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं, और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मन्दिरों में जल चढ़ाते हैं?

श्रद्धालुता का यह रंग तुरन्त ही बदल गया। अस्थिरता नशे की खासियत है। दु:ख और निराशा का दौरा हुआ।

माधव बोला – मगर दादा, बेचारी ने ज़िंदगी में बड़ा दुःख भोगा। कितना दुःख झेलकर मरी !

वह आँखों पर हाथ रखकर रोने लगा। चीखें मार-मारकर।

घीसू ने समझाया – क्यों रोता है बेटा, खुश हो कि वह माया-जाल से मुक्त हो गयी, जंजाल से छूट गयी। बड़ी भाग्यवान् थी, जो इतनी जल्द माया-मोह के बन्धन तोड़ दिये।

और दोनों खड़े होकर गाने लगे –

'ठगिनी क्यों नैना झमकावे ! ठगिनी।'

पियक्कड़ों की आँखें इनकी ओर लगी हुई थीं और यह दोनों अपने दिल में मस्त गाये जाते थे। फिर दोनों नाचने लगे। उछले भी, कूदे भी। गिरे भी, मटके भी। भाव भी बताये, अभिनय भी किये। और आखिर नशे में मदमस्त होकर वहीं गिर पड़े।

❖❖❖

पुरस्कार

– जयशंकर प्रसाद

आर्द्रा नक्षत्र; आकाश में काले-काले बादलों की घुमड़, जिसमें देव-दुन्दुभी का गम्भीर घोष। प्राची के एक निरभ्र कोने से स्वर्ण-पुरुष झाँकने लगा था। – देखने लगा महाराज की सवारी। शैलमाला के अञ्चल में समतल उर्वरा भूमि से सोंधी बास उठ रही थी। नगर-तोरण से जयघोष हुआ, भीड़ में गजराज का चामरधारी शुण्ड उन्नत दिखायी पड़ा। वह हर्ष और उत्साह का समुद्र हिलोर भरता हुआ आगे बढ़ने लगा।

प्रभात की हेम-किरणों से अनुरञ्जित नन्ही-नन्ही बूँदों का एक झोंका स्वर्ण-मल्लिका के समान बरस पड़ा। मंगल सूचना से जनता ने हर्ष-ध्वनि की।

रथों, हाथियों और अश्वारोहियों की पंक्ति जम गई। दर्शकों की भीड़ भी कम न थी। गजराज बैठ गया, सीढ़ियों से महाराज उतरे। सौभाग्यवती और कुमारी सुन्दरियों के दो दल, आम्रपल्लवों से सुशोभित मंगल-कलश और फूल, कुंकुम तथा खीलों से भरे थाल लिए, मधुर गान करते हुए आगे बढ़े।

महाराज के मुख पर मधुर मुस्कम्न थी। पुरोहित-वर्ग ने स्वस्त्ययन किया। स्वर्ण-रञ्जित हल की मूठ पकड़ कर महाराज ने जुते हुए सुन्दर पुष्ट बैलों को चलने का संकेत किया। बाजे बजने लगे। किशोरी कुमारियों ने खीलों और फूलों की वर्षा की।

कोशल का यह उत्सव प्रसिद्ध था। एक दिन के लिए महाराज को कृषक बनना पड़ता – उस दिन इन्द्र-पूजन की धूम-धाम होती; गोठ होती। नगर-निवासी उस पहाड़ी भूमि में आनन्द मनाते। प्रतिवर्ष कृषि का यह महोत्सव उत्साह से सम्पन्न होता; दूसरे राज्यों से भी युवक राजकुमार इस उत्सव में बड़े चाव से आकर योग देते।

मगध का एक राजकुमार अरुण अपने रथ पर बैठा बड़े कुतूहल से यह दृश्य देख रहा था।

बीजों का एक बाल लिये कुमारी मधूलिका महाराज के साथ थी। बीज बोते हुए महाराज जब हाथ बढ़ाते, तब मधूलिका उनके सामने थाल कर देती। यह खेत मधूलिका का था, जो इस साल महाराज की खेती के लिए चुना गया था; इसलिए बीज देने का सम्मान मधूलिका ही को मिला। वह कुमारी थी। सुन्दरी थी। कौशेयवसन उसके शरीर पर इधर-उधर लहराता हुआ स्वयं शोभित हो रहा था। वह कभी उसे सम्हालती और कभी अपने रूखे अलकों को। कृषक बालिका के शुभ्र भाल पर श्रमकणों की भी कमी न थी, वे सब बरौनियों में गुँथे जा रहे थे। सम्मान और लज्जा उसके अधरों पर मन्द मुस्कराहट के साथ सिहर उठते; किन्तु महाराज को बीज देने में उसने शिथिलता नहीं की। सब लोग महाराज का हल चलाना देख रहे थे – विस्मय से, कुतूहल से। और अरुण देख रहा था कृषक कुमारी मधूलिका को। अहा कितना भोला सौन्दर्य! कितनी सरल चितवन!

उत्सव का प्रधान कृत्य समाप्त हो गया। महाराज ने मधूलिका के खेत का पुरस्कार दिया, थाल में कुछ स्वर्ण मुद्राएँ। वह राजकीय अनुग्रह था। मधूलिका ने थाली सिर से लगा ली; किन्तु साथ उसमें की स्वर्णमुद्राओं को महाराज पर न्योछावर करके बिखेर दिया। मधूलिका की उस समय की ऊर्जस्वित मूर्ति लोग आश्चर्य से देखने लगे ! महाराज की भृकुटी भी ज़रा चढ़ी ही थी कि मधूलिका ने सविनय कहा –

देव ! यह मेरे पितृ-पितामहों की भूमि है। इसे बेचना अपराध है; इसलिए मूल्य स्वीकार करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है। महाराज के बोलने के पहले ही वृद्ध मन्त्री ने तीखे स्वर से कहा – अबोध ! क्या बक रही है ? राजकीय अनुग्रह का तिरस्कार ! तेरी भूमि से चौगुना मूल्य है; फिर कोशल का तो यह सुनिश्चित राष्ट्रीय नियम है। तू आज से राजकीय रक्षण पाने की अधिकारिणी हुई, इस धन से अपने को सुखी बना।

राजकीय रक्षण की अधिकारिणी तो सारी प्रजा है, मन्त्रिवर ! ... महाराज को भूमि-समर्पण करने में तो मेरा कोई विरोध न था और न है; किन्तु मूल्य स्वीकार करना असम्भव है।– मधूलिका उत्तेजित हो उठी।

महाराज के संकेत करने पर मन्त्री ने कहा – देव ! वाराणसी-युद्ध के अन्यतम वीर सिंहमित्र की यह एक मात्र कन्या है। – महाराज चौंक उठे – सिंहमित्र की कन्या ! जिसने मगध के सामने कोशल की लाज रख ली थी, उसी वीर की मधूलिका कन्या है ?

हाँ, देव ! – सविनय मन्त्री ने कहा।

इस उत्सव के पराम्परागत नियम क्या हैं, मन्त्रिवर ? – महाराज ने पूछा।

देव, नियम तो बहुत साधारण हैं। किसी भी अच्छी भूमि को इस उत्सव के लिए चुनकर नियमानुसार पुरस्कार-स्वरूप उसका मूल्य दे दिया जाता है। वह भी अत्यन्त अनुग्रहपूर्वक अर्थात् भूसम्पत्ति का चौगुना मूल्य उसे मिलता है। उस खेती को वही व्यक्ति वर्ष भर देखता है। वह राजा का खेत कहा जाता है।

महाराज को विचार-संघर्ष से विश्राम की अत्यन्त आवश्यकता थी। महाराज चुप रहे। जयघोष के साथ सभा विसर्जित हुई। सब अपने-अपने शिविरों में चले गये। किन्तु मधूलिका को उत्सव में फिर किसी ने न देखा। वह अपने खेत की सीमा पर विशाल मधूक-वृक्ष के चिकने हरे पत्तों की छाया में अनमनी चुपचाप बैठी रही।

रात्रि का उत्सव अब विश्राम ले रहा था। राजकुमार अरुण उसमें सम्मिलित नहीं हुआ – अपने विश्राम-भवन में जागरण कर रहा था। आँखों में नींद न थी। प्राची में जैसी गुलाली खिल रही थी, वह रंग उसकी आँखों में था। सामने देखा तो मुण्डेर पर कपोती एक पैर पर खड़ी पंख फैलाये अँगड़ाई ले रही थी। अरुण उठ खड़ा हुआ। द्वार पर सुसज्जित अश्व था, वह देखते-देखते नगर-तोरण पर जा पहुँचा। रक्षक-गण ऊँघ रहे थे, अश्व के पैरों के शब्द से चौंक उठे।

युवक-कुमार तीर-सा निकल गया। सिन्धुदेश का तुरंग प्रभात के पवन से पुलकित हो रहा था। घूमता-घूमता अरुण उसी मधूक-वृक्ष के नीचे पहुँचा, जहाँ मधूलिका अपने हाथ पर सिर धरे हुए खिन्न-निद्रा का सुख ले रही थी।

अरुण ने देखा, एक छिन्न माधवीलता वृक्ष की शाखा से च्युत होकर पड़ी है। सुमन मुकुलित, भ्रमर निस्पन्द थे। अरुण ने अपने अश्व को मौन रहने का संकेत किया, उस सुषमा को देखने लिए, परन्तु कोकिल बोल उठा। जैसे उसने अरुण से प्रश्न किया – छिः, कुमारी के सोये हुए सौन्दर्य पर दृष्टिपात करनेवाले धृष्ट, तुम कौन ? मधूलिका की आँखे खुल पड़ीं। उसने देखा, एक अपरिचित युवक। वह संकोच से उठ बैठी। – भद्रे ! तुम्हीं न कल के उत्सव की सञ्चालिका रही हो ?

उत्सव ! हाँ, उत्सव ही तो था।

कल उस सम्मान ...

क्यों आपको कल का स्वप्न सता रहा है ? भद्र ! आप क्या मुझे इस अवस्था में संतुष्ट न रहने देंगे ?

मेरा हृदय तुम्हारी उस छवि का भक्त बन गया है, देवि !

मेरे उस अभिनय का – मेरी विडम्बना का। आह ! मनुष्य कितना निर्दय है, अपरिचित ! क्षमा करो, जाओ अपने मार्ग।

सरलता की देवि ! मैं मगध का राजकुमार तुम्हारे अनुग्रह का प्रार्थी हूँ– मेरे हृदय की भावना अवगुण्ठन में रहना नहीं जानती। उसे अपनी ...।

राजकुमार ! मैं कृषक-बालिका हूँ। आप नन्दनबिहारी और मैं पृथ्वी पर परिश्रम करके जीनेवाली। आज मेरी स्नेह की भूमि पर से मेरा अधिकार छीन लिया गया है। मैं दुःख से विकल हूँ; मेरा उपहास न करो।

मैं कोशल-नरेश से तुम्हारी भूमि तुम्हें दिलवा दूँगा।

नहीं, वह कोशल का राष्ट्रीय नियम है। मैं उसे बदलना नहीं चाहती – चाहे उससे मुझे कितना ही दुःख हो।

तब तुम्हारा रहस्य क्या है ?

यह रहस्य मानव-हृदय का है, मेरा नहीं। राजकुमार, नियमों से यदि मानव-हृदय बाध्य होता, तो आज मगध के राजकुमार का हृदय किसी राजकुमारी की ओर न खिंच कर एक कृषक-बालिका का अपमान करने न आता। मधूलिका उठ खड़ी हुई।

चोट खाकर राजकुमार लौट पड़ा। किशोर किरणों में उसका रत्नकिरीट चमक उठा। अश्व वेग से चला जा रहा था और मधूलिका निष्ठुर प्रहार करके क्या स्वयं आहत न हुई? उसके हृदय में टीस-सी होने लगी। वह सजल नेत्रों से उड़ती हुई धूल देखने लगी।

मधूलिका ने राजा का प्रतिपादन, अनुग्रह नहीं लिया। वह दूसरे खेतों में काम करती और चौथे पहर रूखी-सूखी खाकर पड़ रहती। मधूकवृक्ष के नीचे छोटी-सी पर्णकुटीर थी। सूखे डंठलों से उसकी दीवार बनी थी। मधूलिका का वही आश्रय था। कठोर परिश्रम से जो रूखा अन्न मिलता, वही उसकी साँसों को बढ़ाने के लिए पर्याप्त था।

दुबली होने पर भी उसके अंग पर तपस्या की कान्ति थी। आस-पास के कृषक उसका आदर करते। वह एक आदर्श बालिका थी। दिन, सप्ताह, महीने और वर्ष बीतने लगे।

शीतकाल की रजनी, मेघों से भरा आकाश, जिसमें बिजली की दौड़-धूप। मधूलिका का छाजन टपक रहा था! ओढ़ने की कमी थी। वह ठिठुरकर एक कोने में बैठी थी। मधूलिका अपने अभाव को आज बढ़ाकर सोच रही थी। जीवन से सामञ्जस्य बनाये रखने वाले उपकरण तो अपनी सीमा निर्धारित रखते हैं; परन्तु उनकी आवश्यकता और कल्पना भावना के साथ बढ़ती-घटती रहती है। आज बहुत दिनों पर उसे बीती हुई बात स्मरण हुई। दो, नहीं-नहीं, तीन वर्ष हुए होंगे, इसी मधूक के नीचे प्रभात में – तरुण राजकुमार ने क्या कहा था?

वह अपने हृदय से पूछने लगी – उन चाटुकारी के शब्दों को सुनने के लिए उत्सुकसी वह पूछने लगी – क्या कहा था? दुःख-दग्ध हृदय उन स्वप्न-सी बातों को स्मरण रख सकता था? और स्मरण ही होता, तो भी कष्टों की इस काली निशा में वह कहने का साहस करता। हाय री विडम्बना!

आज मधूलिका उस बीते हुए क्षण को लौटा लेने के लिए विकल थी। दारिद्र्य की ठोकरों ने उसे व्यथित और अधीर कर दिया है। मगध की प्रासाद-माला के वैभव का काल्पनिक चित्र – उन सूखे डंठलों के रन्ध्रों से, नभ में – बिजली के आलोक में – नाचता हुआ दिखाई देने लगा। खिलवाड़ी शिशु जैसे श्रावण की सन्ध्या में जुगनू को पकड़ने के लिए हाथ लपकाता है, वैसे ही मधूलिका मन-ही-मन कर रही थी। 'अभी वह निकल गया।' वर्षा ने भीषण रूप धारण किया। गड़गड़ाहट बढ़ने लगी; ओले पड़ने की सम्भावना थी। मधूलिका अपनी जर्जर झोपड़ी के लिए काँप उठी। सहसा बाहर कुछ शब्द हुआ –

कौन है यहाँ? पथिक को आश्रय चाहिए।

मधूलिका ने डंठलों का कपाट खोल दिया। बिजली चमक उठी। उसने देखा, एक पुरुष घोड़े की डोर पकड़े खड़ा है। सहसा वह चिल्ला उठी – राजकुमार!

मधूलिका? – आश्चर्य से युवक ने कहा।

एक क्षण के लिए सन्नाटा छा गया। मधूलिका अपनी कल्पना को सहसा प्रत्यक्ष देखकर चकित हो गई – इतने दिनों के बाद आज फिर !

अरुण ने कहा – कितना समझाया मैंने – परन्तु ...

मधूलिका अपनी दयनीय अवस्था पर संकेत करने देना नहीं चाहती थी। उसने कहा – और आज आपकी यह क्या दशा है ?

सिर झुकाकर अरुण ने कहा – मैं मगध का विद्रोही निर्वासित कोशल में जीविका खोजने आया हूँ।

मधूलिका उस अन्धकार में हँस पड़ी – मगध का विद्रोही राजकुमार का स्वागत करे एक अनाथिनी कृषक-बालिका, यह भी एक विडम्बना है, तो भी मैं स्वागत के लिए प्रस्तुत हूँ।

शीतकाल की निस्तब्ध रजनी, कुहरे से धुली हुई चाँदनी, हाड़ कँपा देनेवाला समीर, तो भी अरुण और मधूलिका दोनों पहाड़ी गह्वर के द्वार पर वट-वृक्ष के नीचे बैठे हुए बातें कर रहे हैं। मधूलिका की वाणी में उत्साह था, किन्तु अरुण जैसे अत्यन्त सावधान होकर बोलता।

मधूलिका ने पूछा – जब तुम इतनी विपन्न अवस्था में हो, तो फिर इतने सैनिकों को साथ रखने की क्या आवश्यकता है ?

मधूलिका ! बाहुबल ही तो वीरों की आजीविका है। ये मेरे जीवन-मरण के साथी हैं, भला मैं इन्हें कैसे छोड़ देता ? और करता ही क्या ?

क्यों ? हम लोग परिश्रम से कमाते और खाते। अब तो तुम ...।

भूल न करो, मैं अपने बाहुबल पर भरोसा करता हूँ। नये राज्य की स्थापना कर सकता हूँ। निराश क्यों हो जाऊँ ? – अरुण के शब्दों में कम्पन था; वह जैसे कुछ कहना चाहता था; पर कह न सकता था।

नवीन राज्य ! ओहो, तुम्हारा उत्साह तो कम नहीं। भला कैसे ? कोई ढंग बताओ, तो मैं भी कल्पना का आनन्द ले लूँ।

कल्पना का आनन्द नहीं मधूलिका, मैं तुम्हे राजरानी के सम्मान में सिंहासन पर बिठाऊँगा ! तुम अपने छिने हुए खेत की चिन्ता करके भयभीत न हो।

एक क्षण में सरल मधूलिका के मन में प्रमाद का अन्धड़ बहने लगा – द्वन्द्व मच गया। उसने सहसा कहा – आह, मैं सचमुच आज तक तुम्हारी प्रतीक्षा करती थी, राजकुमार !

अरुण ढिठाई से उसके हाथों को दबाकर बोला – तो मेरा भ्रम था, तुम सचमुच मुझे प्यार करती हो?

युवती का वक्षस्थल फूल उठा, वह हाँ भी नहीं कह सकी, ना भी नहीं। अरुण ने उसकी अवस्था का अनुभव कर लिया। कुशल मनुष्य के समान उसने अवसर को हाथ से न जाने दिया। तुरन्त बोल उठा – तुम्हारी इच्छा हो, तो प्राणों से पण लगाकर मैं तुम्हें इस कोशल-सिंहासन पर बिठा दूँ। मधूलिके ! अरुण के खड्ग का आतंक देखोगी? – मधूलिका एक बार काँप उठी। वह कहना चाहती थी ... नहीं; किन्तु उसके मुँह से निकला – क्या?

सत्य मधूलिका, कोशल-नरेश तभी से तुम्हारे लिए चिन्तित हैं। यह मैं जानता हूँ, तुम्हारी साधारण-सी प्रार्थना वह अस्वीकार न करेंगे। और मुझे यह भी विदित है कि कोशल के सेनापति अधिकांश सैनिकों के साथ पहाड़ी दस्युओं का दमन करने के लिए बहुत दूर चले गये हैं।

मधूलिका की आँखों के आगे बिजलियाँ हँसने लगी। दारुण भावना से उसका मस्तक विकृत हो उठा। अरुण ने कहा – तुम बोलती नहीं हो?

जो कहोगे, वह करूँगी ... मन्त्रमुग्ध-सी मधूलिका ने कहा।

स्वर्णमञ्च पर कोशल-नरेश अर्द्धनिद्रित अवस्था में आँखे मुकुलित किये हैं। एक चामधारिणी युवती पीछे खड़ी अपनी कलाई बड़ी कुशलता से घुमा रही है। चामर के शुभ्र आन्दोलन उस प्रकोष्ठ में धीरे-धीरे सञ्चलित हो रहे हैं। ताम्बूल-वाहिनी प्रतिमा के समान दूर खड़ी है।

प्रतिहारी ने आकर कहा – जय हो देव ! एक स्त्री कुछ प्रार्थना लेकर आई है।

आँख खोलते हुए महाराज ने कहा – स्त्री ! प्रार्थना करने आई है? आने दो।

प्रतिहारी के साथ मधूलिका आई। उसने प्रणाम किया। महाराज ने स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखा और कहा – तुम्हें कहीं देखा है?

तीन बरस हुए देव ! मेरी भूमि खेती के लिए ली गई थी।

ओह, तो तुमने इतने दिन कष्ट में बिताये, आज उसका मूल्य माँगने आई हो, क्यों? अच्छा-अच्छा तुम्हें मिलेगा। प्रतिहारी !

नहीं महाराज, मुझे मूल्य नहीं चाहिए।

मूर्ख ! फिर क्या चाहिए?

उतनी ही भूमि, दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की जंगली भूमि, वहीं मैं अपनी खेती करूँगी। मुझे एक सहायक मिल गया है। वह मनुष्यों से मेरी सहायता करेगा, भूमि को समतल भी बनाना होगा।

महाराज ने कहा – कृषक बालिके ! वह बड़ी उबड़-खाबड़ भूमि है। तिस पर वह दुर्ग के समीप एक सैनिक महत्त्व रखती है।

तो फिर निराश लौट जाऊँ ?

सिंहमित्र की कन्या ! मैं क्या करूँ, तुम्हारी यह प्रार्थना ...

देव ! जैसी आज्ञा हो !

जाओ, तुम श्रमजीवियों को उसमें लगाओ। मैं अमात्य को आज्ञापत्र देने का आदेश करता हूँ।

जय हो देव ! – कहकर प्रणाम करती हुई मधूलिका राजमन्दिर के बाहर आई।

दुर्ग के दक्षिण, भयावने नाले के तट पर, घना जंगल है, आज मनुष्यों के पद-सञ्चार से शून्यता भंग हो रही थी। अरुण के छिपे वे मनुष्य स्वतन्त्रता से इधर-उधर घूमते थे। झाड़ियों को काट कर पथ बन रहा था। नगर दूर था, फिर उधर यों ही कोई नहीं आता था। फिर अब तो महाराज की आज्ञा से वहाँ मधूलिका का अच्छा-सा खेत बन रहा था। तब इधर की किसको चिन्ता होती ?

एक घने कुञ्ज में अरुण और मधूलिका एक दूसरे को हर्षित नेत्रों से देख रहे थे। सन्ध्या हो चली थी। उस निविड़ वन में उन नवागत मनुष्यों को देखकर पक्षीगण अपने नीड़ को लौटते हुए अधिक कोलाहल कर रहे थे।

प्रसन्नता से अरुण की आँखें चमक उठीं। सूर्य की अन्तिम किरण झुरमुट में घुसकर मधूलिका के कपोलों से खेलने लगी। अरुण ने कहा – चार प्रहर और, विश्वास करो, प्रभात में ही इस जीर्ण-कलेवर कोशल-राष्ट्र की राजधानी श्रावस्ती में तुम्हारा अभिषेक होगा और मगध से निर्वासित मैं एक स्वतन्त्र राष्ट्र का अधिपति बनूँगा, मधूलिके !

भयानक ! अरुण, तुम्हारा साहस देखकर मैं चकित हो रही हूँ। केवल सौ सैनिकों से तुम...

रात के तीसरे प्रहर मेरी विजय-यात्रा होगी।

तो तुमको इस विजय पर विश्वास है ?

अवश्य, तुम अपनी झोपड़ी में यह रात बिताओ; प्रभात से तो राज-मन्दिर ही तुम्हारा लीला-निकेतन बनेगा।

मधूलिका प्रसन्न थी; किन्तु अरुण के लिए उसकी कल्याण-कामना सशंक थी। वह कभी-कभी उद्विग्न-सी होकर बालकों के समान प्रश्न कर बैठती। अरुण उसका समाधान कर देता। सहसा कोई संकेत पाकर उसने कहा – अच्छा, अन्धकार अधिक हो गया। अभी तुम्हें दूर जाना है और मुझे भी प्राण-पण से इस अभियान के प्रारम्भिक कार्यों को अर्द्धरात्रि तक पूरा कर लेना चाहिए; तब रात्रि भर के लिए विदा ! मधूलिके !

मधूलिका उठ खड़ी हुई। कँटीली झाड़ियों से उलझती हुई क्रम से, बढ़नेवाले अन्धकार में वह झोपड़ी की ओर चली।

पथ अन्धकारमय था और मधूलिका का हृदय भी निविड़-तम से घिरा था। उसका मन सहसा विचलित हो उठा, मधुरता नष्ट हो गई। जितनी सुख-कल्पना थी, वह जैसे अन्धकार में विलीन होने लगी। वह भयभीत थी, पहला भय उसे अरुण के लिए उत्पन्न हुआ, यदि वह सफल न हुआ तो ? फिर सहसा सोचने लगी – वह क्यों सफल हो ? श्रावस्ती दुर्ग एक विदेशी के अधिकार में क्यों चला जाय ? मगध का चिरशत्रु ! ओह, उसकी विजय ! कोशल-नरेश ने क्या कहा था – 'सिंहमित्र की कन्या।' सिंहमित्र, कोशल का रक्षक वीर, उसी की कन्या आज क्या करने जा रही है ? नहीं, नहीं, मधूलिका ! मधूलिका !!' जैसे उसके पिता उस अन्धकार में पुकार रहे थे। वह पगली की तरह चिल्ला उठी। रास्ता भूल गई।

रात एक पहर बीत चली, पर मधूलिका अपनी झोपड़ी तक न पहुँची। वह उधेड़बुन में विक्षिप्त-सी चली जा रही थी। उसकी आँखों के सामने कभी सिंहमित्र और कभी अरुण की मूर्ति अन्धकार में चित्रित होती जाती। उसे सामने आलोक दिखाई पड़ा। वह बीच पथ में खड़ी हो गई। प्रायः एक सौ उल्काधारी अश्वारोही चले आ रहे थे और आगे-आगे एक वीर अधेड़ सैनिक था। उसके बायें हाथ में अश्व की वल्गा और दाहिने हाथ में नग्न खड्ग। अत्यन्त धीरता से वह टुकड़ी अपने पथ पर चल रही थी। परन्तु मधूलिका बीच पथ से हिली नहीं। प्रमुख सैनिक पास आ गया; पर मधूलिका अब भी नहीं हटी। सैनिक ने अश्व रोककर कहा – कौन ? कोई उत्तर नहीं मिला। तब तक दूसरे अश्वारोही ने अकड़ कर कहा – तू कौन है, स्त्री ? कोशल के सेनापति को उत्तर शीघ्र दे।

रमणी जैसे विकार-ग्रस्त स्वर में चिल्ला उठी – बाँध लो, मुझे बाँध लो ! मेरी हत्या करो। मैंने अपराध ही ऐसा किया है।

सेनापति हँस पड़े, बोले – पगली है।

पगली नहीं, यदि वही होती, तो इतनी विचार-वेदना क्यों होती ? सेनापति ! मुझे बाँध लो। राजा के पास ले चलो।

क्या है, स्पष्ट कह !

श्रावस्ती का दुर्ग एक प्रहर में दस्युओं के हस्तगत हो जायेगा। दक्षिणी नाले के पार उनका आक्रमण होगा।

सेनापति चौंक उठे। उन्होंने आश्चर्य से पूछा – तू क्या कह रही है?

मैं सत्य कह रही हूँ; शीघ्रता करो।

सेनापति ने अस्सी सैनिकों को नाले की ओर धीरे-धीरे बढ़ने की आज्ञा दी और स्वयं बीस अश्वारोहियों के साथ दुर्ग की ओर बढ़े। मधूलिका एक अश्वारोही के साथ बाँध दी गई।

श्रावस्ती का दुर्ग, कोशल राष्ट्र का केन्द्र, इस रात्रि में अपने विगत वैभव का स्वप्न देख रहा था। भिन्न राजवंशों ने उसके प्रान्तों पर अधिकार जमा लिया है। अब वह केवल कई गाँवों का अधिपति है। फिर भी उसके साथ कोशल के अतीत की स्वर्ण-गाथाएँ लिपटी हैं। वही लोगों की ईर्ष्या का कारण है। जब थोड़े से अश्वारोही बड़े वेग से आते हुए दुर्ग-द्वार पर रुके, तब दुर्ग के प्रहरी चौंक उठे। उल्का के आलोक में उन्होंने सेनापति को पहचाना, द्वार खुला। सेनापति घोड़े की पीठ से उतरे। उन्होंने कहा – अग्निसेन! दुर्ग में कितने सैनिक होंगे?

सेनापति की जय हो! दो सौ।

उन्हें शीघ्र ही एकत्र करो; परन्तु बिना किसी शब्द के। सौ को लेकर तुम शीघ्र ही चुपचाप दुर्ग के दक्षिण की ओर चलो। आलोक और शब्द न हों।

सेनापति ने मधूलिका की ओर देखा। वह खोल दी गई। उसे अपने पीछे आने का संकेत कर सेनापति राजमन्दिर की ओर बढ़े। प्रतिहारी ने सेनापति को देखते ही महाराज को सावधान किया। वह अपनी सुख-निद्रा के लिये प्रस्तुत हो रहे थे; किन्तु सेनापति और साथ में मधूलिका को देखते ही चञ्चल हो उठे। सेनापति ने कहा – जय हो देव! इस स्त्री के कारण मुझे इस समय उपस्थित होना पड़ा है।

महाराज ने स्थिर नेत्रों से देखकर कहा – सिंहमित्र की कन्या! फिर यहाँ क्यों? क्या तुम्हारा क्षेत्र नहीं बन रहा है? कोई बाधा? सेनापति! मैंने दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की भूमि इसे दी है। क्या उसी सम्बन्ध में तुम कहना चाहते हो?

देव! किसी गुप्त शत्रु ने उसी ओर से आज की रात में दुर्ग पर अधिकार कर लेने का प्रबन्ध किया है और इसी स्त्री ने मुझे पथ में यह सन्देश दिया है।

राजा ने मधूलिका की ओर देखा। वह काँप उठी। घृणा और लज्जा से वह गड़ी जा रही थी। राजा ने पूछा – मधूलिका, यह सत्य है!

हाँ, देव !

राजा ने सेनापति से कहा – सैनिकों को एकत्र करके तुम चलो मैं अभी आता हूँ। सेनापति के चले जाने पर राजा ने कहा – सिंहमित्र की कन्या ! तुमने एक बार फिर कोशल का उपकार किया। यह सूचना देकर तुमने पुरस्कार का काम किया है। अच्छा, तुम यहीं ठहरो। पहले उन आतताइयों का प्रबन्ध कर लूँ।

अपने साहसिक अभियान में अरुण बन्दी हुआ और दुर्ग उल्का के आलोक में अतिरञ्जित हो गया। भीड़ ने जयघोष किया। सबके मन में उल्लास था। श्रावस्ती-दुर्ग आज एक दस्यु के हाथ में जाने से बचा था। आबाल-वृद्ध-नारी आनन्द से उन्मत्त हो उठे।

ऊषा के आलोक में सभा-मण्डप दर्शकों से भर गया। बन्दी अरुण को देखते ही जनता ने रोष से हूँकार करते हुए कहा – 'वध करो !' राजा ने सबसे सहमत होकर आज्ञा दी – 'प्राण दण्ड।' मधूलिका बुलायी गई। वह पगली-सी आकर खड़ी हो गई। कोशल-नरेश ने पूछा – मधूलिका, तुझे जो पुरस्कार लेना हो, माँग। वह चुप रही।

राजा ने कहा – मेरी निज की जितनी खेती है, मैं सब तुझे देता हूँ। मधूलिका ने एक बार बन्दी अरुण की ओर देखा। उसने कहा – मुझे कुछ न चाहिए। अरुण हँस पड़ा। राजा ने कहा – नहीं, मैं तुझे अवश्य दूँगा। माँग ले।

तो मुझे भी प्राणदण्ड मिले। कहती हुई वह बन्दी अरुण के पास जा खड़ी हुई।

❖❖❖

परिन्दे

– निर्मल वर्मा

Can we do nothing for the dead ? And for a long time the answer had been – nothing !

– Ktaherine Mansfield

अँधेरे गलियारे में चलते हुए लतिका ठिठक गयी। दीवार का सहारा लेकर उसने लैम्प की बत्ती बढ़ा दी। सीढ़ियों पर उसकी छाया एक बेडौल कटी-फटी आकृति खींचने लगी। सात नम्बर कमरे से लड़कियों की बातचीत और हँसी-ठहाकों का स्वर अभी तक आ रहा था। लतिका ने दरवाजा खटखटाया। शोर अचानक बन्द हो गया।

"कौन है ?"

लतिका चुप खड़ी रही। कमरे में कुछ देर तक घुसर-पुसर होती रही, फिर दरवाजे की चिटखनी के खुलने का स्वर आया। लतिका कमरे की देहरी से कुछ आगे बढ़ी, लैम्प की झपकती लौ में लड़कियों के चेहरे सिनेमा के परदे पर ठहरे हुए क्लोजअप की भाँति उभरने लगे।

"कमरे में अँधेरा क्यों कर रखा है ?" लतिका के स्वर में हल्की-सी झिड़की का आभास था।

"लैम्प में तेल ही खत्म हो गया, मैडम !"

यह सुधा का कमरा था, इसलिए उसे ही उत्तर देना पड़ा। होस्टल में शायद वह सबसे अधिक लोकप्रिय थी, क्योंकि सदा छुट्टी के समय या रात को डिनर के बाद आस-पास के कमरों में रहनेवाली लड़कियों का जमघट उसी के कमरे में लग जाता था। देर तक गप-शप, हँसी-मजाक चलता रहता।

"तेल के लिए करीमुद्दीन से क्यों नहीं कहा ?"

"कितनी बार कहा मैडम, लेकिन उसे याद रहे तब तो।"

कमरे में हँसी की फुहार एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गयी। लतिका के कमरे में आने से अनुशासन की जो घुटन घिर आयी थी वह अचानक बह गयी। करीमुद्दीन होस्टल का नौकर था। उसके आलस और काम में टालमटोल करने के किस्से होस्टल की लड़कियों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आते थे।

लतिका को हठात् कुछ स्मरण हो आया। अँधेरे में लैम्प घुमाते हुए चारों ओर निगाहें दौड़ायीं। कमरे में चारों ओर घेरा बनाकर वे बैठी थीं – पास-पास एक-दूसरे से सटकर। सबके चेहरे परिचित थे, किन्तु लैम्प के पीले मद्धिम प्रकाश में मानो कुछ बदल गया था, या जैसे वह उन्हें पहली बार देख रही थी।

"जूली, अब तक तुम इस ब्लॉक में क्या कर रही हो ?"

जूली खिड़की के पास पलँग के सिरहाने बैठी थी। उसने चुपचाप आँखें नीची कर लीं। लैम्प का प्रकाश चारों ओर से सिमटकर अब केवल उसके चेहरे पर गिर रहा था।

"नाइट रजिस्टर पर दस्तखत कर दिये ?"

"हाँ, मैडम।"

"फिर ... ?" लतिका का स्वर कड़ा हो आया। जूली सकुचाकर खिड़की से बाहर देखने लगी।

जब से लतिका इस स्कूल में आयी है, उसने अनुभव किया है कि होस्टल के इस नियम का पालन डाँट-फटकार के बावजूद नहीं होता।

"मैडम, कल से छुट्टियाँ शुरू हो जायेंगी, इसलिए आज रात हम सबने मिलकर ..." और सुधा पूरी बात न कहकर हेमन्ती की ओर देखते हुए मुस्कराने लगी।

"हेमन्ती के गाने का प्रोग्राम है, आप भी कुछ देर बैठिए न।"

लतिका को उलझन मालूम हुई। इस समय यहाँ आकर उसने इनके मजे को किरकिरा कर दिया। इस छोटे-से हिल-स्टेशन पर रहते उसे खासा अर्सा हो गया, लेकिन कब समय पतझड़ और गर्मियों का घेरा पार कर सर्दी की छुट्टियों की गोद में सिमट जाता है, उसे कभी याद नहीं रहता।

चोरों की तरह चुपचाप वह देहरी से बाहर हो गयी। उसके चेहरे का तनाव ढीला पड़ गया। वह मुस्कराने लगी।

"मेरे संग स्नो-फॉल देखने कोई नहीं ठहरेगा ?"

"मैडम छुट्टियों में क्या आप घर नहीं जा रही हैं ?" सब लड़कियों की आँखें उस पर जम गयीं।

"अभी कुछ पक्का नहीं है – आई लव द स्नो-फॉल !"

लतिका को लगा कि यही बात उसने पिछले साल भी कही थी और शायद पिछले से पिछले साल भी। उसे लगा मानो लड़कियाँ उसे सन्देह की दृष्टि से देख रही हैं, मानो उन्होंने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया। उसका सिर चकराने लगा, मानो बादलों का स्याह झुरमुट किसी अनजाने कोने से उठकर उसे अपने में डुबो लेगा। वह थोड़ा-सा हँसी, फिर धीरे-से उसने सर को झटक दिया।

"जूली, तुमसे कुछ काम है, अपने ब्लॉक में जाने से पहले मुझसे मिल लेना – वेल गुड नाइट !" लतिका ने अपने पीछे दरवाजा बन्द कर दिया।

"गुड नाइट मैडम, गुड नाइट, गुड नाइट ..."

गलियारे की सीढ़ियाँ न उतरकर लतिका रेलिंग के सहारे खड़ी हो गयी। लैम्प की बत्ती को नीचे घुमाकर कोने में रख दिया। बाहर धुंध की नीली तहें बहुत घनी हो चली थीं। लॉन पर लगे हुए चीड़ के पत्तों की सरसराहट हवा के झोंकों के संग कभी तेज, कभी धीमी होकर भीतर बह आती थी। हवा में सर्दी का हल्का-सा आभास पाकर लतिका के दिमाग में कल से शुरू होनेवाली छुट्टियों का ध्यान भटक आया। उसने आँखें मूँद लीं। उसे लगा कि जैसे उसकी टाँगें बाँस की लकड़ियों की तरह उसके शरीर से बँधी हैं, जिसकी गाँठें धीरे-धीरे खुलती जा रही हैं। सिर की चकराहट अभी मिटी नहीं थी, मगर अब जैसे वह भीतर न होकर बाहर फैली हुई धुंध का हिस्सा बन गयी थी।

सीढ़ियों पर बातचीत का स्वर सुनकर लतिका जैसे सोते से जगी। शॉल को कन्धों पर समेटा और लैम्प उठा लिया। डॉ॰ मुकर्जी मि॰ ह्यूबर्ट के संग एक अंग्रेजी धुन गुनगुनाते हुए ऊपर आ रहे थे। सीढ़ियों पर अँधेरा था और ह्यूबर्ट को बार-बार अपनी छड़ी से रास्ता टटोलना पड़ता था। लतिका ने दो-चार सीढ़ियाँ उतरकर लैम्प को नीचे झुका दिया। "गुड ईवनिंग डॉक्टर, गुड ईवनिंग मि॰ ह्यूबर्ट !" "थैंक यू मिस लतिका" – ह्यूबर्ट के स्वर में कृतज्ञता का भाव था। सीढ़ियाँ चढ़ने से उनकी साँस तेज हो रही थी और वह दीवार से लगे हुए हाँफ रहे थे। लैम्प की रोशनी में उनके चेहरे का पीलापन कुछ ताँबे के रंग जैसा हो गया था।

"यहाँ अकेली क्या कर रही हो मिस लतिका ?" – डॉक्टर ने होंठों के भीतर से सीटी बजायी।

"चेकिंग करके लौट रही थी। आज इस वक्त ऊपर कैसे आना हुआ मिस्टर ह्यूबर्ट ?"

ह्यूबर्ट ने मुस्कराकर अपनी छड़ी डॉक्टर के कन्धों से छुला दी – "इनसे पूछो, यही मुझे जबर्दस्ती घसीट लाये हैं।"

"मिस लतिका, हम आपको निमन्त्रण देने आ रहे थे। आज रात मेरे कमरे में एक छोटा-सा कन्सर्ट होगा जिसमें मि॰ ह्यूबर्ट शोपां और चाइकोव्स्की के कम्पोजीशन बजायेंगे और फिर क्रीम कॉफी पी जायेगी। और उसके

बाद अगर समय रहा, तो पिछले साल हमने जो गुनाह किये हैं उन्हें हम सब मिलकर कन्फेस करेंगे।" डॉक्टर मुकर्जी के चेहरे पर भरी मुस्कान खेल गयी।

"डॉक्टर, मुझे माफ करें, मेरी तबीयत कुछ ठीक नहीं है।"

"चलिए, यह ठीक रहा। फिर तो आप वैसे भी मेरे पास आतीं।" डॉक्टर ने धीरे-से लतिका के कन्धों को पकड़कर अपने कमरे की तरफ मोड़ दिया।

डॉक्टर मुकर्जी का कमरा ब्लॉक के दूसरे सिरे पर छत से जुड़ा हुआ था। वह आधे बर्मी थे, जिसके चिह्न उनकी थोड़ी दबी हुई नाक और छोटी-छोटी चंचल आँखों से स्पष्ट थे। बर्मा पर जापानियों का आक्रमण होने के बाद वह इस छोटे से पहाड़ी शहर में आ बसे थे। प्राइवेट प्रेक्टिस के अलावा वह कान्वेन्ट स्कूल में हाईजीन-फिजियालोजी भी पढ़ाया करते थे और इसलिए उनको स्कूल के होस्टल में ही एक कमरा रहने के लिए दे दिया गया था। कुछ लोगों का कहना था कि बर्मा से आते हुए रास्ते में उनकी पत्नी की मृत्यु हो गयी, लेकिन इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि डॉक्टर स्वयं कभी अपनी पत्नी की चर्चा नहीं करते।

बातों के दौरान डॉक्टर अक्सर कहा करते हैं – "मरने से पहले मैं एक दफा बर्मा जरूर जाऊँगा" – और तब एक क्षण के लिए उनकी आँखों में एक नमी-सी छा जाती। लतिका चाहने पर भी उनसे कुछ पूछ नहीं पाती। उसे लगता कि डॉक्टर नहीं चाहते कि कोई अतीत के सम्बन्ध में उनसे कुछ भी पूछे या सहानुभूति दिखलाये। दूसरे ही क्षण अपनी गम्भीरता को दूर ठेलते हुए वह हँस पड़ते – एक सूखी, बुझी हुई हँसी।

होम-सिक्नेस ही एक ऐसी बीमारी है जिसका इलाज किसी डॉक्टर के पास नहीं है।

छत पर मेज-कुर्सियाँ डाल दी गयीं और भीतर कमरे में परकोलेटर में कॉफी का पानी चढ़ा दिया गया।

"सुना है अगले दो-तीन वर्षों में यहाँ पर बिजली का इन्तजाम हो जायेगा" – डॉक्टर ने स्प्रिट लैम्प जलाते हुए कहा।

"यह बात तो पिछले दस सालों से सुनने में आ रही है। अंग्रेजों ने भी कोई लम्बी-चौड़ी स्कीम बनायी थी, पता नहीं उसका क्या हुआ" – ह्यूबर्ट ने कहा। वह आराम कुर्सी पर लेटा हुआ बाहर लॉन की ओर देखा रहा था।

लतिका कमरे से दो मोमबत्तियाँ ले आयी। मेज के दोनों सिरों पर टिकाकर उन्हें जला दिया गया। छत का अँधेरा मोमबत्ती की फीकी रोशनी के इर्द-गिर्द सिमटने लगा। एक घनी नीरवता चारों और घिरने लगी। हवा में चीड़ के वृक्षों की साँय-साँय दूर-दूर तक फैली पहाड़ियों और घाटियों में सीटियोंकी गूँज-सी छोड़ती जा रही थी।

"इस बार शायद बर्फ जल्दी गिरेगी, अभी से हवा में एक सर्द खुश्की-सी महसूस होने लगी है" – डॉक्टर का सिगार अँधेरे में लाल बिन्दी-सा चमक रहा था।

"पता नहीं, मिस वुड को स्पेशल सर्विस का गोरखधन्धा क्यों पसन्द आता है। छुट्टियों में घर जाने से पहले क्या यह जरूरी है कि लड़कियाँ फादर एल्मंड का सर्मन सुनें?" – ह्यूबर्ट ने कहा।

"पिछले पाँच साल से मैं सुनता आ रहा हूँ – फादर एल्मंड के सर्मन में कहीं हेर-फेर नहीं होता।"

डॉक्टर को फादर एल्मंड एक आँख नहीं सुहाते थे।

लतिका कुर्सी पर आगे झुककर प्यालों में कॉफी उँडेलने लगी। हर साल स्कूल बन्द होने के दिन यही दो प्रोग्राम होते हैं – चैपल में स्पेशल सर्विस और उसके बाद दिन में पिकनिक। लतिका को पहला साल याद आया जब डॉक्टर के संग पिकनिक के बाद वह क्लब गयी थी। डॉक्टर बार में बैठे थे। बाल रूम कुमाऊ रेजीमेण्ट के अफसरों से भरा हुआ था। कुछ देर तक बिलियर्ड का खेल देखने के बाद जब वह वापिस बार की ओर आ रहे थे, तब उसने दायीं ओर क्लब की लाइब्रेरी में देखा – मगर उसी समय डॉक्टर मुकर्जी पीछे से आ गये थे। "मिस लतिका, यह मेजर गिरीश नेगी हैं।" बिलियर्ड रूम से आते हुए हँसी-ठहाकों के बीच वह नाम दब-सा गया था। वह किसी किताब के बीच में उँगली रखकर लायब्रेरी की खिड़की से बाहर देख रहा था।

"हलो डॉक्टर" – वह पीछे मुड़ा। तब उस क्षण ...

उस क्षण न जाने क्यों लतिका का हाथ काँप गया और कॉफी की कुछ गर्म बूँदें उसकी साड़ी पर छलक आयीं। अँधेरे में किसी ने नहीं देखा कि लतिका के चेहरे पर एक उनींदा रीतापन घिर आया है।

हवा के झोंके से मोमबत्तियों की लौ फड़कने लगी। छत से भी ऊँची काठगोदाम जानेवाली सड़क पर यू.पी. रोड़वेज की आखिरी बस डाक लेकर जा रही थी। बस की हैड लाइट्स में आस-पास फैली हुई झाड़ियों की छायाएँ घर की दीवार पर सरकती हुई गायब होने लगीं।

"मिस लतिका, आप इस साल भी छुट्टियों में यही रहेंगी?" डॉक्टर ने पूछा।

डॉक्टर का सवाल हवा में टँगा रहा। उसी क्षण पियानो पर शोपां का नोक्टर्न ह्यूबर्ट की उँगलियों के नीचे से फिसलता हुआ धीरे-धीरे छत के अँधेरे में घुलने लगा – मानो जल पर कोमल स्वप्निल उर्मियाँ भँवरों का झिलमिलाता जाल बुनती हुई दूर-दूर किनारों तक फैलती जा रही हों। लतिका को लगा कि जैसे कहीं बहुत दूर बर्फ की चोटियों से परिन्दों के झुण्ड नीचे अनजान देशों की ओर उड़े जा रहे हैं। इन दिनों अक्सर उसने अपने कमरे की खिड़की से उन्हें देखा है – धागे में बँधे चमकीले लट्टुओं की तरह वे एक लम्बी, टेढ़ी-मेढ़ी कतार में उड़े जाते हैं, पहाड़ों की सुनसान नीरवता से परे, उन विचित्र शहरों की ओर जहाँ शायद वह कभी नहीं जायेगी।

लतिका आर्म चेयर पर ऊँघने लगी। डॉक्टर मुकर्जी का सिगार अँधेरे में चुपचाप जल रहा था। डॉक्टर को आश्चर्य हुआ कि लतिका न जाने क्या सोच रही है और लतिका सोच रही थी – क्या वह बूढ़ी होती जा रही है? उसके सामने स्कूल की प्रिंसिपल मिस वुड का चेहरा घूम गया – पोपला मुँह, आँखों के नीचे झूलती हुई मांस की

थैलियाँ, ज़रा-ज़रा-सी बात पर चिढ़ जाना, कर्कश आवाज में चीखना – सब उसे 'ओल्डमेड' कहकर पुकारते हैं। कुछ वर्षों बाद वह भी हूबहू वैसी ही बन जायेगी ... लतिका के समूचे शरीर में झुरझुरी -सी दौड़ गयी, मानो अनजाने में उसने किसी गलीज वस्तु को छू लिया हो। उसे याद आया कुछ महीने पहले अचानक उसे ह्यूबर्ट का प्रेमपत्र मिला था – भावुक याचना से भरा हुआ पत्र, जिसमें उसने न जाने क्या कुछ लिखा था, जो कभी उसकी समझ में नहीं आया। उसे ह्यूबर्ट की इस बचकाना हरकत पर हँसी आयी थी, किन्तु भीतर-ही-भीतर प्रसन्नता भी हुई थी – उसकी उम्र अभी बीती नहीं है, अब भी वह दूसरों को अपनी ओर आकर्षित कर सकती है। ह्यूबर्ट का पत्र पढ़कर उसे क्रोध नहीं आया, आयी थी केवल ममता। वह चाहती तो उसकी गलतफहमी को दूर करने में देर न लगाती, किन्तु कोई शक्ति उसे रोके रहती है, उसके कारण अपने पर विश्वास रहता है, अपने सुख का भ्रम मानो ह्यूबर्ट की गलतफहमी से जुड़ा है ...।

ह्यूबर्ट ही क्यों, वह क्या किसी को भी चाह सकेगी, उस अनुभूति के संग, जो अब नहीं रही, जो छाया-सी उस पर मँडराती रहती है, न स्वयं मिटती है, न उसे मुक्ति दे पाती है। उसे लगा, जैसे बादलों का झुरमुट फिर उसके मस्तिष्क पर धीरे-धीरे छाने लगा है, उसकी टाँगे फिर निर्जीव, शिथिल-सी हो गयी हैं।

वह झटके से उठ खड़ी हुई – "डॉक्टर माफ करना, मुझे बहुत थकान-सी लग रही है ..." बिना वाक्य पूरा किये ही वह चली गयी।

कुछ देर तक टैरेस पर निस्तब्धता छायी रही। मोमबत्तियाँ बुझने लगी थीं। डॉक्टर मुकर्जी ने सिगार का नया कश लिया – "सब लड़कियाँ एक जैसी होती हैं – बेवकूफ और सेंटीमेंटल।"

ह्यूबर्ट की उँगलियों का दबाव पियानो पर ढीला पड़ता गया – अन्तिम सुरों की झिझकी-सी गूँज कुछ क्षणों तक हवा में तिरती रही।

"डॉक्टर, आपको मालूम है ... मिस लतिका का व्यवहार पिछले कुछ अर्से से अजीब-सा लगता है।" – ह्यूबर्ट के स्वर में लापरवाही का भाव था। वह नहीं चाहता था कि डॉक्टर को लतिका के प्रति उसकी भावनाओं का आभास-मात्र भी मिल सके। जिस कोमल अनुभूति को वह इतने समय से सँजोता आया है, डॉक्टर उसे हँसी के एक ही ठहाके में उपहासास्पद बना देगा।

"क्या तुम नियति में विश्वास करते हो, ह्यूबर्ट ?" डॉक्टर ने कहा। ह्यूबर्ट दम रोके प्रतीक्षा करता रहा। वह जानता था कि कोई भी बात कहने से पहले डॉक्टर को फिलासोफाइज करने की आदत थी। डॉक्टर टैरेस के जंगले से सटकर खड़ा हो गया। फीकी-सी चाँदनी में चीड़ के पेड़ों की छायाएँ लॉन पर गिर रही थीं। कभी-कभी कोई जुगनू अँधेरे में हरा प्रकाश छिड़कता हवा में गायब हो जाता था।

"मैं कभी-कभी सोचता हूँ, इन्सान जिन्दा किसलिए रहता है – क्या उसे कोई और बेहतर काम करने को नहीं मिला ? हजारों मील अपने मुल्क से दूर मैं यहाँ पड़ा हूँ – यहाँ कौन मुझे जानता है ... यहीं शायद मर भी

जाऊँगा। ह्यूबर्ट, क्या तुमने कभी महसूस किया है कि एक अजनबी की हैसियत से परायी जमीन पर मर जाना काफी खौफनाक बात है ... !"

ह्यूबर्ट विस्मित-सा डॉक्टर की ओर देखने लगा। उसने पहली बार डॉक्टर मुकर्जी के इस पहलू को देखा था, अपने सम्बन्ध में वह अक्सर चुप रहते थे।

"कोई पीछे नहीं है, यह बात मुझमें एक अजीब किस्म की बेफिक्री पैदा कर देती है। लेकिन कुछ लोगों की मौत अन्त तक पहेली बनी रहती है ... शायद वे ज़िंदगी से बहुत उम्मीद लगाते थे। उसे ट्रैजिक भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि आखिरी दम तक उन्हें मरने का एहसास नहीं होता ...।"

"डॉक्टर, आप किसका जिक्र कर रहे हैं ?" ... ह्यूबर्ट ने परेशान होकर पूछा।

डॉक्टर कुछ देर तक चुपचाप सिगार पीता रहा। फिर मुड़कर वह मोमबत्तियों बुझती हुई लौ को देखने लगा।

"तुम्हें मालूम है, किसी समय लतिका बिना नागा क्लब जाया करती थी। गिरीश नेगी से उसका परिचय वहीं हुआ था। कश्मीर जाने से एक रात पहले उसने मुझे सब कुछ बता दिया था। मैं अब तक लतिका से उस मुलाकात के बारे में कुछ नहीं कह सका हूँ। किन्तु उस रात कौन जानता था कि वह वापिस नहीं लौटेगा। और अब ... अब क्या फर्क पड़ता है। लेट द डेड डाई ..."

डॉक्टर की सूखी सर्द हँसी में खोखली-सी शून्यता भरी थी।

"कौन गिरीश नेगी ?"

"कुमाऊँ रेजीमेंट में कैप्टन था।"

"डॉक्टर, क्या लतिका ..." ह्यूबर्ट से आगे कुछ नहीं कहा गया। उसे याद आया वह पत्र, जो उसने लतिका को भेजा था ... कितना अर्थहीन और उपहासास्पद, जैसे उसका एक-एक शब्द उसके दिल को कचोट रहा हो। उसने धीरे-से पियानो पर सिर टिका लिया। लतिका ने उसे क्यों नहीं बताया, क्या वह इसके योग्य भी नहीं था ?

"लतिका ... वह तो बच्ची है, पागल ! मरनेवाले के संग खुद थोड़े ही मरा जाता है।"

कुछ देर चुप रहकर डॉक्टर ने अपने प्रश्न को फिर दुहराया।

"लेकिन ह्यूबर्ट, क्या तुम नियति पर विश्वास करते हो ?"

हवा के हल्के झोंके से मोमबत्तियाँ एक बार प्रज्वलित होकर बुझ गयीं। टैरेस पर ह्यूबर्ट और डॉक्टर अँधेरे में एक-दूसरे का चेहरा नहीं देख पा रहे थे, फिर भी वे एक-दूसरे की ओर देख रहे थे। कान्वेन्ट स्कूल से कुछ दूर मैदानों में बहते पहाड़ी नाले का स्वर आ रहा था। जब बहुत देर बाद कुमाऊँ रेजीमेंट सेन्टर का बिगुल सुनायी दिया, तो ह्यूबर्ट हड़बड़ाकर खड़ा हो गया।

"अच्छा, चलता हूँ, डॉक्टर, गुड नाइट।"

"गुड नाइट ह्यूबर्ट ... मुझे माफ करना, मैं सिगार खत्म करके उठूँगा ..."

सुबह बदली छायी थी। लतिका के खिड़की खोलते ही धुंध का गुब्बारा-सा भीतर घुस आया, जैसे रात भर दीवार के सहारे सरदी में ठिठुरता हुआ वह भीतर आने की प्रतीक्षा कर रहा हो। स्कूल से ऊपर चैपल जानेवाली सड़क बादलों में छिप गयी थी, केवल चैपल का 'क्रास' धुंध के परदे पर एक-दूसरे को काटती हुई पेंसिल की रेखाओं-सा दिखायी दे जाता था।

लतिका ने खिड़की से आँखें हटायीं, तो देखा कि करीमुद्दीन चाय की ट्रे लिये खड़ा है। करीमुद्दीन मिलिट्री में अर्दली रह चुका था, इसलिए ट्रे मेज पर रखकर 'अटेन्शन' की मुद्रा में खड़ा हो गया।

लतिका झटके से उठ बैठी। सुबह से आलस करके कितनी बार जागकर वह सो चुकी है। अपनी खिसियाहट मिटाने के लिए लतिका ने कहा – "बड़ी सरदी है आज, बिस्तर छोड़ने को जी नहीं चाहता।"

"अजी मेम साहब, अभी क्या सरदी आयी है – बड़े दिनों में देखना कैसे दाँत कटकटाते हैं" – और करीमुद्दीन अपने हाथों को बगलों में डाले हुए इस तरह सिकुड़ गया जैसे उन दिनों की कल्पना मात्र से उसे जाड़ा लगना शुरू हो गया हो। गंजे सिर पर दोनों तरफ के उसके बाल खिजाब लगाने से कत्थई रंग के भूरे हो गये थे। बात चाहे किसी विषय पर हो रही हो, वह हमेशा खींचतान कर उसे ऐसे क्षेत्र में घसीट लाता था, जहाँ वह बेझिझक अपने विचारों को प्रकट कर सके।

"एक दफा तो यहाँ लगातार इतनी बर्फ गिरी थी कि भुवाली से लेकर डाक बँगले तक सारी सड़कें जाम हो गयीं। इतनी बर्फ थी मेम साहब कि पेड़ों की टहनियाँ तक सिकुड़कर तनों से लिपट गयी थीं – बिलकुल ऐसे," और करीमुद्दीन नीचे झुककर मुर्गा-सा बन गया।

"कब की बात है ?" लतिका ने पूछा।

"अब यह तो जोड़-हिसाब करके ही पता चलेगा, मेम साहब ... लेकिन इतना याद है कि उस वक्त अंग्रेज बहादुर यहीं थे। कण्टोनमेण्ट की इमारत पर कौमी झण्डा नहीं लगा था। बड़े जबर थे ये अंग्रेज, दो घण्टों में ही सारी सड़कें साफ करवा दीं। उन दिनों एक सीटी बजाते ही पचास घोड़ेवाले जमा हो जाते थे। तो अब सारे शेड

खाली पड़े हैं। वे लोग अपनी खिदमत भी करवाना जानते थे, अब तो सब उजाड़ हो गया है" – करीमुद्दीन उदास भाव से बाहर देखने लगा।

आज यह पहली बार नहीं है जब लतिका करीमुद्दीन से उन दिनों की बातें सुन रही है जब अंग्रेज बहादुर ने इस स्थान को स्वर्ग बना रखा था।

"आप छुट्टियों में इस साल भी यही रहेंगी, मेम साहब ?"

"दिखता तो कुद ऐसा ही है करीमुद्दीन – तुम्हें फिर तंग होना पड़ेगा।'

"क्या कहती हैं मेम साहब ! आपके रहने से हमारा भी मन लग जाता है, वरना छुट्टियों में तो यहाँ कुत्ते लोटते हैं।"

"तुम ज़रा मिस्त्री से कह देना कि इस कमरे की छत की मरम्मत कर जाये। पिछले साल बर्फ का पानी दरारों से टपकता रहता था।" लतिका को याद आया कि पिछली सर्दियों में जब कभी बर्फ गिरती थी, तो उसे पानी से बचने के लिए रात-भर कमरे के कोने में सिमटकर सोना पड़ता था।

करीमुद्दीन चाय की ट्रे उठाता हुआ बोला – "ह्यूबर्ट साहब तो शायद कल ही चले जायें – कल रात उनकी तबीयत फिर खराब हो गयी। आधी रात के वक्त मुझे जगाने आये थे। कहते थे, छाती में तकलीफ है। उन्हें यह मौसम नहीं रास आता। कह रहे थे, लड़कियों की बस में वह भी कल ही चले जायेंगे।"

करीमुद्दीन दरवाजा बन्द करके चला गया। लतिका की इच्छा हुई कि वह ह्यूबर्ट के कमरे में जाकर उनकी तबीयत की पूछताछ कर आये। किन्तु फिर न जाने क्यों स्लीपर पैरों से टँगे रहे और वह खिड़की के बाहर बादलों को उड़ता हुआ देखती रही। ह्यूबर्ट का चेहरा जब उसे देखकर सहमा-सा दयनीय हो जाता है, तब लगता है कि वह अपनी मूक-निरीह याचना में उसे कोस रहा है – न वह उसकी गलतफहमी को दूर करने का प्रयत्न कर पाती है, न उसे अपनी विवशता की सफाई देने का साहस होता है। उसे लगता है कि इस जाले से बाहर निकलने के लिए वह धागे के जिस सिरे को पकड़ती है वह खुद एक गाँठ बनकर रह जाता है ...।

बाहर बूँदाबाँदी होने लगी थी – कमरे की टिन की छत खट-खट बोलने लगी। लतिका पलँग से उठ खड़ी हुई। बिस्तर को तहाकर बिछाया। फिर पैरों में स्लीपरों को घसीटते हुए वह बड़े आईने तक आयी और उसके सामने स्टूल पर बैठकर बालों को खोलने लगी। किन्तु कुछ देर तक कंघी बालों में ही उलझी रही और वह गुमसुम हो शीशे में अपना चेहरा ताकती रही। करीमुद्दीन को यह कहना याद ही नहीं रहा कि धीरे-धीरे आग जलाने की लकड़ियाँ जमा कर ले। इन दिनों सस्ते दामों पर सूखी लकड़ियाँ मिल जाती हैं। पिछले साल तो कमरा धुएँ से भर जाता था जिसके कारण कँपकँपाते जाड़े में भी उसे खिड़की खोलकर ही सोना पड़ता था।

आईने में लतिका ने अपना चेहरा देखा – वह मुस्करा रही थी। पिछले साल अपने कमरे की सीलन और ठंड से बचने के लिए कभी-कभी वह मिस वुड के खाली कमरे में चोरी-चुपके सोने चली जाया करती थी। मिस वुड का कमरा बिना आग के भी गर्म रहता था, उनके गदीले सोफे पर लेटते ही आँख लग जाती थी। कमरा छुट्टियों में खाली पड़ा रहता है, किन्तु मिस वुड से इतना नहीं होता कि दो महीनों के लिए उसके हवाले कर जायें। हर साल कमरे में ताला ठोंक जाती हैं। वह तो पिछले साल गुसलखाने में भीतर की साँकल देना भूल गयी थीं, जिसे लतिका चोर दरवाजे के रूप में इस्तेमाल करती रही थी।

पहले साल अकेले में उसे बड़ा डर-सा लगता था। छुट्टियों में सारे स्कूल और होस्टल के कमरे सायँ-सायँ करने लगते हैं। डर के मारे उसे जब कभी नींद नहीं आती थी, तब वह करीमुद्दीन को रात में देर तक बातों में उलझाये रखती। बातों में जब खोयी-सी वह सो जाती, तब करीमुद्दीन चुपचाप लैम्पबुझाकर चला जाता। कभी-कभी बीमारी का बहाना करके वह डॉक्टर को बुलवा भेजती थी और बाद में बहुत जिद करके दूसरे कमरे में उनका बिस्तर लगवा देती।

लतिका ने कंघे से बालों का गुच्छा निकाला और उसे बाहर फेंकने के लिए वह खिड़की के पास आ खड़ी हुई। बाहर छत की ढलान से बारिश के जल की मोटी-सी धार बराबर लॉन पर गिर रही थी। मेघाच्छन्न आकाश में सरकते हुए बादलों के पीछे पहाड़ियों के झुण्ड कभी उभर आते थे, कभी छिप जाते थे, मानो चलती हुई ट्रेन से कोई उन्हें देख रहा हो। लतिका ने खिड़की से सिर बाहर निकाल लिया – हवा के झोंके से उसकी आँखें झिप गयीं। उसे जितने काम याद आते हैं, उतना ही आलस घना होता जाता है। बस की सीटें रिजर्व करवाने के लिए चपरासी को रुपये देने हैं। जो सामान होस्टल की लड़कियाँ पीछे छोड़े जा रही है, उन्हें गोदाम में रखवाना होगा। कभी-कभी तो छोटी क्लास की लड़कियों के साथ पैकिंग करवाने के काम में भी उसे हाथ बटाना पड़ता था।

वह इन कामों से ऊबती नहीं। धीरे-धीरे सब निपटते जाते हैं, कोई गलती इधर-उधर रह जाती है, सो बाद में सुधर जाती है – हर काम में किचकिच रहती है, परेशानी और दिक्कत होती है – किन्तु देर-सवेर इससे छुटकारा मिल ही जाता है। किन्तु जब लड़कियों की आखिरी बस चली जाती है, तब मन उचाट-सा हो जाता है – खाली कॉरीडोर में घूमती हुई वह कभी इस कमरे में जाती है और कभी उसमें। वह नहीं जान पाती कि अपने से क्या करे – दिल कहीं भी नहीं टिक पाता, हमेशा भटका-भटका-सा रहता है।

इस सबके बावजूद जब कोई सहज भाव से पूछ बैठता है, "मिस लतिका, छुट्टियों में आप घर नहीं जा रहीं ?" तब ... वह क्या कहे ?

डिंग-डांग-डिंग ... स्पेशल सर्विस के लिए स्कूल चैपल के घण्टे बजने लगे थे। लतिका ने अपना सिर खिड़की के भीतर कर लिया। उसने झटपट साड़ी उतारी और पेटीकोट में ही कन्धे पर तौलिया डाले गुसलखाने में घुस गयी।

लेफ्ट-राइट-लेफ्ट ... लेफ्ट ...

कण्टोनमेण्ट जानेवाली पक्की सड़क पर चार-चार की पंक्ति में कुमाऊँ रेजीमेण्ट के सिपाहियों की एक टुकड़ी मार्च कर रही थी। फौजी बूटों की भारी खुरदरी आवाजें स्कूल चैपल की दीवारों से टकराकर भीतर 'प्रेयर हॉल' में गूँज रही थीं।

"ब्लेसेड आर द मीक ..." फादर एल्मंड एक-एक शब्द चबाते हुए खँखारते स्वर में 'सर्मन आफ द माउण्ट' पढ़ रहे थे। ईसा मसीह की मूर्ति के नीचे 'कैण्डलब्रियम' के दोनों ओर मोमबत्तियाँ जल रही थीं, जिनका प्रकाश आगे बैंचों पर बैठी हुई लड़कियों पर पड़ रहा था। पिछली लाइनों की बैंचें अँधेरे में डूबी हुई थीं, जहाँ लड़कियाँ प्रार्थना की मुद्रा में बैठी हुई सिर झुकाये एक-दूसरे से घुसर-पुसर कर रही थीं। मिस वुड स्कूल सीजन के सफलतापूर्वक समाप्त हो जाने पर विद्यार्थियों और स्टाफ सदस्यों को बधाई का भाषण दे चुकी थीं – और अब फादर के पीछे बैठी हुई अपने में ही कुछ बुड़बुड़ा रही थीं मानो धीरे-धीरे फादर को 'प्रौम्ट' कर रही हों।

'आमीन...' फादर एल्मंड ने बाइबल मेज पर रख दी और 'प्रेयर बुक' उठा ली। हॉल की खामोशी क्षण-भर के लिए टूट गयी। लड़कियों ने खड़े होते हुए जान-बूझकर बैंचों को पीछे धकेला – बैंचें फर्श पर रगड़ खाकर सीटी बजाती हुई पीछे खिसक गयीं – हॉल के कोने से हँसी फूट पड़ी। मिस वुड का चेहरा तन गया, माथे पर भृकुटियाँ चढ़ गयीं। फिर अचानक निस्तब्धता छा गयी – हॉल के उस घुटे हुए धुंधलके में फादर का तीखा फटा हुआ स्वर सुनायी देने लगा – "जीसस सेड, आई एम द लाइट ऑफ द वर्ल्ड – ही दैट फालोएथ मी शैल नॉट वाक इन डार्कनेस, बट शैल हैव द लाइट ऑफ लाइफ ...।"

डॉक्टर मुकर्जी ने ऊब और उकताहट से भरी जमुहाई ली, "कब यह किस्सा खत्म होगा ?" उसने इतने ऊँचे स्वर में लतिका से पूछा कि वह सकुचाकर दूसरी ओर देखने लगी। स्पेशल सर्विस के समय डॉक्टर मुकर्जी के होंठों पर व्यंग्यात्मक मुस्कान खेलती रहती और वह धीरे-धीरे अपनी मूँछों को खींचता रहता।

फादर एल्मंड की वेश-भूषा देखकर लतिका के दिल में गुदगुदी-सी दौड़ गयी। जब वह छोटी थी, तो अक्सर यह बात सोचकर विस्मित हुआ करती थी कि क्या पादरी लोग सफेद चोगे के नीचे कुछ नहीं पहनते, अगर धोखे से वह ऊपर उठ जाये तो ?

लेफ्ट ... लेफ्ट ... लेफ्ट ... मार्च करते हुए फौजी बूट चैपल से दूर होते जा रहे थे – केवल उनकी गूँज हवा में शेष रह गयी थी।

'हिम नम्बर 117' – फादर ने प्रार्थना-पुस्तक खोलते हुए कहा। हॉल में प्रत्येक लड़की ने डेस्क पर रखी हुई हिम-बुक खोल ली। पन्नों के उलटने की खड़खड़ाहट फिसलती हुई एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल गयी।

आगे की बैंच से उठकर ह्यूबर्ट पियानो के सामने स्टूल पर बैठे गया। संगीत शिक्षक होने के कारण हर साल स्पेशल सर्विस के अवसर पर उसे 'कॉयर' के संग पियानो बजाना पड़ता था। ह्यूबर्ट ने अपने रूमाल से नाक

साफ की। अपनी घबड़ाहट छिपाने के लिए ह्यूबर्ट हमेशा ऐसा ही किया करता था। कनखियों से हॉल की ओर देखते हुए उसने काँपते हाथों से हिम-बुक खोली।

लीड काइण्डली लाइट ...

पियानो के सुर दबे, झिझकते से मिलने लगे। घने बालों से ढँकी ह्यूबर्ट की लम्बी, पीली अंगुलियाँ खुलने-सिमटने लगीं। 'कॉयर' में गानेवाली लड़कियों के स्वर एक-दूसरे से गुँथकर कोमल, स्निग्ध लहरों में बिंध गये।

लतिका को लगा, उसका जूड़ा ढीला पड़ गया है, मानो गरदन के नीचे झूल रहा है। मिस वुड की आँख बचा लतिका ने चुपचाप बालों में लगे क्लिपों को कसकर खींच दिया।

"बड़ा झक्की आदमी है ... सुबह मैंने ह्यूबर्ट को यहाँ आने से मना किया था, फिर भी चला आया" – डॉक्टर ने कहा।

लतिका को करीमुद्दीन की बात याद हो गयी। रात-भर ह्यूबर्ट को खाँसी का दौरा पड़ा था... कल जाने के लिए कह रहे थे ...

लतिका ने सिर टेढ़ा करके ह्यूबर्ट के चेहरे की एक झलक पाने की विफल चेष्टा की। इतने पीछे से कुछ भी देखा पाना असम्भव था; पियानो पर झुका हुआ केवल ह्यूबर्ट का सिर दिखायी देता था।

लीड काइन्डली लाइट ... संगीत के सुर मानो एक ऊँची पहाड़ी पर चढ़कर हाँफती हुई साँसों को आकाश की अबाध शून्यता में बिखेरते हुए नीचे उतर रहे हैं। बारिश की मुलायम धूप चैपल के लम्बे-चौकोर शीशों पर झलमला रही है, जिसकी एक महीन चमकीली रेखा ईसा मसीह की प्रतिमा पर तिरछी होकर गिर रही है। मोमबत्तियों का धूआँ धूप में नीली-सी लकीर खींचता हुआ हवा में तिरने लगा है। पियानो के क्षणिक 'पोज' में लतिका को पत्तों का परिचित मर्मर कहीं दूर अनजानी दिशा से आता हुआ सुनायी दे जाता है। एक क्षण के लिए उसे भ्रम हुआ कि चैपल का फीका-सा अँधेरा उस छोटे से 'प्रेयर हॉल' के चारों कोनों से सिमटता हुआ उसके आस-पास घिर आया है – मानो कोई उसकी आँखों पर पट्टी बाँधकर उसे यहाँ तक ले आया हो और अचानक उसकी आँखें खोल दी हों। उसे लगा कि जैसे मोमबत्तियों के धूमिल आलोक में कुछ भी ठोस, वास्तविक न रहा हो – चैपल की छत, दीवारें, डेस्क पर रखा हुआ डॉक्टर का सुघड़-सुडौल हाथ – और पियानो के सुर अतीत की धुंध को भेदते हुए स्वयं उस धुंध का भाग बनते जा रहे हों ...

एक पगली-सी स्मृति, उद्भ्रान्त भावना – चैपल के शीशों के परे पहाड़ी सूखी हवा, हवा में झुकी हुई वीपिंग विलोज की काँपती टहनियाँ, पैरों तले चीड़ के पत्तों की धीमी-सी चिर-परिचित खड़ ... खड़ ...। वहीं पर

गिरीश एक हाथ में मिलिटरी का खाकी हैट लिये खड़ा है – चौड़े, उठे हुए, सबल कन्धे, अपना सिर वहाँ टिका दो, तो जैसे सिमटकर खो जायेगा ... चार्ल्स बोयर, यह नाम उसने रखा था, वह झेंपकर हँसने लगता।

"तुम्हें आर्मी में किसने चुन लिया, मेजर बन गये हो, लेकिन लड़कियों से भी गये बीते हो ... ज़रा-ज़रा-सी बात पर चेहरा लाल हो जाता है।" यह सब वह कहती नहीं, सिर्फ सोचती भर थी – सोचा था कभी कहूँगी, वह 'कभी' कभी नहीं आया ...

बुरुस का लाल फूल
लाये हो
न
झूठे

खाकी कमीज के जिस जेब पर बैज चिपके थे, उसमें से मुसा हुआ बुरुस का फूल निकल आया।

छिः सारा मुरझा गया
अभी खिला कहाँ है ?
(हाउ क्लम्जी)

उसके बालों में गिरीश का हाथ उलझ रहा है – फूल कहीं टिक नहीं पाता, फिर उसे क्लिप के नीचे फँसाकर उसने कहा –

देखो

वह मुड़ी और इससे पहले कि वह कुछ कह पाती, गिरीश ने अपना मिलिटरी का हैट धप से उसके सिर पर रख दिया। वह मन्त्रमुग्ध-सी वैसी ही खड़ी रही। उसके सिर पर गिरीश का हैट है – माथे पर छोटी-सी बिन्दी है। बिन्दी पर उड़ते हुए बाल हैं। गिरीश ने उस बिन्दी को अपने होंठों से छुआ है, उसने उसके नंगे सिर को अपने दोनों हाथों में समेट लिया है –

लतिका

गिरीश ने चिढ़ाते हुए कहा – मैन ईटर ऑफ कुमाऊँ – (उसका यह नाम गिरीश ने उसे चिढ़ाने के लिए रखा था) ... वह हँसने लगी।

"लतिका ... सुनो ..." गिरीश का स्वर कैसा हो गया था !

"ना, मैं कुछ भी नहीं सुन रही।"

"लतिका ... मैं कुछ महीनों में वापिस लौट आऊँगा ..."

"ना ... मैं कुछ भी नहीं सुन रही ..." किन्तु वह सुन रही है– वह नहीं जो गिरीश कह रहा है, किन्तु वह जो नहीं कहा जा रहा है, जो उसके बाद कभी नहीं कहा गया ...

लीड काइन्डली लाइट ...

लड़कियों का स्वर पियानों के सुरों में डूबा हुआ गिर रहा है, उठ रहा है ... ह्यूबर्ट ने सिर मोड़कर लतिका को निमिष भर देखा – आँखें मूँदे ध्यानमग्न प्रस्तर मूर्ति-सी वह स्थिर-निश्चल खड़ी थी। क्या यह भाव उसके लिए है ? क्या लतिका ने ऐसे क्षणों में उसे अपना साथी बनाया है ? ह्यूबर्ट ने एक गहरी साँस ली और साँस में ढेर-सी थकान उमड़ आयी।

"देखो ... मिस बुड कुर्सी पर बैठे-बैठे सो रही हैं" – डॉक्टर होंठों में ही फुसफुसाया। यह डॉक्टर का पुराना मजाक था कि मिस वुड प्रार्थना करने के बहाने आँखें मूँदे हुए नींद की झपकियाँ लेती हैं।

फादर एल्मंड ने कुर्सी पर फैले अपने गाउन को समेट लिया और प्रेयर बुक बन्द करके मिस वुड के कानों में कुछ कहा। पियानो का स्वर क्रमशः मन्द पड़ने लगा, ह्यूबर्ट की अंगुलियाँ ढीली पड़ने लगीं। सर्विस के समाप्त होने से पूर्व मिस वुड ने आर्डर पढ़कर सुनाया। बारिश होने की आशंका से आज के कार्यक्रम में कुछ आवश्यक परिवर्तन करने पड़े थे। पिकनिक के लिए झूला देवी के मन्दिर जाना सम्भव नहीं हो सकेगा, इसलिए स्कूल से कुछ दूर 'मीडोज' में ही सब लड़कियाँ नाश्ते के बाद जमा होंगी। सब लड़कियों को दुपहर का 'लंच' होस्टल किचन से ही ले जाना होगा, केवल शाम की चाय 'मीडोज' में बनेगी।

पहाड़ों की बारिश का क्या भरोसा ? कुछ देर पहले धुआँधार बादल गरज रहे थे, सारा शहर पानी में भीगा ठिठुर रहा था – अब धूप में नहाता नीला आकाश धुंध की ओट से बाहर निकलता हुआ फैल रहा था। लतिका ने चैपल से बाहर आते हुए देखा – वीपिंग बिलोज की भीगी शाखाओं से धूप में चमकती हुई बारिश की बूँदें टपक रही थीं ... लड़कियाँ चैपल से बाहर निकलकर छोटे-छोटे गुच्छे बनाकर कॉरीडोर में जमा हो गयी हैं। नाश्ते के लिए अभी पौन घण्टा पड़ा था और उनमें अभी कोई भी लड़की होस्टल जाने के लिए इच्छुक नहीं थी। छुट्टियाँ अभी शुरू नहीं हुई थीं, किन्तु शायद इसीलिए वे इन चन्द बचे-खुचे क्षणों में अनुशासन के घेरे के भीतर भी मुक्त होने का भरपूर आनन्द उठा लेना चाहती थीं।

मिस वुड को लड़कियों का यह गुल-गपाडा अखरा, किन्तु फादर एल्मंड के सामने वह उन्हें डाँट-फटकार नहीं सकीं। अपनी झुँझलाहट दबाकर वह मुस्कराते हुए बोलीं – "कल सब चली जायेंगी, सारा स्कूल वीरान हो जायेगा।"

फादर एल्मंड का लम्बा ओजपूर्ण चेहरा चैपल की घुटी गरमाई से लाल हो उठा था। कॉरीडोर के जंगले पर अपनी छड़ी लटकाकर वह बोले – "छुट्टियों में पीछे होस्टल में कौन रहेगा ?"

"पिछले दो-तीन सालों से मिस लतिका ही रह रही हैं ..."

"और डॉक्टर मुकर्जी?" – फादर का ऊपरी होंठ तनिक खिंच आया।

"डॉक्टर तो सर्दी-गर्मी यहीं रहते हैं – मिस वुड ने विस्मय से फादर की ओर देखा। वह समझ नहीं सकी कि फादर ने डॉक्टर का प्रसंग क्यों छेड़ दिया है।

"डॉक्टर मुकर्जी छुट्टियों में कहीं नहीं जाते?"

"दो महीने की छुट्टियों में बर्मा जाना काफी कठिन है, फादर!" – मिस वुड हँसने लगी।

"मिस वुड, पता नहीं आप क्या सोचती हैं। मुझे तो मिस लतिका का होस्टल में अकेले रहना कुछ समझ में नहीं आता।"

"लेकिन फादर," मिस वुड ने कहा, "यह तो कान्वेन्ट स्कूल का नियम है कि कोई भी टीचर छुट्टियों में अपने खर्चे पर होस्टल में रह सकती है।"

"मैं फिलहाल स्कूल के नियमों की बात नहीं कर रहा। मिस लतिका डॉक्टर के संग यहाँ अकेली ही रह जायेंगी और सच पूछिए मिस वुड डॉक्टर के बारे में मेरी राय कुछ बहुत अच्छी नहीं है ..."

"फादर, आप कैसी बात कर रहे हैं ... मिस लतिका बच्चा थोड़े ही हैं ..." मिस वुड को ऐसी आशा नहीं थी कि फादर एल्मंड अपने दिल में ऐसी दकियानूसी भावना को स्थान देंगे।

फादर एल्मंड कुछ हतप्रभ-से हो गये, बात पलटते हुए बोले – "मिस वुड, मेरा मतलब यह नहीं था। आप तो जानती है, मिस लतिका और उस मिलिटरी अफसर को लेकर एक अच्छा-खासा स्कैंडल बन गया था, स्कूल की बदनामी होने में क्या देर लगती है।"

"वह बेचारा तो अब नहीं रहा। मैं उसे जानती थी फादर! ईश्वर उसकी आत्मा को शान्ति दे।"

मिस वुड ने धीरे-से अपनी दोनों बाँहों से क्रास किया।

फादर एल्मंड को मिस वुड की मूर्खता पर इतना अधिक क्षोभ हुआ कि उनसे आगे और कुछ नहीं बोला गया। डॉक्टर मुकर्जी से उनकी कभी नहीं पटती थी, इसलिए मिस वुड की आँखों में वह डॉक्टर को नीचा दिखाना चाहते थे। किन्तु मिस वुड लतिका का रोना ले बैठीं। आगे बात बढ़ाना व्यर्थ था। उन्होंने छड़ी को जंगले से उठाया और ऊपर साफ खुले आकाश को देखते हुए बोले – "प्रोग्राम आपने यूँ ही बदला, मिस वुड, अब क्या बारिश होगी।"

ह्यूबर्ट जब चैपल से बाहर निकला तो उसकी आँखें चकाचौंध-सी हो गयीं। उसे लगा जैसे किसी ने अचानक ढेर-सी चमकीली उबलती हुई रोशनी मुट्ठी में भरकर उसकी आँखों में झोंक दी हो। पियानो के संगीत के सुर रुई के छुई-मुई रेशों की भाँति अब तक उसके मस्तिष्क की थकी-माँदी नसों पर फड़फड़ा रहे थे। वह काफी थक गया था। पियानो बजाने से उसके फेफड़ों पर हमेशा भारी दबाव पड़ता, दिल की धड़कन तेज हो जाती थी। उसे लगता था कि संगीत के एक नोट को दूसरेनोट में उतारने के प्रयत्न में वह एक अँधेरी खाई पार कर रहा है।

आज चैपल में मैंने जो महसूस किया, वह कितना रहस्यमय, कितना विचित्र था, ह्यूबर्ट ने सोचा। मुझे लगा, पियानो का हर नोट चिरन्तन खामोशी की अँधेरी खोह से निकलकर बाहर फैली नीली धुंध को काटता, तराशता हुआ एक भूला-सा अर्थ खींच लाता है। गिरता हुआ हर 'पोज' एक छोटी-सी मौत है, मानो घने छायादार वृक्षों की काँपती छायाओं में कोई पगडण्डी गुम हो गयी हो, एक छोटी-सी मौत जो आने वाले सुरों को अपनी बची-खुची गूँजों की साँसें समर्पित कर जाती है ... जो मर जाती है, किन्तु मिट नहीं पाती, मिटती नहीं इसलिए मरकर भी जीवित है, दूसरे सुरों में लय हो जाती है ...

"डॉक्टर, क्या मृत्यु ऐसे ही आती है ?" अगर मैं डॉक्टर से पूछूँ तो वह हँसकर टाल देगा। मुझे लगता है, वह पिछले कुछ दिनों से कोई बात छिपा रहा है – उसकी हँसी में जो सहानुभूति का भाव होता है, वह मुझे अच्छा नहीं लगता। आज उसने मुझे स्पेशल सर्विस में आने से रोका था – कारण पूछने पर वह चुप रहा था। कौन-सी ऐसी बात है, जिसे मुझसे कहने में डॉक्टर कतराता है। शायद मैं शक्की मिजाज होता जा रहा हूँ, और बात कुछ भी नहीं है।

ह्यूबर्ट ने देखा, लड़कियों की कतार स्कूल से होस्टल जानेवाली सड़क पर नीचे उतरती जा रही है। उजली धूप में उनके रंग-बिरंगे रिबन, हल्की आसमानी रंग की फ्रॉकें और सफेद पेटियाँ चमक रही हैं। सीनियर कैम्ब्रिज की कुछ लड़कियों ने चैपल की वाटिका से गुलाब के फूलों को तोड़कर अपने बालों में लगा लिया है। कन्टोनमेन्ट के तीन-चार सिपाही लड़कियों को देखते हुए अश्लील मजाक करते हुए हँस रहे हैं और कभी-कभी किसी लड़की की ओर ज़रा झुककर सीटी बजाने लगते हैं।

"हलो मि॰ ह्यूबर्ट," ह्यूबर्ट ने चौंककर पीछे देखा। लतिका एक मोटा-सा रजिस्टर बगल में दबाये खड़ी थी।

"आप अभी यहीं हैं ?" ह्यूबर्ट की दृष्टि लतिका पर टिकी रही। वह क्रीम रंग की पूरी बाँहों की ऊनी जैकट पहने हुई थी। कुमाऊँनी लड़कियों की तरह लतिका का चेहरा गोल था, धूप की तपन से पका गेहुँआ रंग कहीं-कहीं हल्का-सा गुलाबी हो आया था, मानो बहुत धोने पर भी गुलाल के कुछ धब्बे इधर-उधर बिखरे रह गये हों।

"उन लड़कियों के नाम नोट करने थे, जो कल जा रही हैं ... सो पीछे रुकना पड़ा। आप भी तो कल जा रहे हैं मि॰ ह्यूबर्ट ?"

"अभी तक तो यही इरादा है। यहाँ रुककर भी क्या करूँगा। आप स्कूल की ओर जा रही हैं?"

"चलिए..."

पक्की सड़क पर लड़कियों की भीड़ जमा थी, इसलिए वे दोनों पोलो ग्राउण्ड का चक्कर काटती हुई पगडण्डी से नीचे उतरने लगे।

हवा तेज हो चली। चीड़ के पत्ते हर झोंके के संग टूटटूटकर पगडण्डी पर ढेर लगाते जाते थे। ह्यूबर्ट रास्ता बनाने के लिए अपनी छड़ी से उन्हें बुहारकर दोनों ओर बिखेर देता था। लतिका पीछे खड़ी हुई देखती रहती थी। अल्मोड़ा की ओर से आते हुए छोटे-छोटे बादल रेशमी रूमालों से उड़ते हुए सूरज के मुँह पर लिपटे से जाते थे, फिर हवा में वह निकलते थे। इस खेल में धूप कभी मन्द, फीकी-सी पड़ जाती थी, कभी अपना उजला आँचल खोलकर समूचे शहर को अपने में समेट लेती थी।

लतिका तनिक आगे निकल गयी। ह्यूबर्ट की साँस चढ़ गयी थी और वह धीरे-धीरे हाँफता हुआ पीछे से आ रहा था। जब वे पोलोग्राउण्ड के पवेलियन को छोड़कर सिमिट्री के दायीं ओर मुड़े, तो लतिका ह्यूबर्ट की प्रतीक्षा करने के लिए खड़ी हो गयी। उसे याद आया, छुट्टियों के दिनों में जब कभी कमरे में अकेले बैठे-बैठे उसका मन ऊब जाता था, तो वह अक्सर टहलते हुए सिमिट्री तक चली जाती थी। उससे सटी पहाड़ी पर चढ़कर वह बर्फ में ढँके देवदार वृक्षों को देखा करती थी, जिनकी झुकी हुई शाखों से रुई के गालों-सी बर्फ नीचे गिरा करती थी। नीचे बाजार जानेवाली सड़क पर बच्चे स्लेज पर फिसला करते थे। वह खड़ी-खड़ी बर्फ में छिपी हुई उस सड़क का अनुमान लगाया करती थी जो फादर एल्मंड के घर से गुजरती हुई मिलिटरी अस्पताल और डाकघर से होकर चर्च की सीढ़ियों तक जाकर गुम हो जाती थी। जो मनोरंजन एक दुर्गम पहेली को सुलझाने में होता है, वही लतिका को बर्फ में खोये रास्तों को खोज निकालने में होता था।

"आप बहुत तेज चलती है, मिस लतिका" – थकान से ह्यूबर्ट का चेहरा कुम्हला गया था। माथे पर पसीने की बूँदें छलक आयी थीं।

"कल रात आपकी तबीयत क्या कुछ खराब हो गयी थी?"

"आपने कैसे जाना?" क्या मैं अस्वस्थ दीख रहा हूँ?" ह्यूबर्ट के स्वर में हलकी-सी चीज का आभास था। सब लोग मेरी सेहत को लेकर क्यों बात शुरू करते हैं, उसने सोचा।

"नहीं, मुझे तो पता भी नहीं चलता, वह तो सुबह करीमुद्दीन ने बातों-ही-बातों में जिक्र छेड़ दिया था।" लतिका कुछ अप्रतिभ-सी हो आयी।

"कोई खास बात नहीं, वही पुराना दर्द शुरू हो गया था– अब बिल्कुल ठीक है।" अपने कथन की पुष्टि के लिए ह्यूबर्ट छाती सीधी करके तेज कदम बढ़ाने लगा।

"डॉक्टर मुकर्जी को दिखलाया था ?"

"वह सुबह आये थे। उनकी बात कुछ समझ में नहीं आती। हमेशा दो बातें एक-दूसरे से उल्टी कहते हैं। कहते थे कि इस बार मुझे छह-सात महीने की छुट्टी लेकर आराम करना चाहिए, लेकिन अगर मैं ठीक हूँ, तो भला इसकी क्या जरूरत है ?"

ह्यूबर्ट के स्वर में व्यथा की छाया लतिका से छिपी न रह सकी। बात को टालते हुए उसने कहा – "आप तो नाहक चिन्ता करते हैं, मि॰ ह्यूबर्ट ! आजकल मौसम बदल रहा है, अच्छे भले आदमी तक बीमार हो जाते हैं।"

ह्यूबर्ट का चेहरा प्रसन्नता से दमकने लगा। उसने लतिका को ध्यान से देखा । वह अपने दिल का संशय मिटाने के लिए निश्चिन्त हो जाना चाहता था कि कहीं लतिका उसे केवल दिलासा देने के लिए ही तो झूठ नही बोल रही।

"यही तो मैं सोच रहा था, मिस लतिका ! डॉक्टर की सलाह सुनकर तो मैं डर ही गया। भला छह महीने की छुट्टी लेकर मैं अकेला क्या करूँगा। स्कूल में तो बच्चों के संग मन लगा रहता है। सच पूछो तो दिल्ली में ये दो महीनों की छुट्टियाँ काटना भी दूभर हो जाता है ...।"

"मि॰ ह्यूबर्ट ... कल आप दिल्ली जा रहे हैं ... ?"

लतिका चलते-चलते हठात् ठिठक गयी। सामने पोलो-ग्राउण्ड फैला था, जिसके दूसरी ओर मिलिटरी की ट्रकें कन्टोनमेन्ट की ओर जा रही थीं। ह्यूबर्ट को लगा, जैसे लतिका की आँखें अधमुँदी-सी खुली रह गयी हैं, मानो पलकों पर एक पुराना भूला-सा सपना सरक आया है।

"मि॰ ह्यूबर्ट ... आप दिल्ली जा रहे हैं" – इस बार लतिका ने प्रश्न नहीं दुहराया – उसके स्वर में केवल एक असीम दूरी का भाव घिर आया।

"बहुत अर्सा पहले मैं भी दिल्ली गयी थी, मि॰ ह्यूबर्ट ! तब मैं बहुत छोटी थी ... न जाने कितने बरस बीत गये। हमारी मौसी का ब्याह वहीं हुआ था। बहुत-सी चीजें देखी थीं, लेकिन अब तो सब कुछ धुँधला-सा पड़ गया है। इतना याद है कि हम कुतुब पर चढ़ थे। सबसे ऊँची मंजिल से हमने नीचे झाँका था – न जाने कैसा लगा था। नीचे चलते हुए आदमी चाभी भरे हुए खिलौनों से लगते थे। हमने ऊपर से उन पर मूँगफलियाँ फेंकी थीं, लेकिन हम बहुत निराश हुए थे क्यों कि उनमें से किसी ने हमारी तरफ नहीं देखा। शायद माँ ने मुझे डाँटा था, और मैं सिर्फ नीचे झाँकते हुए डर गयी थी। सुना है, अब तो दिल्ली इतना बदल गया है कि पहचाना नहीं जाता ..."

वे दोनों फिर चलने लगे। हवा का वेग ढीला पड़ने लगा। उड़ते हुए बादल अब सुस्ताने से लगे थे, उनकी छायाएँ नन्दा देवी और पंचचूली की पहाड़ियों पर गिर रही थीं। स्कूल के पास पहुँचते-पहुँचते चीड़ के पेड़ पीछे

छूट गये, कहीं-कहीं खुबानी के पेड़ों के आस-पास बुरुस के लाल फूल धूप में चमक जाते थे। स्कूल तक आने में उन्होंने पोलोग्राउण्ड का लम्बा चक्कर लगा लिया था।

"मिस लतिका, आप कहीं छुट्टियों में जाती क्यों नहीं – सरदियों में तो यहाँ सब कुछ वीरान हो जाता होगा ?"

"अब मुझे यहाँ अच्छा लगता है," लतिका ने कहा, "पहले साल अकेलापन कुछ अखरा था – अब आदी हो गयी हूँ। क्रिसमस से एक रात पहले क्लब में डान्स होता है, लाटरी डाली जाती है और रात को देर तक नाच-गाना होता रहता है। नये साल के दिन कुमाऊँ रेजीमेण्ट की ओर से परेड-ग्राउण्ड में कार्नीवाल किया जाता है, बर्फ पर स्केटिंग होती है, रंग-बिरंगे गुब्बारों के नीचे फौजी बैण्ड बजता है, फौजी अफसर फैन्सी ड्रेस में भाग लेते हैं – हर साल ऐसा ही होता है, मि॰ ह्यूबर्ट। फिर कुछ दिनों बाद विन्टर स्पोर्ट्स के लिए अंग्रेज टूरिस्ट आते हैं। हर साल मैं उनसे परिचित होती हूँ, वापिस लौटते हुए वे हमेशा वादा करते हैं कि अगले साल भी आयेंगे, पर मैं जानती हूँ कि वे नहीं आयेंगे, वे भी जानते हैं कि वे नहीं आयेंगे, फिर भी हमारी दोस्ती में कोई अन्तर नहीं पड़ता। फिर ... फिर कुछ दिनों बाद पहाड़ों पर बर्फ पिघलने लगती है, छुट्टियाँ खत्म होने लगती हैं, आप सब लोग अपने-अपने घरों से वापिस लौट आते हैं – और मि॰ ह्यूबर्ट, पता भी नहीं चलता कि छुट्टियाँ कब शुरू हुई थीं, कब खत्म हो गयीं ..."

लतिका ने देखा कि ह्यूबर्ट उसकी ओर आतंकित भयाकुल दृष्टि से देख रहा है। वह सिटपिटाकर चुप हो गयी। उसे लगा, मानो वह इतनी देर से पागल-सी अनर्गल प्रलाप कर रही हो।

"मुझे माफ करना मि॰ ह्यूबर्ट, कभी-कभी मैं बच्चों की तरह बातों में बहक जाती हूँ।"

"मिस लतिका ..." ह्यूबर्ट ने धीरे-से कहा। वह चलते-चलते रुक गया था। लतिका ह्यूबर्ट के भारी स्वर से चौंक-सी गयी।

"क्या बात है मि॰ ह्यूबर्ट ?"

"वह पत्र ... उसके लिए मैं लज्जित हूँ। उसे आप वापिस लौटा दें, समझ लें कि मैंने उसे कभी नहीं लिखा था।"

लतिका कुछ समझ न सकी, दिग्भ्रान्त-सी खड़ी हुई ह्यूबर्ट के पीले उद्विग्न चेहरे को देखती रही।

ह्यूबर्ट ने धीरे-से लतिका के कन्धे पर हाथ रख दिया।

"कल डॉक्टर ने मुझे सब कुछ बता दिया। अगर मुझे पहले से मालूम होता तो ... तो" ह्यूबर्ट हकलाने लगा।

"मि० ह्यूबर्ट ..." किन्तु लतिका से आगे कुछ भी नहीं कहा गया। उसका चेहरा सफेद हो गया था।

दोनों चुपचाप कुछ देर तक स्कूल के गेट के बाहर खड़े रहे।

मीडोज ... पगडण्डियों, पत्तों, छायाओं से घिरा छोटा-सा द्वीप, मानो कोई घोंसला दो हरी घाटियों के बीच आ दबा हो। भीतर घुसते ही पिकनिक के काले आग से झुलसे हुए पत्थर, अधजली टहनियाँ, बैठने के लिए बिछाये गये पुराने अखबारों के टुकड़े इधर-उधर बिखरे हुए दिखायी दे जाते हैं। अक्सर टूरिस्ट पिकनिक के लिए यहाँ आते हैं। मीडोज को बीच में काटता हुआ टेड़ा-मेढ़ा बरसाती नाला बहता है, जो दूर से धूप में चमकता हुआ सफेद रिबन-सा दिखायी देता है।

यहीं पर काठ के तख्तों का बना हुआ टूटा-सा पुल है, जिस पर लड़कियाँ हिचकोले खाते हुई चल रही हैं।

"डॉक्टर मुकर्जी, आप तो सारा जंगल जला देंगे" – मिस वुड ने अपनी ऊँची एड़ी के सैण्डल से जलती हुई दियासलाई को दबा डाला, जो डॉक्टर ने सिगार सुलगाकर चीड़ के पत्तों के ढेर पर फेंक दी थी। वे नाले से कुछ दूर हटकर चीड़ के दो पेड़ों से गुँथी हुई छाया के नीचे बैठे थे। उनके सामने एक छोटा-सा रास्ता नीचे पहाड़ी गाँव की ओर जाता था, जहाँ पहाड़ की गोद में शकरपारों के खेत एक-दूसरे के नीचे बिछे हुए थे। दोपहर के सन्नाटे में भेड़-बकरियों के गलों में बँधी हुई घण्टियों का स्वर हवा में बहता हुआ सुनायी दे जाता था।

घास पर लेटे-लेटे डॉक्टर सिगार पीते रहे।

"जंगल की आग कभी देखी है, मिस वुड ... एक अलमस्त नशे की तरह धीरे-धीरे फैलती जाती है।"

"आपने कभी देखी है डॉक्टर ?" मिस वुड ने पूछा, "मुझे तो बड़ा डर लगता है।"

"बहुत साल पहले शहरों को जलते हुए देखा था।" डॉक्टर लेटे हुए आकाश की ओर ताक रहे थे। "एक-एक मकान ताश के पत्तों की तरह गिरता जाता है। दुर्भाग्यवश ऐसे अवसर देखने में बहुत कम आते हैं।"

"आपने कहाँ देखा, डॉक्टर ?"

"लड़ाई के दिनों में अपने शहर रंगून को जलते हुए देखा था।"

मिस वुड की आत्मा को ठेस लगी, किन्तु फिर भी उनकी उत्सुकता शान्त नहीं हुई।

"आपका घर – क्या वह भी जल गया था ?"

डॉक्टर कुछ देर तक चुपचाप लेटा रहा।

"हम उसे खाली छोड़कर चले आये थे – मालूम नहीं बाद में क्या हुआ।" अपने व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी कहने में डॉक्टर को कठिनाई महसूस होती है।

"डॉक्टर, क्या आप कभी वापिस बर्मा जाने की बात नहीं सोचते ?" डॉक्टर ने अँगड़ाई ली और करवट बदलकर औंधे मुँह लेट गये। उनकी आँखें मुँद गयीं और माथे पर बालों की लटें झूल आयीं।

"सोचने से क्या होता है मिस वुड ... जब बर्मा में था, तब क्या कभी सोचा था कि यहाँ आकर उम्र काटनी होगी ?"

"लेकिन डॉक्टर, कुछ भी कह लो, अपने देश का सुख कहीं और नहीं मिलता। यहाँ तुम चाहे कितने वर्ष रह लो, अपने को हमेशा अजनबी ही पाओगे।"

डाक्टेर ने सिगार के धुएँ को धीरे-धीरे हवा में छोड़ दिया – "दरअसल अजनबी तो मैं वहाँ भी समझा जाऊँगा, मिस वुड। इतने वर्षों बाद मुझे कौन पहचानेगा ! इस उम्र में नये सिरे से रिश्ते जोड़ना काफी सिरदर्द का काम है ... कम-से-कम मेरे बस की बात नहीं है।"

"लेकिन डॉक्टर, आप कब तक इस पहाड़ी कस्बे में पड़े रहेंगे – इसी देश में रहना है तो किसी बड़े शहर में प्रैक्टिस शुरू कीजिए।"

"प्रैक्टिस बढ़ाने के लिए कहाँ-कहाँ भटकता फिरूँगा, मिस वुड। जहाँ रहो, वहीं मरीज मिल जाते हैं। यहाँ आया था कुछ दिनों के लिए – फिर मुद्दत हो गयी और टिका रहा। जब कभी जी ऊबेगा, कहीं चला जाऊँगा। जड़ें कहीं नहीं जमतीं, तो पीछे भी कुछ नहीं छूट जाता। मुझे अपने बारे में कोई गलतफहमी नहीं है मिस वुड, मैं सुखी हूँ।"

मिस वुड ने डॉक्टर की बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया। दिल में वह हमेशा डॉक्टर को उच्छृंखल, लापरवाह और सनकी समझती रही हैं, किन्तु डॉक्टर के चरित्र में उनका विश्वास है – न जाने क्यों, क्योंकि डॉक्टर ने जाने-अनजाने में उसका कोई प्रमाण दिया हो, यह उन्हें याद नहीं पड़ता।

मिस वुड ने एक ठंडी साँस भरी। वह हमेशा यह सोचती थी कि यदि डॉक्टर इतना आलसी और लापरवाह न होता, तो अपनी योग्यता के बल पर काफी चमक सकता था। इसलिए उन्हें डॉक्टर पर क्रोध भी आता था और दुःख भी होता था।

मिस वुड ने अपने बैग से ऊन का गोला और सलाइयाँ निकालीं, फिर उसके नीचे से अखबार मे लिपटा हुआ चौड़ा कॉफी का डिब्बा उठाया, जिसमें अण्डों की सैण्डविचें और हैम्बर्गर दबे हुए थे। थर्मस से प्यालों में कॉफी उँडेलते हुए मिस वुड ने कहा – "डॉक्टर, कॉफी ठंडी हो रही है ..."

डॉक्टर लेटे-लेटे बुड़बुड़ाया। मिस वुड ने नीचे झुककर देखा, वह कोहनी पर सिर टिकाये सो रहा था। ऊपर का होंठ ज़रा-सा फैलकर मुड़ गया था, मानो किसी से मजाक करने से पहले मुस्करा रहा हो।

उसकी अंगुलियों में दबा हुआ सिगार नीचे झुका हुआ लटक रहा था।

"मेरी, मेरी, वाट डू यू वान्ट, वाट डू यू वान्ट ..." दूसरे स्टैण्डर्ड में पढ़नेवाली मेरी ने अपनी चंचल, चपल आँखें ऊपर उठायीं – लड़कियों का दायरा उसे घेरे हुए कभी पास आता था, कभी दूर खिंचता चला जाता था।

"आई वांट ... आई वांट ब्लू" – दोनों हाथों को हवा में घुमाते हुए मेरी चिल्लायी। दायरा पानी की तरह टूट गया। सब लड़कियाँ एक-दूसरे पर गिरती-पड़ती किसी नीली वस्तु को छूने के लिए भाग-दौड़ करने लगीं।

लंच समाप्त हो चुका था। लड़कियों के छोटे-छोटे दल मीडोज में बिखर गये थे। ऊँची क्लास की कुछ लड़कियाँ चाय का पानी गर्म करने के लिए पेड़ों पर चढ़कर सूखी टहनियाँ तोड़ रही थीं।

दोपहर की उस घड़ी में मीडोज अलसाया-ऊँघता-सा जान पड़ता था। हवा का कोई भूला-भटका झोंका ... चीड़ के पत्ते खड़खड़ा उठते थे। कभी कोई पक्षी अपनी सुस्ती मिटाने झाड़ियों से उड़कर नाले के किनारे बैठ जाता था, पानी में सिर डुबोता था, फिर ऊबकर हवा में दो-चार निरुद्देश्य चक्कर काटकर दुबारा झाड़ियों में दुबक जाता था।

किन्तु जंगल की खामोशी शायद कभी चुप नहीं रहती। गहरी नींद में डूबी सपनों-सी कुछ आवाजें नीरवता के हल्के झीने परदे पर सलवटें बिछा जाती हैं ... मूक लहरों-सी हवा में तिरती हैं ... मानो कोई दबे पाँव झाँककर अदृश्य संकेत कर जाता है – "देखो मैं यहाँ हूँ ..."

लतिका ने जूली के 'बाब हेयर' को सहलाते हुए कहा, "तुम्हें कल रात बुलाया था।"

"मैडम, मैं गयी थी – आप अपने कमरे में नहीं थीं।" लतिका को याद आया कि कल रात वह डॉक्टर के कमरे के टैरेस पर देर तक बैठी रही थी – और भीतर ह्यूबर्ट पियानो पर शोपां का नौक्टर्न बजा रहा था।

"जूली, तुमसे कुछ पूछना था।" उसे लगा, वह जूली की आँखों से अपने को बचा रही है।

जूली ने अपना चेहरा ऊपर उठाया। उसकी भूरी आँखों से कौतूहल झाँक रहा था।

"तुम ऑफिसर्स मेस में किसी को जानती हो ?"

जूली ने अनिश्चित भाव से सिर हिलाया। लतिका कुछ देर तक जूली को अपलक घूरती रही।

"जूली, मुझे विश्वास है, तुम झूठ नहीं बोलोगी।" कुछ क्षण पहले जूली की आँखों में जो कौतूहल था, वह भय में परिणत होने लगा।

लतिका ने अपनी जैकेट की जेब से एक नीला लिफाफा निकालकर जूली की गोद में फेंक दिया।

"यह किसकी चिट्ठी है ?"

जूली ने लिफाफा उठाने के लिए हाथ बढ़ाया, किन्तु फिर एक क्षण के लिए उसका हाथ काँपकर ठिठक गया – लिफाफे पर उसका नाम और होस्टल का पता लिखा हुआ था।

"थैंक यू मैडम, मेरे भाई का पत्र है, वह झाँसी में रहते हैं।" जूली ने घबराहट में लिफाफे को अपने स्कर्ट की तहों में छिपा लिया।

"जूली, ज़रा मुझे लिफाफा दिखालाओ।" लतिका का स्वर तीखा, कर्कश-सा हो आया।

जूली ने अनमने भाव से लतिका को पत्र दे दिया।

"तुम्हारे भाई झाँसी में रहते हैं ?"

जूली इस बार कुछ नहीं बोली। उसकी उद्भ्रान्त उखड़ी-सी आँखें लतिका को देखती रहीं।

"यह क्या है ?"

जूली का चेहरा सफेद, फक पड़ गया। लिफाफे पर कुमाऊँ रेजीमेण्टल सेण्टर की मुहर उसकी ओर घूर रही थी।

"कौन है यह ..." लतिका ने पूछा। उसने पहले भी होस्टल में उड़ती हुई अफवाह सुनी थी कि जूली को क्लब में किसी मिलिटरी अफसर के संग देखा गया था, किन्तु ऐसी अफवाहें अक्सर उड़ती रहती थीं, और उसने उस पर विश्वास नहीं किया था।

"जूली, तुम अभी बहुत छोटी हो ..." जूली के होंठ काँपे – उसकी आँखों में निरीह याचना का भाव घिर आया।

"अच्छा अभी जाओ ... तुमसे छुट्टियों के बाद बातें करूँगी।"

जूली ने ललचाई दृष्टि से लिफाफे की ओर देखा, कुछ बोलने को उद्यत हुई, फिर बिना कुछ कहे चुपचाप वापिस लौट गयी।

लतिका देर तक जूली को देखती रही, जब तक वह आँखों से ओझल नहीं हो गयी, क्या मैं किसी खूँसट बुढ़िया से कम हूँ? अपने अभाव का बदला क्या मैं दूसरों से ले रही हूँ?

शायद ... कौन जाने ... शायद जूली का यह प्रथम परिचय हो, उस अनुभूति से, जिसे कोई भी लड़की बड़े चाव से सँजोकर, सँभालकर अपने में छिपाये रहती है, एक अनिर्वचनीय सुख, जो पीड़ा लिये हैं, पीड़ा और सुख को डुबोती हुई उमड़ते ज्वर की खुमारी ... जो दोनों को अपने में समो लेती है ... एक दर्द, जो आनन्द से उपजा है और पीड़ा देता है ...

यहीं इसी देवदार के नीचे उसे भी यही लगा था, जब गिरीश ने पूछा था – "तुम चुप क्यों हो ?" वह आँखें मूँदे सोच रही थी – सोच कहाँ रही थी, जी रही थी, उस क्षण को जो भय और विस्मय के बीच भिंचा था – बहका-सा पागल क्षण। वह अभी पीछे मुड़ेगी तो गिरीश की 'नर्वस' मुस्कराहट दिखायी दे जायेगी, उस दिन से आज दोपहर तक का अतीत एक दु:स्वप्न की मानिन्द टूट जायेगा। वही देवदार है, जिस पर उसने अपने बालों के क्लिप से गिरीश का नाम लिखा था। पेड़ की छाल उतरती नहीं थी, क्लिप टूट-टूट जाता था, तब गिरीश ने अपने नाम के नीचे उसका नाम लिखा था। जब कभी कोई अक्षर बिगड़कर टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता था तब वह हँसती थी, और गिरीश का काँपता हाथ और भी काँप जाता था ...

लतिका को लगा कि जो वह याद करती है, वही भूलना भी चाहती है, लेकिन अब सचमुच भूलने लगती है, तब उसे भय लगता है कि जैसे कोई उसकी किसी चीज को उसके हाथों से छीने लिये जा रहा है, ऐसा कुछ जो सदा के लिए खो जायेगा। बचपन में जब कभी वह अपने किसी खिलौने को खो देती थी, तो वह गुमसुम-सी होकर सोचा करती थी, कहाँ रख दिया मैंने। जब बहुत दौड़-धूप करने पर खिलौना मिल जाता, तो वह बहाना करती कि अभी उसे खोज ही रही है, कि वह अभी मिला नहीं है। जिस स्थान पर खिलौना रखा होता, जान-बूझकर उसे छोड़कर घर के दूसरे कोने में उसे खोजने का उपक्रम करती। तब खोई हुई चीज याद रहती, इसलिए भूलने का भय नहीं रहता था ...

आज वह उस बचपन के खेल का बहाना क्यों नहीं कर पाती ? 'बहाना' ... शायद करती है, उसे याद करने का बहाना, जो भूलता जा रहा है ... दिन, महीने बीत जाते हैं, और वह उलझी रहती है, अनजाने में गिरीश का चेहरा धुँधला पड़ता जाता है, याद वह करती है, किन्तु जैसे किसी पुरानी तसवीर के धूल भरे शीशे को साफ कर रही हो। अब वैसा दर्द नहीं होता, सिर्फ उसको याद करती है, जो पहले कभी होता था – तब उसे अपने पर ग्लानि होती है। वह फिर जान-बूझकर उस घाव को कुरेदती है, जो भरता जा रहा है, खुद-ब-खुद उसकी कोशिशों के बावजूद भरता जा रहा है ...

देवदार पर खुदे हुए अधमिटे नाम लतिका की ओर निस्तब्ध निरीह भाव से निहार रहे थे। मीडोज के घने सन्नाटे में नाले पार से खेलती हुई लड़कियों की आवाजें गूँज जाती थीं ...

वाट डू यू वांट? वाट डू यू वांट?

तितलियाँ, झींगुर, जुगनू... मीडोज पर उतरती हुई साँझ की छायाओं में पता नहीं चलता, कौन आवाज किसकी है ? दोपहर के समय जिन आवाजों को अलग-अलग करके पहचाना जा सकता था, अब वे एकस्वरता की अविरल धारा में घुल गयी थीं। घास से अपने पैरों को पोंछता हुआ कोई रेंग रहा है। झाड़ियों के झुरमुट से परों को फड़फड़ाता हुआ झपटकर कोई ऊपर से उड़ जाता है ... किन्तु ऊपर देखो तो कहीं कुछ भी नहीं है। मीडोज के झरने का गड़गड़ाता स्वर ... जैसे अँधेरी सुरंग में झपाटे से ट्रेन गुजर गयी हो, और देर तक उसमें सीटियों और पहियों की चीत्कार गूँजती रही हो ...

पिकनिक कुछ देर तक और चलती, किन्तु बादलों की तहें एक-दूसरे पर चढ़ती जा रही थीं। पिकनिक का सामान बटोरा जाने लगा। मीडोज के चारों ओर बिखरी हुई लड़कियाँ मिस वुड के इर्द-गिर्द जमा होने लगीं। अपने संग वे अजीबोगरीब चीजें बटोर लायी थी, कोई किसी पक्षी के टूटे पंख को बालों में लगाये हुए थी, किसी ने पेड़ की टहनी को चाकू से छील-कर छोटी-सी बेंत बना ली थी। ऊँची क्लास की कुछ लड़कियों ने अपने-अपने रूमालों में नाले से पकड़ी हुई छोटी-छोटी बालिश्त भर की मछलियों को दबा रखा था जिन्हें मिस वुड से छिपाकर वे एक-दूसरे को दिखा रही थीं।

मिस वुड लड़कियों की टोली के संग आगे निकल गयीं। मीडोज से पक्की सड़क तक तीन-चार फर्लांग की चढ़ाई थी। लतिका हाँफने लगी। डॉक्टर मुकर्जी सबसे पीछे आ रहे थे। लतिका के पास पहुँचकर वह ठिठक गये। डॉक्टर ने दोनों घुटनों को जमीन पर टेकते पर सिर झुकाकर एलिजाबेथ-युगीन अंग्रेजी में कहा – "मैडम, आप इतनी परेशान क्यों नजर आ रही हैं ..."

और डॉक्टर की नाटकीय मुद्रा को देखकर लतिका के होंठों पर एक थकी-सी ढीली-ढीली मुस्कराहट बिखर गयी।

"प्यास के मारे गला सूख रहा है ... और यह चढ़ाई है कि खत्म होने में नहीं आती।"

डॉक्टर ने अपने कन्धे पर लटकते हुए थर्मस को उतारकर लतिका के हाथों में देते हुए कहा – "थोड़ी-सी कॉफी बची है, शायद कुछ मदद कर सके।"

"पिकनिक में तुम कहाँ रह गये डॉक्टर, कहीं दिखायी नहीं दिए ?"

"दोपहर भर सोता रहा – मिस वुड के संग। मेरा मतलब है, मिस वुड पास बैठी थीं।

"मुझे लगता है, मिस वुड मुझसे मुहब्बत करती हैं।" कोई भी मजाक करते समय डॉक्टर अपनी मूँछों के कोनों को चबाने लगता है।

"क्या कहती थीं ?" लतिका ने थर्मस से कॉफी को मुँह में उँडेल लिया।

"शायद कुछ कहती, लेकिन बदकिस्मती से बीच में ही मुझे नींद आ गयी। मेरी ज़िंदगी के कुछ खूबसूरत प्रेम-प्रसंग कम्बख़्त इस नींद के कारण अधूरे रह गये हैं।"

और इस दौरान में जब दोनों बातें कर रहे थे, उनके पीछे मीडोज और मोटर रोड के संग चढ़ती हुई चीड़ और बाँज के वृक्षों की कतारें साँझ के घिरते अँधेरे में डूबने लगीं, मानो प्रार्थना करते हुए उन्होंने चुपचाप अपने सिर नीचे झुका लिये हों। इन्हीं पेड़ों के ऊपर बादलों में गिरजे का क्रास कहीं उलझा पड़ा था। उसके नीचे पहाड़ों की ढलान पर बिछे हुए खेत भागती हुई गिलहरियों से लग रहे थे, जो मानो किसी की टोह में स्तब्ध ठिठक गयी हों।

"डॉक्टर, मि० ह्यूबर्ट पिकनिक पर नहीं आये?"

डॉक्टर मुकर्जी टार्च जलाकर लतिका के आगे-आगे चल रहे थे।

"मैंने उन्हें मना कर दिया था।"

"किसलिए?"

अँधेरे में पैरों के नीचे दबे हुए पत्तों की चरमराहट के अतिरिक्त कुछ सुनायी नहीं देता था। डॉक्टर मुकर्जी ने धीरे-से खाँसा।

"पिछले कुछ दिनों से मुझे सन्देह होता जा रहा है कि ह्यूबर्ट की छाती का दर्द शायद मामूली दर्द नहीं है।" डॉक्टर थोड़ा-सा हँसा, जैसे उसे अपनी यह गम्भीरता अरुचिकर लग रही हो।

डॉक्टर ने प्रतीक्षा की, शायद लतिका कुछ कहेगी। किन्तु लतिका चुपचाप उसके पीछे चल रही थी।

"यह मेरा महज शक है, शायद मैं बिलकुल गलत होऊँ, किन्तु यह बेहतर होगा कि वह अपने एक फेफड़े का एक्सरे करा लें – इससे कम-से-कम कोई भ्रम तो नहीं रहेगा।"

"आपने मि० ह्यूबर्ट से इसके बारे में कुछ कहा है?"

"अभी तक कुछ नहीं कहा। ह्यूबर्ट ज़रा-सी बात पर चिन्तित हो उठता है, इसलिए कभी साहस नहीं हो पाता ..."

डॉक्टर को लगा, उसके पीछे आते हुए लतिका के पैरों का स्वर सहसा बन्द हो गया है। उन्होंने पीछे मुड़कर देखा, लतिका बीच सड़क पर अँधेरे में छाया-सी चुपचाप निश्चल खड़ी है।

"डॉक्टर ..." लतिका का स्वर भर्राया हुआ था।

"क्या बात है मिस लतिका ... आप रुक क्यों गयीं ?"

"डॉक्टर – क्या मि॰ ह्यूबर्ट ..."

डॉक्टर ने अपनी टार्च की मद्धिम रोशनी लतिका पर उठा दी ... उसने देखा लतिका का चेहरा एकदम पीला पड़ गया है और वह रह-रहकर पत्ते-सी काँप जाती है।

"मिस लतिका, क्या बात है, आप तो बहुत डरी-सी जान पड़ती हैं ?"

"कुछ नहीं डॉक्टर ... मुझे ... मुझे ... कुछ याद आ गया था ... ।"

वे दोनों फिर चलने लगे। कुछ दूर जाने पर उनकी आँखें ऊपर उठ गयीं। पक्षियों का एक बेड़ा धूमिल आकाश में त्रिकोण बनाता हुआ पहाड़ों के पीछे से उनकी ओर आ रहा था। लतिका और डॉक्टर सिर उठाकर इन पक्षियों को देखते रहे। लतिका को याद आया, हर साल सर्दी की छुट्टियों से पहले ये परिन्दे मैदानों की ओर उड़ते हैं, कुछ दिनों के लिए बीच के इस पहाड़ी स्टेशन पर बसेरा करते हैं, प्रतीक्षा करते हैं बर्फ के दिनों की, जब वे नीचे अजनबी, अनजाने देशों में उड़ जायेंगे ...

क्या वे सब भी प्रतीक्षा कर रहे हैं ? वह, डॉक्टर मुकर्जी, मि॰ ह्यूबर्ट – लेकिन कहाँ के लिए, हम कहाँ जायेंगे।

किन्तु उसका कोई उत्तर नहीं मिला – उस अँधेरे में मीडोज के झरने के भुतैले स्वर और चीड़ के पत्तों की सरसराहट के अतिरिक्त कुछ सुनायी नहीं देता था।

लतिका हड़बड़ाकर चौंक गयी। अपनी छड़ी पर झुका हुआ डॉक्टर धीरे-धीरे सीटी बजा रहा था।

"मिस लतिका, जल्दी कीजिए, बारिश शुरू होनेवाली है।"

होस्टल पहुँचते-पहुँचते बिजली चमकने लगी थी। किन्तु उस रात बारिश देर तक नहीं हुई। बादल बरसने भी नहीं पाते थे कि हवा के थपेड़ों से धकेल दिये जाते थे। दूसरे दिन तड़के ही बस पकड़नी थी, इसलिए डिनर के बाद लड़कियाँ सोने के लिए अपने-अपने कमरों में चली गयी थीं।

जब लतिका अपने कमरे में गयी, तो उस समय कुमाऊँ रेजीमेण्ट सेण्टर का बिगुल बज रहा था। उसके कमरे में करीमुद्दीन कोई पहाड़ी धुन गुनगुनाता हुआ लैम्प में गैस पम्प कर रहा था। लतिका उन्हीं कपड़ों में तकिये को दुहरा करके लेट गयी। करीमुद्दीन ने उड़ती हुई निगाह से लतिका को देखा, फिर अपने काम में जुट गया।

"पिकनिक कैसी रही मेम साहब ?"

"तुम क्यों नहीं आये, सब लड़कियाँ तुम्हें पूछ रहीं थीं ?" लतिका को लगा, दिन-भर की थकान धीरे-धीरे उसके शरीर की पसलियों पर चिपटती जा रही है। अनायास उसकी आँखे नींद के बोझ से झपकने लगीं।

"मैं चला आता ह्यूबर्ट साहब की तीमारदारी कौन करता। दिन भर उनके बिस्तरे से सटा हुआ बैठा रहा ... और अब वह गायब हो गये हैं।"

करीमुद्दीन ने कन्धे पर लटकते हुए मैले-कुचैले तौलिये को उतारा और लैम्प के शीशों की गर्द पोंछने लगा।

लतिका की अधमुँदी आँखें खुली गयीं। "क्या ह्यूबर्ट साहब अपने कमरे में नहीं है ?"

"खुदा जाने, इस हालत में कहाँ भटक रहे हैं। पानी गर्म करने कुछ देर के लिए बाहर गया था, वापिस आने पर देखता हूँ कि कमरा खाली पड़ा है।"

करीमुद्दीन बड़बड़ाता हुआ बाहर चला गया। लतिका ने लेटे-लेटे पलँग के नीचे चप्पलों को पैरों से उतार दिया।

ह्यूबर्ट इतनी रात कहाँ गये ? किन्तु लतिका की आँखें फिर झपक गयीं। दिन-भर की थकान ने सब परेशानियों, प्रश्नों पर कुंजी लगा दी थी; मानो दिन-भर आँखमिचौनी खेलते हुए उसने अपने कमरे में 'दय्या' को छू लिया था। अब वह सुरक्षित थी, कमरे की चहारदीवारी के भीतर उसे कोई नहीं पकड़ सकता। दिन के उजाले में वह गवाह थी, मुजरिम थी, हर चीज का उससे तकाजा था, अब इस अकेलेपन में कोई गिला नहीं, उलाहना नहीं, सब खींचातानी खत्म हो गयी है, जो अपना है, वह बिल्कुल अपना-सा हो गया है, जो अपना नहीं है, उसका दुःख नहीं, अपनाने की फुरसत नहीं ...

लतिका ने दीवार की ओर मुँह घुमा लिया। लैम्प के फीके आलोक में हवा में काँपते परदों की छायाएँ हिल रही थीं। बिजली कड़कने से खिड़कियों के शीशे चमक-चमक जाते थे, दरवाजे चटखने लगते थे, जैसे कोई बाहर से धीमे-धीमे खटखटा रहा हो। कॉरीडोर से अपने-अपने कमरों में जाती हुई लड़कियों की हँसी, बातों के कुछ शब्द – फिर सब कुछ शान्त हो गया, किन्तु फिर भी देर तक कच्ची नींद में वह लैम्प का धीमा-सा 'सी-सी' स्वर सुनती रही। कब वह स्वर भी मौन का भाग बनकर मूक हो गया, उसे पता न चला।

कुछ देर बाद उसको लगा, सीढ़ियों से कुछ दबी आवाजें ऊपर आ रही हैं, बीच-बीच में कोई चिल्ला उठता है, और फिर सहसा आवाजें धीमी पड़ जाती हैं।

"मिस लतिका, ज़रा अपना लैम्प ले आइये" – कॉरीडोर के जीने से डॉक्टर मुकर्जी की आवाज आयी थी।

कॉरीडोर में अँधेरा था। वह तीन-चार सीढ़ियाँ नीचे उतरी, लैम्प नीचे किया। सीढ़ियों से सटे जंगले पर ह्यूबर्ट ने अपना सिर रख दिया था, उसकी एक बाँह जंगले के नीचे लटक रही थी और दूसरी डॉक्टर के कन्धे पर झूल रही थी, जिसे डॉक्टर ने अपने हाथों में जकड़ रखा था।

"मिस लतिका, लैम्प ज़रा और नीचे झुका दीजिए ... ह्यूबर्ट ... ह्यूबर्ट ..." डॉक्टर ने ह्यूबर्ट को सहारा देकर ऊपर खींचा। ह्यूबर्ट ने अपना चेहरा ऊपर किया। व्हिस्की की तेज बू का झोंका लतिका के सारे शरीर को झिंझोड़ गया। ह्यूबर्ट की आँखों में सुर्ख डोरे खिंच आये थे, कमीज का कालर उलटा हो गया था और टाई की गाँठ ढीली होकर नीचे खिसक आयी थी। लतिका ने काँपते हाथों से लैम्प सीढ़ियों पर रख दिया और आप दीवार के सहारे खड़ी हो गयी। उसका सिर चकराने लगा था।

"इन ए बैक लेन ऑफ द सिटी, देयर इज ए गर्ल हू लब्ज मी ..." ह्यूबर्ट हिचकियों के बीच गुनगुना उठता था।

"ह्यूबर्ट प्लीज ... प्लीज," डॉक्टर ने ह्यूबर्ट के लड़खड़ाते शरीर को अपनी मजबूत गिरफ्त में ले लिया।

"मिस लतिका, आप लैम्प लेकर आगे चलिए ..." लतिका ने लैम्प उठाया। दीवार पर उन तीनों की छायाएँ डगमगाने लगीं।

"इन ए बैक लेन आफ द सिटी, देयर इज ए गर्ल हू लब्ज मी ..." ह्यूबर्ट डॉक्टर मुकर्जी के कन्धे पर सिर टिकाये अँधेरी सीढ़ियों पर उल्टे-सीधे पैर रखता चढ़ रहा था।

"डॉक्टर, हम कहाँ हैं ?" ह्यूबर्ट सहसा इतनी जोर से चिल्लाया कि उसकी लड़खड़ाती आवाज सुनसान अँधेरे में कॉरीडोर की छत से टकराकर देर तक हवा में गूँजती रही।

"ह्यूबर्ट ..." डॉक्टर को एकदम ह्यूबर्ट पर गुस्सा आ गया, फिर अपने गुस्से पर ही उसे खीझ-सी हो आयी और वह ह्यूबर्ट की पीठ थपथपाने लगा।

"कुछ बात नहीं है ह्यूबर्ट डियर, तुम सिर्फ थक गये हो।" ह्यूबर्ट ने अपनी आँखें डॉक्टर पर गड़ा दीं, उनमें एक भयभीत बच्चे की-सी कातरता झलक रही थी, मानो डॉक्टर के चेहरे से वह किसी प्रश्न का उत्तर पा लेना चाहता हो।

ह्यूबर्ट के कमरे में पहुँच कर डॉक्टर ने उसे बिस्तरे पर लिटा दिया। ह्यूबर्ट ने बिना किसी विरोध के चुपचाप जूते-मोजे उतरवा दिये। जब डॉक्टर ह्यूबर्ट की टाई उतारने लगा, तो ह्यूबर्ट अपनी कुहनी के सहारे उठा, कुछ देर तक डॉक्टर को आँखें फाड़ते हुए घूरता रहा, फिर धीरे-से उसका हाथ पकड़ लिया।

"डॉक्टर, क्या मैं मर जाऊँगा ?"

"कैसी बात करते हो ह्यूबर्ट !" डॉक्टर ने हाथ छुड़ाकर धीरे-से ह्यूबर्ट का सिर तकिये पर टिका दिया।

"गुड नाइट ह्यूबर्ट ..."

"गुड नाइट डॉक्टर," ह्यूबर्ट ने करवट बदल ली।

"गुड नाइट मि॰ ह्यूबर्ट ..." लतिका का स्वर सिहर गया।

किन्तु ह्यूबर्ट ने कोई उत्तर नहीं दिया। करवट बदलते ही उसे नींद आ गयी थी।

कॉरीडोर में वापिस आकर डॉक्टर मुकर्जी रेलिंग के सामने खड़े हो गये। हवा के तेज झोंकों से आकाश में फैले बादलों की परतें जब कभी इकहरी हो जातीं, तब उनके पीछे से चाँदनी बुझती हुई आग के धुएँ-सी आप-पास की पहाड़ियों पर फैल जाती थी।

"आपको मि॰ ह्यूबर्ट कहाँ मिले ?" लतिका कॉरीडोर के दूसरे कोने में रेलिंग पर झुकी हुई थी।

"क्लब की बार में उन्हें देखा था, मैं न पहुँचता तो न जाने कब तक बैठे रहते। डॉक्टर मुकर्जी ने सिगरेट जलायी। उन्हें अभी एक-दो मरीजों के घर जाना था। कुछ देर तक उन्हें टाल देने के इरादे से वह कॉरीडोर में खड़े रहे।

नीचे अपने क्वार्टर में बैठा हुआ करीमुद्दीन माउथ आर्गन पर कोई पुरानी फिल्मी धुन बजा रहा था।

"आज दिन भर बादल छाये रहे, लेकिन खुलकर बारिश नहीं हुई ..."

"क्रिसमस तक शायद मौसम ऐसा ही रहेगा।" कुछ देर तक दोनों चुपचाप खड़े रहे। कॉन्वेन्ट स्कूल के बाहर फैले लॉन से झींगुरों का अनवरत स्वर चारों ओर फैली निस्तब्धता को और भी अधिक घना बना रहा था। कभी-कभी ऊपर मोटर रोड पर किसी कुत्ते की रिरियाहट सुनायी पड़ जाती थी।

"डॉक्टर ... कल रात अपने मि॰ ह्यूबर्ट से कुछ कहा था – मेरे बारे में?"

"वही जो सब लोग जानते हैं और ... ह्यूबर्ट, जिसे जानना चाहिए था, नहीं जानता था ..."

डॉक्टर ने लतिका की ओर देखा, वह जड़वत अविचलित रेलिंग पर झुकी हुई थी।

"वैसे हम सबकी अपनी-अपनी जिद होती है, कोई छोड़ देता है, कोई आखिर तक उससे चिपका रहता है।" डॉक्टर मुकर्जी अँधेरे में मुस्कराये। उनकी मुस्कुराहट में सूखा-सा विरक्ति का भाव भरा था।

"कभी-कभी मैं सोचता हूँ मिस लतिका, किसी चीज को न जानना यदि गलत है, तो जान-बूझकर न भूल पाना, हमेशा जोंक की तरह उससे चिपटे रहना – यह भी गलत है। बर्मा से आते हुए मेरी पत्नी की मृत्यु हुई थी, मुझे अपनी ज़िंदगी बेकार-सी लगी थी। आज इस बात को अर्सा गुजर गया और जैसा आप देखती हैं, मैं जी रहा हूँ, उम्मीद है कि काफी अर्सा और जीऊँगा। ज़िंदगी काफी दिलचस्प लगती है, और यदि उम्र की मजबूरी न होती तो शायद मैं दूसरी शादी करने में भी न हिचकता। इसके बावजूद कौन कह सकता है कि मैं अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करता था – आज भी करता हूँ ..."

"लेकिन डॉक्टर ..." लतिका का गला रुँध आया था।

"क्या मिस लतिका ..."

"डॉक्टर – सब कुछ होने के बावजूद वह क्या चीज है जो हमें चलाये चलती है, हम रुकते हैं तो भी अपने रेले में वह हमें घसीट ले जाती है।" लतिका को लगा कि वह जो कहना चाह रही है, कह नहीं पा रही, जैसे अँधेरे में कुछ खो गया है, जो मिल नहीं पा रहा, शायद कभी नहीं मिल पायेगा।

"यह तो आपको फादर एल्मंड ही बता सकेंगे मिस लतिका," डॉक्टर की खोखली हँसी में उनका पुराना सनकीपन उभर आया था।

"अच्छा चलता हूँ, मिस लतिका, मुझे काफी देर हो गयी," डॉक्टर ने दियासलाई जलाकर घड़ी को देखा।

"गुड नाइट, मिस लतिका।"

"गुड नाइट, डॉक्टर ...।"

डॉक्टर के जाने पर लतिका कुछ देर तक अँधेरे में रेलिंग से सटी खड़ी रही। हवा चलने से कॉरीडोर में जमा हुआ कुहरा सिहर उठता था। शाम को सामान बाँधते हुए लड़कियों ने अपने-अपने कमरे के सामने जो पुरानी कापियों, अखबारों और रद्दी के ढेर लगा दिये थे, वे सब अब अँधेरे कॉरीडोर में हवा के झोंकों से इधर-उधर बिखरने लगे थे।

लतिका ले लैम्प उठाया और अपने कमरे की आरे जाने लगी। कॉरीडोर में चलते हुए उसने देखा, जूली के कमरे में प्रकाश की एक पतली रेखा दरवाजे के बाहर खिंच आयी है। लतिका को कुछ याद आया। वह कुछ क्षणों तक साँस रोके जूली के कमरे के बाहर खड़ी रही। कुछ देर बाद उसने दरवाजा खटखटाया। भीतर से कोई आवाज नहीं आयी। लतिका ने दबे हाथों से हलका-सा धक्का दिया, दरवाजा खुल गया। जूली लैम्प बुझाना भूल गयी थी। लतिका धीरे-धीरे दबे पाँव जूली के पलँग के पास चली आयी। जूली का सोता हुआ चेहरा लैम्प के फीके आलोक में पीला-सा दीख रहा था। लतिका ने अपनी जेब से वही नीला लिफाफा निकाला और उसे धीरे-से जूली के तकिये के नीचे दबाकर रख दिया।

दोपहर का भोजन

– अमरकान्त

सिद्धेश्वरी ने खाना बनाने के बाद चूल्हे को बुझा दिया और दोनों घुटनों के बीच सिर रख कर शायद पैर की उँगलियों या जमीन पर चलते चींटे-चींटियों को देखने लगी। अचानक उसे मालूम हुआ कि बहुत देर से प्यास लगी है। वह मतवाले की तरह उठी और गगरे से लोटा भर पानी लेकर गट-गट चढ़ा गयी। खानी पानी उसके कलेजे में लग गया और वह "हाय राम" कह कर वहीं जमीन पर लेट गयी।

आधे घण्टे तक वहीं उसी तरह पड़ी रहने के बाद उसके जी में जी आया। वह बैठ गयी, आँखों को मल-मलकर इधर-उधर देखा और फिर उसकी दृष्टि ओसारे में अधटूटे खटोले पर सोये अपने छह वर्षीय लड़के प्रमोद पर जम गयी। लड़का नंग-धड़ंग पड़ा था। उसके गले तथा छाती की हड्डियाँ साफ दिखायी देती थीं। उसके हाथ-पैर बासी ककड़ियों की तरह सूखे तथा बेजान पड़े थे और उसका पेट हँड़िया की तरह फूला हुआ था। उसका मुख खुला हुआ था और उस पर अनगिनत मक्खियाँ उड़ रही थीं।

वह उठी, बच्चे के मुँह पर अपना एक फटा, गन्दा ब्लाउज डाल दिया और एक-आध मिनट सुन्न खड़ी रहने के बाद बाहर दरवाजे पर जाकर किवाड़ की आड़ से गली की ओर निहारने लगी। बारह बज चुके थे। धूप अत्यन्त तेज थी और कभी एक-दो व्यक्ति सिर पर तौलिया या गमछा रखे हुए या मजबूती से छाता ताने हुए फुर्ती के साथ लपकते हुए से गुजर जाते।

दस-पन्द्रह मिनट तक वह उसी तरह खड़ी रही, फिर उसके चेहरे पर व्यग्रता फैल गयी और उसने आसमान तथा कड़ी धूप की ओर चिन्ता से देखा। एक-दो क्षण बाद उसने सिर को किवाड़ से काफी आगे बढ़ा कर गली के छोर की तरफ निहारा, तो उसका बड़ा लड़का रामचन्द्र धीरे-धीरे घर की ओर सरकता नज़र आया।

उसने फुर्ती से एक लोटा पानी ओसारे की चौकी के पास नीचे रख दिया और चौके में जाकर खाने के स्थान को जल्दी-जल्दी पानी से लीपने-पोतने लगी। वहाँ पीढ़ा रखकर उसने सिर को दरवाजे की ओर घुमाया ही था कि रामचन्द्र ने अन्दर कदम रखा।

रामचन्द्र आकर धम से चौकी पर बैठ गया और फिर वहीं बेजान-सा लेट गया। उसका मुँह लाल तथा चढ़ा हुआ था, उसके बाल अस्त-व्यस्त थे और उसके फटे-पुराने जूतों पर गर्द जमी हुई थी।

सिद्धेश्वरी की पहले हिम्मत नहीं हुई कि उसके पास जाये और वहीं से वह भयभीत हिरनी की भाँति सिर उचका-घुमा कर बेटे को व्यग्रता से निहारती रही। किन्तु, लगभग दस मिनट बीतने के पश्चात् भी जब रामचन्द्र नहीं उठा, तो वह घबरा गयी। पास जाकर पुकारा – "बड़कू, बड़कू।" लेकिन उसके कुछ उत्तर न देने पर डर गयी और लड़के की नाक के पास हाथ रख दिया। साँस ठीक से चल रही थी। फिर सिर पर हाथ रख कर देखा, बुखार

नहीं था। हाथ के स्पर्श से रामचन्द्र ने आँखें खोलीं। पहले उसने माँ की ओर सुस्त नजरों से देखा, फिर झट से उठ बैठा। जूते निकालने और नीचे रखे लोटे के जल से हाथ-पैर धोने के बाद वह यन्त्र की तरह चौकी पर आकर बैठ गया।

सिद्धेश्वरी ने डरते-डरते पूछा, "खाना तैयार है, वहीं लाऊँ क्या ?"

रामचन्द्र ने उठते हुए पूछा, "बाबूजी खा चुके ?"

सिद्धेश्वरी ने चौके की ओर भागते हुए उत्तर दिया, "आते ही होंगे।"

रामचन्द्र पीढ़े पर बैठ गया। उसकी उम्र लगभग इक्कीस वर्ष थी। लम्बा, दुबला-पतला, गोरा रंग, बड़ी-बड़ी आँखें तथा होंठों पर झुर्रियाँ। वह एक स्थानीय दैनिक समाचारपत्र के दफ्तर में अपनी तबीयत से प्रूफरीडरी का काम सीखता था। पिछले साल ही उसने इन्टर पास किया था।

सिद्धेश्वरी ने खाने की थाली लाकर सामने रख दी और पास ही बैठकर पंखा करने लगी। रामचन्द्र ने खाने की ओर दार्शनिक की भाँति देखा। कुल दो रोटियाँ, भर कटोरा पनियाई दाल और चने की तली तरकारी।

रामचन्द्र ने रोटी के प्रथम टुकड़े को निगलते हुए पूछा– "मोहन कहाँ है ? बड़ी कड़ी धूप हो रही है।"

मोहन सिद्धेश्वरी का मँझला लड़का था। उम्र अट्ठारह वर्ष थी और वह इस साल हाई स्कूल का प्राइवेट इम्तहान देने की तैयारी कर रहा था। वह न मालूम कब से घर से गायब था और सिद्धेश्वरी को स्वयं पता नहीं था कि वह कहाँ गया है।

किन्तु सच बोलने की उसकी तबीयत नहीं हुई और झूठ-मूठ कहा, "किसी लड़के के यहाँ पढ़ने गया है, आता ही होगा। दिमाग उसका बड़ा तेज है और उसकी तबीयत चौबीसों घण्टे पढ़ने में ही लगती हैं, हमेशा उसी की बात करता रहता है।"

रामचन्द्र ने कुछ नहीं कहा। एक टुकड़ा मुँह में रख कर भर गिलास पानी पी गया, फिर खाने में लग गया। वह काफी छोटे-छोटे टुकड़े तोड़ कर उन्हें धीरे-धीरे चबा रहा था।

सिद्धेश्वरी भय तथा आतंक से अपने बेटे को एकटक निहार रही थी। कुछ क्षण बीतने के बाद डरते-डरते उसने पूछा– "वहाँ कुछ हुआ क्या ?"

रामचन्द्र ने अपनी बड़ी-बड़ी भावहीन आँखों से अपनी माँ को देखा, फिर नीचा सिर करके कुछ रुखाई से बोला – "समय आने पर सब ठीक हो जायेगा।"

सिद्धेश्वरी चुप रही। धूप और तेज होती जा रही थी। छोटे आँगन के ऊपर आसमान में बादल के एक-दो टुकड़े पाल की नावों की तरह तैर रहे थे। बाहर की गली से गुजरते हुए एक खड़खड़िया इक्के की आवाज आ रही थी। और खटोले पर सोये बालक की साँस का खर-खर शब्द सुनायी दे रहा था।

रामचन्द्र ने अचानक चुप्पी को भंग करते हुए पूछा– "प्रमोद खा चुका।"

सिद्धेश्वरी ने प्रमोद की ओर देखते हुए उदास स्वर में उत्तर दिया – "हाँ, खा चुका।"

"रोया तो नहीं था ?"

सिद्धेश्वरी फिर झूठ बोल गयी – "आज तो सचमुच नहीं रोया। वह बड़ा ही होशियार हो गया है। कहता था, बड़का भैया के यहाँ जाऊँगा। ऐसा लड़का ..."

पर वह आगे कुछ न बोल सकी, जैसे उसके गले में कुछ अटक गया। कल प्रमोद ने रेवड़ी खाने की जिद पकड़ ली थी और उसके लिए डेढ़ घण्टे तक रोने के बाद सोया था।

रामचन्द्र ने कुछ आश्चर्य के साथ अपनी माँ की ओर देखा और फिर सिर नीचा करके कुछ तेजी से खाने लगा।

थाली में जब रोटी का केवल एक टुकड़ा शेष रह गया, तो सिद्धेश्वरी ने उठने का उपक्रम करते हुए प्रश्न किया – "एक रोटी और लाती हूँ ?"

रामचन्द्र हाथ से मना करते हुए हड़बड़ा कर बोल पड़ा – "नहीं-नहीं, ज़रा भी नहीं। मेरा पेट पहले ही भर चुका है। मैं तो वह भी छोड़ने वाला हूँ। बस, अब नहीं।"

सिद्धेश्वरी ने जिद की – "अच्छा आधी ही सही।"

रामचन्द्र बिगड़ उठा – "अधिक खिला कर बीमार डालने की तबीयत है क्या ? तुम लोग ज़रा भी नहीं सोचती हो। बस, अपनी जिद। भूख रहती तो क्या ले नहीं लेता ?"

सिद्धेश्वरी जहाँ-की-तहाँ बैठी ही रह गयी। रामचन्द्र ने थाली में बचे टुकड़े से हाथ खींच लिया और लोटे की ओर देखते हुए कहा – "पानी लाओ।"

सिद्धेश्वरी लोटा लेकर पानी लेने चली गयी। रामचन्द्र ने कटोरे को उँगलियों से बजाया, फिर हाथ को थाली में रख दिया। एक-दो क्षण बाद रोटी के टुकड़े को धीरे से हाथ से उठा कर आँख से निहारा और अन्त में इधर-उधर देखने के बाद टुकड़े को मुँह में इस सरलता से रख लिया, जैसे वह भोजन का ग्रास न हो कर पान का बीड़ा हो।

मँझला लड़का मोहन आते ही हाथ-पैर धोकर पीढ़े पर बैठ गया। वह कुछ साँवला था और उसकी आँखें छोटी थीं। उसके चेहरे पर चेचक के दाग थे। वह अपने भाई ही की तरह दुबला-पतला था, किन्तु उतना लम्बा न था। वह उम्र की अपेक्षा कहीं अधिक गम्भीर और उदास दिखाई पड़ रहा था।

सिद्धेश्वरी ने उसके सामने थाली रखते हुए प्रश्न किया – "कहाँ रह गये, थे बेटा ? भैया पूछ रहा था।"

मोहन ने रोटी के एक बड़े ग्रास को निगलने की कोशिश करते हुए अस्वाभाविक मोटे स्वर में जवाब दिया – "कहीं तो नहीं गया था। यहीं पर था।"

सिद्धेश्वरी वहीं बैठ कर पंखा डुलाती हुई इस तरह बोली, जैसे स्वप्न में बड़ बड़ा रही हो – "बड़का तुम्हारी बड़ी तारीफ कर रहा था। कह रहा था, मोहन बड़ा दिमागी होगा, उसकी तबीयत चौबीसों घण्टे पढ़ने में ही लगी रहती है।" यह कह कर उसने अपने मँझले लड़के की ओर इस तरह देखा, जैसे उसने कोई चोरी की हो।

मोहन अपनी माँ की ओर देखकर फीकी हँसी हँस पड़ा और फिर खाने में जुट गया। वह परोसी गयी दो रोटियों में से एक रोटी, कटोरे की तीन-चौथाई दाल तथा अधिकांश तरकारी साफ कर चुका था।

सिद्धेश्वेरी की समझ में नहीं आया कि वह क्या करे। इन दोनों लड़को से उसे बहुत डर लगता था। अचानक उसकी आँखें भर आयीं। वह दूसरी ओर देखने लगी।

थोड़ी देर बाद उसने मोहन की ओर मुँह फेरा, तो वह खाना लगभग समाप्त कर चुका था।

सिद्धेश्वरी ने चौंकते हुए पूछा – "एक रोटी देती हूँ ?"

मोहन ने रसोई की ओर रहस्यमय नेत्रों से देखा, फिर सुस्त स्वर में बोला – "नहीं !"

सिद्धेश्वरी ने गिड़गिड़ाते हुए कहा – "नहीं बेटा, मेरी कसम, थोड़ी ही ले लो। तुम्हारे भैया ने एक रोटी ली थी।"

मोहन ने अपनी माँ को गौर से देखा, फिर धीरे-धीरे इस तरह उत्तर दिया, जैसे कोई शिक्षक अपने शिष्य को समझाता है – "नहीं रे, बस। अव्वल तो अब भूख नहीं। फिर रोटियाँ तूने ऐसी बनायी हैं कि खायी नहीं जातीं। न मालूम कैसी लग रही है। खैर, अगर तू चाहती ही है, तो कटोरे में थोड़ी दाल दे दे। दाल बड़ी अच्छी बनी है।"

सिद्धेश्वरी से कुछ कहते न बना और उसने कटोरे को दाल से भर दिया।

मोहन कटोरे को मुँह से लगाकर सुड़-सुड़ पी रहा था कि मुंशी चन्द्रिका प्रसाद जूतों को खस्-खस घसीटते हुए आये और राम का नाम लेकर चौकी पर बैठ गये। सिद्धेश्वरी ने माथे पर साड़ी को कुछ नीचे खिसका लिया और मोहन दाल को एक साँस में पीकर तथा पानी के लोटे को हाथ में लेकर तेजी से बाहर चला गया।

दो रोटियाँ, कटोरा-भर दाल, चने की तली तरकारी। मुंशी चन्द्रिका प्रसाद पीढ़े पर पालथी मार कर बैठे रोटी के एक-एक ग्रास को इस तरह चुभला-चबा रहे थे, जैसे बूढ़ी गाय जुगाली करती है। उनकी उम्र पैंतालीस वर्ष के लगभग थी, किन्तु पचास-पचपन के लगते थे। शरीर का चमड़ा झूलने लगा था, गंजी खोपड़ी आईने की भाँति चमक रही थी। गंदी धोती के ऊपर अपेक्षाकृत कुछ साफ बनियान तार-तार लटक रही थी।

मुंशीजी ने कटोरे को हाथ में लेकर दाल को थोड़ा सुड़कते हुए पूछा – "बड़का दिखाई नहीं दे रहा है ?"

सिद्धेश्वरी की समझ में नहीं आ रहा था कि उसके दिल में क्या हो गया है – जैसे कुछ काट रहा हो, पंखे को ज़रा और जोर से घुमाती हुई बोली – "अभी-अभी खाकर काम पर गया है। कह रहा था, कुछ दिनों में नौकरी लग जायेगी। हमेशा 'बाबूजी, बाबूजी' किये रहता है। बोला – बाबूजी देवता के समान हैं।"

मुंशीजी के चेहरे पर कुछ चमक आयी। शरमाते हुए पूछा – "ऐं, क्या कहता था कि बाबूजी देवता के समान है ? बड़ा पागल है।"

सिद्धेश्वरी पर जैसे नशा चढ़ गया था। उन्माद की रोगिणी की भाँति बड़बड़ाने लगी – "पागल नहीं है, बड़ा होशियार है। उस जमाने का कोई महात्मा है। मोहन तो उसकी बड़ी इज्जत करता है। आज कह रहा था कि भैया की शहर में बड़ी इज्जत होती है, पढ़ने-लिखने वालों में बड़ा आदर होता है और बड़का तो छोटे भाइयों पर जान देता है। दुनिया में वह सब-कुछ सह सकता है, पर यह नहीं देख सकता कि उसके प्रमोद को कुछ हो जाये।"

मुंशीजी दाल लगे हाथ को चाट रहे थे। उन्होंने सामने ताक की ओर देखते हुए हँस कर कहा – "बड़का का दिमाग तो खैर काफी तेज है, वैसे लड़कपन में नटखट भी था। हमेशा खेल-कूद में लगा रहता था, लेकिन यह भी बात थी कि जो सबक मैं उसे याद करने को देता था, उसे बर्राक रखता था। असल बात तो यह है कि तीनों लड़के काफी होशियार हैं। प्रमोद को कम समझती हो।" यह कह वह अचानक जोर से हँस पड़े।

मुंशीजी डेढ़ रोटी खा चुकने के बाद एक ग्रास से युद्ध कर रहे थे। कठिनाई होने पर एक गिलास पानी चढ़ा गये। फिर खर-खर खाँस कर खाने लगे।

फिर चुप्पी छा गयी। दूर से किसी आटे की चक्की की पुक-पुक आवाज सुनायी दे रही थी और पास की नीम के पेड़ पर बैठा कोई पंडूक लगातार बोल रहा था।

सिद्धेश्वरी की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहे। वह चाहती थी कि सभी चीजें ठीक से पूछ ले। सभी चीजें ठीक से जान ले और दुनिया की हर चीज पर पहले की तरह धड़ल्ले से बात करे। पर उसकी हिम्मत नहीं होती थी। उसके दिल में जाने कैसा भय समाया हुआ था।

अब मुंशीजी इस तरह चुपचाप दुबके हुए खा रहे थे, जैसे पिछले दो दिनों से मौन-व्रत धारण कर रखा हो और उसको कहीं जाकर आज शाम को तोड़ने वाले हों।

सिद्धेश्वरी से जैसे नहीं रहा गया। बोली – "मालूम होता है, अब बारिश नहीं होगी।"

मुंशीजी ने एक क्षण के लिए इधर-उधर देखा, फिर निर्विकार स्वर में राय दी – "मक्खियाँ बहुत हो गयी हैं।"

सिद्धेश्वरी ने उत्सुकता प्रकट की – "फूफाजी बीमार हैं, कोई समाचार नहीं आया।"

मुंशीजी ने चने के दानों की ओर इस दिलचस्पी से दृष्टिपात किया, जैसे उनसे बातचीत करने वाले हों, फिर सूचना दी – "गंगाशरण बाबू की लड़की की शादी तय हो गयी। लड़का एम.ए. पास है।"

सिद्धेश्वरी हठात् चुप हो गयी। मुंशीजी भी आगे कुछ नहीं बोले। उनका खाना समाप्त हो गया था और वे थाली में बचे-खुचे दानों को बन्दर की तरह बीन रहे थे।

सिद्धेश्वरी ने पूछा – "बड़का की कसम, एक रोटी देती हूँ। अभी बहुत-सी हैं।"

मुंशीजी ने पत्नी की ओर अपराधी के समान तथा रसोई की ओर कनखी से देखा, तत्पश्चात् किसी छँटे उस्ताद की भाँति बोले – "रोटी ? रहने दो, पेट काफी भर चुका है, अन्न और नमकीन चीजों से तबीयत ऊब भी गयी है। तुमने व्यर्थ में कसम धरा दी। खैर, कसम रखने के लिए ले रहा हूँ। गुड़ होगा क्या ?"

सिद्धेश्वरी ने बताया कि हँड़िया में थोड़ा-सा गुड़ है। मुंशीजी ने उत्साह के साथ कहा – "तो थोड़े गुड़ का ठंडा रस बनाओ, पीऊँगा। तुम्हारी कसम भी रह जायेगी, जायका भी बदल जायेगा, साथ-ही-साथ हाजमा भी दुरुस्त होगा। हाँ, रोटी खाते-खाते नाक में दम आ गया है।" यह कह कर वे ठहाका मार कर हँस पड़े।

मुंशीजी के निबटने के पश्चात् सिद्धेश्वरी उनकी जूठी थाली लेकर चौके की जमीन पर बैठ गयी। बटलोई की दाल को कटोरे में उँड़ेल दिया, पर वह पूरा भरा नहीं। छिपुली में थोड़ी-सी चने की तरकारी बची थी, उसे पास खींच लिया। रोटियों की थाली को भी उसने पास खींच लिया। उसमें केवल एक रोटी बची थी। मोटी, भद्दी और जली उस रोटी को वह जूठी थाली में रखने जा रही थी कि अचानक उसका ध्यान ओसारे में सोये प्रमोद की ओर आकर्षित हो गया। उसने लड़के को कुछ देर तक एकटक देखा, फिर रोटी को दो बराबर टुकड़ों में विभाजित कर दिया। एक टुकड़े को तो अलग रख दिया और दूसरे टुकड़े को अपनी जूठी थाली में रख लिया। तदुपरान्त एक लोटा पानी लेकर खाने बैठ गयी। उसने पहला ग्रास मुँह में रखा और तब न मालूम कहाँ से उसकी आँखों से टप-टप आँसू चूने लगे।

सारा घर मक्खियों से भिन-भिन कर रहा था। आँगन की अलगनी पर एक गन्दी साड़ी टँगी थी, जिसमें पैबन्द लगे हुए थे। दोनों बड़े लड़कों का कहीं पता नहीं था। बाहर की कोठरी में मुंशीजी औंधे मुँह होकर निश्चिंतता के साथ सो रहे थे, जैसे डेढ़ महीने पूर्व मकान-किराया-नियन्त्रण विभाग की क्लर्की से उनकी छँटनी न हुई हो और शाम को उनको काम की तलाश में कहीं जाना न हो ...।